

॥ इष्टहार ॥

श्रीमद्भागवत भाषाटीका संगुक्त क्री० ७) पु०

इस ग्रन्थ के उत्तम होने में कदापि मन्देह नहीं है—इसका भाषा
तिलक ब्रजबोली में बहुतही प्यारा है आशय प्रत्येक श्लोकों का
है क्यों न हो इसके तिलककार महामा ब्रजवासी अगदजी शास्त्री
हैं—यह तिलक ऐसा सरल है कि इसके द्वारा अल्पसंस्कृतज्ञ पुरुषों
का पूरा कार्य निकल सकता है—संस्कृतपाठक भी इससे श्लोकों का
पूरा आशय समझ सकते हैं इस बार यह ग्रन्थ टैप के अक्षरों में
उम्दा कागज सफेद चिकना में छपा गया है और विशेष विद्वान्
शास्त्रियों के द्वारा शुद्ध कराया गया है जिस से बम्बई की छपी हुई
पुस्तक से किसी काम में न्यून नहीं है उम्दा तसावीर भी प्रत्येक
स्कन्ध में युक्त हैं—आशा है कि इस अमूल्यरत्न के लेने में महाराज
लोग विलम्ब न करेंगे मूल्य भी इसका स्वल्प रक्खा गया है ॥

श्रीमद्व्याख्येकीयरामायण भाषा कितायनुमा
काराज रस्मी ५) व काराज गुन्दा ६)

पूरे सातोंकाण्ड अथोप्यापाठशाला के तृतीयाध्यापक पण्डित
महेशदत्तकृत भाषा—यह वही पण्डितजी महाराज हैं जिन्होंने
पहिले देवीभागवत और विष्णुपुराण का उल्था किया है दोभागों
में यथातथ्य सुगमरीति से परिपूर्ण श्लोक के अनुसार हुआ है कोई

BY KIND PERMISSION

This volume is most respectfully dedicated to

JAMES CORNWALL, ESQ.,

POST-MASTER GENERAL,

United Provinces of

Agra and Oudh.

In token of the author's high esteem
and respect and in gratitude for the
kind treatment he has always received
while serving under him.

ZALIM SINGH,

LUCKNOW:

POST-MASTER,

1st January 1903. }

Lucknow.

ॐ हरिः ॥

जब मैं पाठशाला में विद्याध्ययन करता था, तबहीसे हरिकीर्तन करने की, शुभमार्गपर चलने की, असत् के त्याग की और सत्के ग्रहण की, मेरे मन में इच्छा उत्पन्न हुआ करती थी, जब मैं इन्स्पेक्टर डाकखानेजात गोंडा और बहरायच का हुआ तब तुलसीकृत रामायण पढ़ने की और सत्यनारायण की कथा सुनने की आतिरुचि थी. जो काल सरकारी काम करने से बचता, भगवत् आराधन में लगाता, दैवइच्छा से कभी २ संग गृहात्मा पुरुषों का होजाता, और वेदांतशास्त्र ५ गूर्यवत् वाणी को उनसे सुनकर अन्तःकरण ५ अन्धकार को नाश करता, जब मैं लखनऊ में असिस्टेन्ट मुण्डिन्डेन्ट होकर आया, ईश्वर की कृपा से मेरे पूर्वजन्म के शुभकर्म उदय होआये, और श्रीस्वामी यमुनाशङ्कर जी वेदान्ती का दर्शन हुआ, उनके सरल प्रीतियुक्त उपदेशसे मेरे यावत् अन्धकार थे सब नष्ट होगये, और अपने

शान्त अद्वैत निर्मल आत्मा विपे स्थित हुआ, जब पण्डितजीका देहान्त हुआ तब और अनेक वेदान्तविद पण्डितों और संन्यासियोंका संग रहा, स्वामी परमानन्दजीका भी संग होता रहा उन की कृपा सदा बनी रही ॥

नैनीताल में जब मैं पोस्टमास्टर था, तब यह इच्छा हुई कि वेदान्त के विदित ग्रन्थोंको सरल मध्यदेशी भाषा में सहित पदच्छेद, अन्वय और शब्दार्थ के अनुवाद करूं, मेरे इस सत्सङ्कल्पको परमात्माने पूरा किया. ये सब टीका देखने योग्य हैं और भवसागर के पार करने में अलौकिक नौका हैं ॥

गोहरिः ॥

भूमिका ॥

एक समय राजा जनकजी घूमने जातेथे राह में जब अष्टावक्रजी को आते देखा तब राजा घोड़े से उतर कर ऋषिको साष्टांग प्रणाम किया पर ऋषि के शरीरको देखकर राजाके चित्तमें कुछ घृणा हुई कि परमेश्वर ने इनका शरीर केसा कुरूप रचाहै ऋषिके शरीर में आठ कुत्र थे इसी से उनका शरीर कुरूप देखने में आताथा और जब चलतेथे तब आठ अंगों से बक्र याने टेढ़ा होता जाताथा इसी कारण उनके पिताने उनका नाम अष्टावक्र रक्खाथा पर आत्मज्ञान में वह बड़े निपुणथे और योगविद्या में भी बड़े चतुर थे अपनी विद्याके बलसे उन्होंने राजा के चित्तकी घृणाको जानलिया और उसको उत्तम अधिकारी जानकर कहते भये ॥

अष्टावक्र उवाच ॥ हे राजन् ! जैसे मंदिरके टेढ़ा होनेसे आकाश टेढ़ा नहीं होताहै और मंदिर के गोल-वा लंबा होने से आकाश गोल वा लम्बा नहीं होताहै क्योंकि आकाश का मंदिरके साथ

अन्वयः शब्दार्थ

भवान् = तू

न पृथिवी = न पृथिवी
है

न जलम् = न जल है

न अग्निः = न अग्नि
है

न वायुः = न वायु है

न द्यौः = न आका-
श है

अन्वयः शब्दार्थ

वा = पर

मुक्तये = मुक्तिके
लिये

एषाम् = इन सबका

साक्षिणम् = साक्षी

चिद्रूपम् = चैतन्य
रूप

आत्मानम् = अपनेको

विद्धि = जान

भावार्थ ॥

दूसरा प्रश्न राजा का यह था कि पुरुष आत्म-
ज्ञानको कैसे प्राप्त होता है अर्थात् ज्ञान का स्वरूप
क्या है इसके उत्तर में ऋषि कहते हैं कि अ-
नादिकाल का देहादिकों के साथ जो आत्मा का
तादात्म्य अध्यास हो रहा है उस अध्यास से ही पुरुष
देहको आत्मा मानता है और इसी से जन्ममरण-
रूपी संसारचक्र में पुनः २ भ्रमता रहता है तिस अ-
ज्ञान का कारण अज्ञान है तिस अज्ञान की निवृत्ति
ज्ञान करके होती है और अज्ञान की निवृत्ति

अन्वयः शब्दार्थ
 भवान् = तू
 न पृथिवी = न पृथिवी
 है
 न जलम् = न जल है
 न अग्निः = न अग्नि
 है
 न वायुः = न वायु है
 न द्यौः = न आका-
 श है

अन्वयः शब्दार्थ
 वा = पर
 मुक्तये = मुक्तिके
 लिये
 एषाम् = इन सबका
 साक्षिणम् = साक्षी
 चिद्रूपम् = चैतन्य
 रूप
 आत्मानम् = अपनेको
 विद्धि = जानः

भावार्थ ॥

दूसरा प्रश्न राजा का यह था कि पुरुष आत्म-
 ज्ञानको कैसे प्राप्त होता है अर्थात् ज्ञान का स्वरूप
 क्या है इसके उत्तर में ऋषि कहते हैं कि अ-
 नादिकाल का देहादिकों के साथ जो आत्मा का
 तादात्म्य अध्यास हो रहा है उस अध्यास से ही पुरुष
 देहको आत्मा मानता है और इसी से जन्ममरण-
 रूपी संसारचक्र में पुनः २ भ्रमता रहता है तिस अ-
 ध्यासका कारण अज्ञान है तिस अज्ञान की निवृत्ति
 आत्मज्ञान करके होती है और अज्ञान की निवृत्ति

हो :

मूलम् ॥

१ उ के र हं पृथक् कृत्य चित्ति विश्राम्यतिष्ठ
थ तिस औस धुनेव सुखी शांतो बंधमुक्तो भ
गत देवा हो ना ॥ ३ ॥

हो कोई भी

पदच्छेदः ॥

का समु पंचा रीरहै वहम् पृथक् कृत्य चित्ति वि-
विपर परिणामसि अधुना एव सुखी शा-
तिर का शरीर हः भविष्यसि ॥

धाल है कुमार अर्द्धार्थ
में ना अवस्थावा
नहीं ना सब अवर
रहता स्ते युवा और
रहता है अर्थात् पुरु
भिज्ञा पताको अनुभव
ल्यावर या युवा अवस्थामें
वस्थाम खिये अवस्था सब
करता उभव करनेवाला अ.

अन्वयः शब्दार्थ
विश्राम
करकेयाने
चित्तको
एकाम क-
रके

तिष्ठसि = स्थितहै तू
तो

पर अ नका त्योंही रहता है यो अधुना एव = अभी
लत बदल जाता तब प्रतिभिज्ञत्वम् = तू
साथ

तीत होता है वास्तव से आत्मा का भेद नहीं जैसे अनेक घटों में आकाश एकभी है परंतु किसी घट में धूली भरी है और किसी में धूम भरा है और किसी में नील पीतादिक वर्णों वाले पदार्थ भरे हैं उन धूली आदिकों के साथ भी आकाश का वास्तव सम्यन्ध कोई नहीं है तथापि धूली आदिकों वाला प्रतीत होता है तैसे आत्मा का भी अन्तःकरण और उसके धर्मों के साथ वास्तव सम्यन्ध कोई नहीं है तथापि परस्परके अप्र्याप्त्य में वह सुख दुःखादिक धर्मों वाला प्रतीत होता है याम्नाय से आत्मा में सुख दुःखादिक तीनों कालों में भी नहीं है इसी वार्ता को अष्टावक्र जी जनकजी के प्रति कहते हैं हे जनक

हे जगन्नाथ

दूरहो ॥ अष्टावक्रजी कहते हैं हे राजन् वेदने जितने वर्णाश्रमादिकों के धर्म कहे हैं वे सब अज्ञानी मूर्ख के लिये कहे हैं ज्ञानी के और मुमुक्षु के लिये नहीं ॥ ज्ञानामृतेन त्सस्य कृतकृत्यस्ययोगिनः ॥ नैवास्ति किञ्चित्कर्त्तव्यमस्ति चेन्नसतत्त्ववित् ॥ १ ॥ जो आत्मज्ञानरूपी अमृत करके त्स है और जो आत्मज्ञान करके कृतकृत्य होचुका है उसको किञ्चित् भी कर्म करने योग्य बाकी नहीं है अगर वह अपने को कर्त्तव्यमाने तब वह आत्मवित् नहीं है ऐसे अनेक वाक्य ज्ञानी के लिये कर्त्तव्यताका अभाव कथन करते हैं ॥ गीतामें जिज्ञासुकेप्रति कर्मों का निषेध कहा ॥ जिज्ञासुरपियोगस्य शब्दब्रह्मातिवर्त्तते ॥ भगवान् कहते हैं कि आत्मज्ञानका जिज्ञासु भी शब्द ब्रह्मजो वेद है उसकी आज्ञाको उलंघ्य करके वर्त्तता है अर्थात् जिज्ञासुके ऊपर भी कर्मकांड वेद भागका आज्ञा नहीं रहता है तात्पर्य यह है कि कर्मकांड भाग वेदकी आज्ञा अज्ञानी मूर्ख सकामी के ऊपर है सो हे जनक यदि तू जिज्ञासु है तब भी तेरे ऊपर वर्णाश्रमों के धर्मोंके करने की वेदकी आज्ञा नहीं है यदि तू लोकचार के लिये करना चाहता है तब उनकी आत्मा से प्रथक अन्तःकरण का धर्म मान कर तू कर ॥

अन्वयः शब्दार्थ
 सर्वस्य = सबका
 एकः = एक
 दृष्टा = देखनेवाला
 असि = तू है
 सर्वदा = निरंतर
 मुक्तप्रायः = अत्यन्त
 मुक्त
 असि = तू है
 अयम् = यह

अन्वयः शब्दार्थ
 एव = ही
 ते = तेरा
 बन्धः = बन्धन है
 हि = जो
 इतरम् = दूसरेको
 द्रष्टारम् = द्रष्टा
 त्वम् = तू
 पश्यसि = देखता है

भावार्थ ॥

हे राजा तूही एक सच्चिदानन्द परिपूर्ण रूपसे सब का द्रष्टा है और सर्वदा मुक्तस्वरूप है तेरे में बंध तीनोंकाल में नहीं है जैसे सूर्य में तम तीनों काल में नहीं है तैसे तूही स्वयं प्रकाश सारे जगत् का द्रष्टा है और जो तू अपने को द्रष्टा न जानकर अपने से भिन्न किसी को द्रष्टा मानता है यही तेरे में बन्ध है ७ ॥ जनकजी कहते हैं हे भगवन् सारे संसार में सबलोक अपने से भिन्न कर्मों का साक्षी और द्रष्टा मानते हैं और अपने को कर्मों का करता मानते हैं तब फिर

वे सब ऐसा क्यों मानते हैं और अपने से भिन्न द्रष्टा और कर्मों के फलका प्रदाताको क्यों मानते हैं उ० ॥ अष्टावक्र जी कहते हैं जो संसार में अज्ञानी मूर्ख हैं वे अपने से भिन्न द्रष्टाको और कर्मों के फलप्रदाता को मानते हैं और अपने को कर्मों का कर्त्ता और फलका भोक्ता मानते हैं ज्ञानवान् ऐसा नहीं मानते हैं ॥

मूलम् ॥

अहंकर्तेत्यहंमान महाकृष्णाहिदं
शितः नाहंकर्तेतिविश्वासामृतंपीत्वासु
खीभव ८ ॥

पदच्छेदः ॥

अहम् कर्त्ता इति अहंमानमहाकृ-
ष्णाहिदंशितः न अहम् कर्त्ता इति
विश्वासामृतम् पीत्वा सुखी भव ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहम् = मैं		नकर्त्ता = नहींकर्त्ता	
कर्त्ता = करताहूं		हूं	
इति = ऐसे		इति = ऐसे	
अहंमान महाकृष्णा हिदंशितः	अहंकार रूपीम- हाकाले सर्पसे दंशितहु आहे तू	विश्वा- सायुतम्	विश्वास -रूपीअमृत को
अहम् = मैं		पीत्वा = पीकरके	
		सुखी = सुखी	
		भव = हो	

भावार्थ ॥

हे जनक "अहंकर्त्ता" मैं इस कर्म का कर्त्ताहूं, मैं इसके फलको भोगूंगा, यह जो अहंकार रूपी काला सर्प है, इसी करके सारासंसार डसाहुआ जन्म मरण रूपी चक्र में पड़ा भ्रमता है, और तूभी इस अहंकार रूपी सर्प करके डसाहुआ अपने को कर्त्ता भोक्ता मानता है, तिस अहंकार रूपी सर्प के विषके उतारने के लिये "नाहंकर्त्ता" मैं कर्त्ता नहीं हूं, जब ऐसे

निश्चय रूपी अमृतको तू पान करेगा, तब तू सुखी हो-
वेगा अन्यथा किसी प्रकारसे भी तू सुखी नहीं हो-
वेगा ॥ ८ ॥ जनकजी कहते हैं पूर्वोक्त अमृतको मैं
कैसे पान करूं ॥ इसके उत्तरको ॥

मूलम् ॥

एकोविशुद्धबुद्धोहमितिनिश्चयव-
ह्निना ॥ प्रज्वालयाज्ञानगहनं वीतशो-
कःसुखीभव ॥ ९ ॥

पदव्येदः ॥

एकः विशुद्धबोधः अहम् इति नि-
श्चयवह्निना प्रज्वालय अज्ञानगहनम्
वीतशोकः सुखी भव ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
एकः = एक		निश्चय	{ निश्चय
विशुद्धबोधः	अतिशु- द्धबोध	वह्निना	{ रूपी अ- ग्नि से
	रूपहं	अज्ञान	{ अज्ञानरू-
इति = ऐसे		गहनम्	{ पी वनको

प्रज्वालय = जलाकर

वीतशोकः = शोकर-

हितहुआ

त्वम् = तू

सुखी = सुखी

भव = हो

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं, हे जनक तू इसप्रकार के निश्चयरूपी अमृतको पानकर, मैं एकहूँ, याने सजाती विजाती स्वगत भेद से रहितहूँ, एक वृक्षका जो वृक्षांतरसे भेद है वह सजातिभेद कहाजाता है, और वृक्षका जो घटादिकों से भेद है उसका नाम विजाती भेद है, और वृक्षका जो अपने शाखादिकों से भेद है, वह स्वगत भेद कहाजाता है ॥ आत्मा ऐसा नहीं है, क्योंकि एकही आत्मा सारेजगत् में व्यापक है, वह पारमार्थिक सत्तावाला है और नित्य है, दूसरा कोई ऐसा नहीं है, इसवास्ते आत्मा में सजाती भेद नहीं है, परिछिन्न व्यवहारिक सत्तावालों में सजाति भेद रहता है, और आत्मा से भिन्न कोई भी पदार्थ पारमार्थिक सत्तावाला नहीं है, आत्मा से भिन्न सब मिथ्या है ॥ ब्रह्मभिन्नम् ॥ सर्वमिथ्या ॥ ब्रह्मभिन्नत्वात् ब्रह्म से भिन्न साराजगत् ब्रह्म से प्रथक होने के कारण शुक्तिरजत की तरह मिथ्या है इस

अनुमान प्रमाण से जगत् मिथ्या साबित होता है, और इसी से आत्मा में विजाती भेद भी नहीं है, ॥ आत्मा निरावयव है, इसवास्ते उस में स्वगत भेदभी नहीं है, स्वगत भेद सावयव पदार्थों में होता है, आत्मा देशकाल वस्तु परिच्छेद से रहित है, देशकाल वस्तु परिच्छेद परिच्छिन्न पदार्थमें ही रहता है, व्यापक में नहीं रहता है, जो वस्तु किसीकाल में हो किसी कालमें न हो, वह काल परिच्छेद वाली कहाती है, सो ऐसे घटपटादिक पदार्थ हैं, आत्मा तीनोंकालों में एक ही ज्योकात्यो रहता है, इसवास्ते काल परिच्छेद से आत्मा रहित है, जो वस्तु एक देश में हो दूसरे देशमें न हो, वह देश परिच्छेदवाली कहाती है, सो ऐसे घटपटादिक पदार्थ हैं, आत्मा सब देश में है, इसवास्ते वह देश परिच्छेद से भी रहित है ॥ जो एक वस्तु दूसरी वस्तु में न रहे, वह वस्तु परिच्छेद कहाता है, जैसे घटपट में नहीं रहता है, और पटघटमें नहीं रहता है, आत्मा सब वस्तुओं में ज्योकात्यो एकरस रहता है, इसवास्ते वह वस्तु परिच्छेदसे भी रहित है, हे जनक, जो देशकाल वस्तु परिच्छेदसे रहित है, और नित्य है, व्यापक है, वह एकही साबित होता है, वही तेरा आत्मा है, हे राजा, तू ऐसा निश्चयकर कि मैं ही

प्रज्वाल्य = जलाकर

वीतशोकः = शोकर-

हितदृजा

त्वम् = तू

सुखी = सुखी

भव = हो

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं, हे जनक तू इसप्रकार के निश्चयरूपी अमृतको पानकर, मैं एकहूँ, याने सजाती विजाती स्वगत भेद से रहितहूँ, एक वृक्षका जो वृक्षांतरसे भेद है वह सजातिभेद कहाजाता है, और वृक्षका जो घटादिकों से भेद है उसका नाम विजाती भेद है, और वृक्षका जो अपने शाखादिकों से भेद है, वह स्वगत भेद कहाजाता है ॥ आत्मा ऐसा नहीं है, क्योंकि एकही आत्मा सारेजगत् में व्यापक है, वह पारमार्थिक सत्तावाला है और नित्य है, दूसरा कोई ऐसा नहीं है, इसवास्ते आत्मा में सजाती भेद नहीं है, परिछिन्न व्यवहारिक सत्तावालों में सजाति भेद रहता है, और आत्मा से भिन्न कोई भी पदार्थ पारमार्थिक सत्तावाला नहीं है, आत्मा से भिन्न सब मिथ्या हैं ॥ ब्रह्मभिन्नम् ॥ सर्वमिथ्या ॥ ब्रह्मभिन्नत्वात् ब्रह्म से भिन्न साराजगत् ब्रह्म से प्रथक होने के कारण शुक्तिरजत की तरह मिथ्या है इस

अनुमान प्रमाण से जगत् मिथ्या साबित होता है, और इसी से आत्मा में विजाती भेद भी नहीं है, ॥ आत्मा निरावयव है, इसवास्ते उस में स्वगत भेदभी नहीं है, स्वगत भेद सावयव पदार्थों में होता है, आत्मा देशकाल वस्तु परिच्छेद से रहित है, देशकाल वस्तु परिच्छेद परिच्छिन्न पदार्थमें ही रहता है, व्यापक में नहीं रहता है, जो वस्तु किसीकाल में हो किसी कालमें न हो, वह काल परिच्छेद वाली कहाती है, सो ऐसे घटपटादिक पदार्थ हैं, आत्मा तीनोंकालों में एक ही ज्योत्कात्यो रहता है, इसवास्ते काल परिच्छेद से आत्मा रहित है, जो वस्तु एक देश में हो दूसरे देशमें न हो, वह देश परिच्छेदवाली कहाती है, सो ऐसे घटपटादिक पदार्थ हैं, आत्मा सब देश में है, इसवास्ते वह देश परिच्छेद से भी रहित है ॥ जो एक वस्तु दूसरी वस्तु में न रहे, वह वस्तु परिच्छेद कहाता है, जैसे घटपट में नहीं रहता है, और पटघटमें नहीं रहता है, आत्मा सब वस्तुओं में ज्योत्कात्यो एकरस रहता है, इसवास्ते वह वस्तु परिच्छेदसे भी रहित है, हे जनक, जो देशकाल वस्तु परिच्छेदसे रहित है, और नित्य है, व्यापक है, वह एकही साबित होता है, वही तेरा आत्मा है, हे राजा, तू ऐसा निश्चयकर कि मैं ही

सर्वत्र व्यापक हूं, और सजाति विजाति स्वगत भेद से रहित हूं, और विशेषकरके शुद्ध हूं, अर्थात् अविद्या आदिक मल मेरे में नहीं हैं, जब तू ऐसे निश्चयरूपी अग्निको प्रज्वालन करके अज्ञानरूपी वनको भस्म करेगा, तो फिर जन्ममरण रूपी शोक से रहित होकर परमानन्द को प्राप्त होवैगा ॥ ९ ॥ जनकजी कहते हैं हे महाराज पूर्वोक्त निश्चय करने से भी तो जगत् सत्यही दिखाई पड़ता है, इसकी निवृत्ति याने अभाव स्वरूप से कदापि नहीं होती है, और जबतक इसका अभाव न हो तबतक शोकसे रहित होना कठिन है ॥

मूलम् ॥

यत्र विश्वमिदं भाति कल्पितं रज्जुसर्पवत् ॥
आनन्दपरमानन्दः सर्वो धस्त्वं
सुखं चर १० ॥

पदच्छेदः ॥

यत्र विश्वम् इदम् भाति कल्पितम्
रज्जुसर्पवत् आनन्दपरमानन्दः सः
बोधः त्वम् सुखम् चर ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
यत्र = जिस विषे	सः = सोई
इदम् = यह	आनन्द { आनन्द
कल्पितम् = कल्पित	परमा- = { परमा-
विश्वम् = संसार	नन्दः { नन्द
रज्जुसर्पवत् = रज्जुसर्प	बोधः = बोधरूप
की नाई	त्वम् = तू है
भाति = भासता है	सुखम् = सुखपूर्वक
	चर = विचर

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे राजा जिस ब्रह्मभात्मा में यह जगत् रज्जु सर्प की तरह कल्पित प्रतीत होता है, वह आत्माआनन्द स्वरूप है, जैसे रज्जुके अज्ञान करके मंद अंधकार में रज्जु ही सर्परूप करके प्रतीत होती है, या रज्जु में सर्प प्रतीत होता है, वास्तव से न तो रज्जु सर्प रूप है, न रज्जु में सर्प है, और न रज्जु में सर्प पूर्व या न आगेहोवैगा, न वर्तमान काल में है, किंतु रज्जु के अज्ञान करके और मंद अन्धकारादि सहकारिकारणजन से भ्रान्तिकरके रज्जु में पुरुषको सर्प प्रतीत होता है, और तिस मिथ्या सर्प को देखकरके पुरुष

भागता है, गिरपड़ता है, डरता है, और जबकोई रज्जु का ज्ञाता उसको कहता है, यह सर्प नहीं है, किंतु रज्जु है, तू क्यों डरता है, तब उमका भ्रम और भयादिक सब दूर होजाते हैं, तैसे ही आत्मा के स्वरूप के अज्ञानकरके पुरुषको जगत् भासता है, और जन्ममरण के भयादिक भी भासते हैं, जब ब्रह्मवित् गुरु उपदेश करता है, कि तू ही ब्रह्म है, तेरेको अपने स्वरूपके अज्ञानके कारण यह जगत् प्रतीत होरहा है, वास्तव से यह जगत् मिथ्या है, तीनकाल में तेरे विषे नहीं है, जैसे निद्रारूपी दोषकरके पुरुष स्वप्न में अनेक प्रकारके सिंह व्याघ्रादिकों को रचता है, और आप ही उनसे भयको प्राप्त होता है, जब निद्रा दूर होजाती है, तब उन कल्पित सिंहादिकों का भी नाश होजाता है, तैसेही, हे जनक, तेरेही अज्ञान करके यह संपूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, और जब तू अपने स्वरूप को यथार्थ रूपसे जानलेवैगा तब जगत् का भी अभाव होजावेगा ॥ प्र० ॥ हे भगवन् यदि आत्मज्ञान करके अज्ञान और अज्ञानके कार्य जगत् का नाश होजाता है तब अवतक जगत् न बना रहता क्योंकि बहुत ज्ञानवान् होचुके हैं उनमें से एक के ज्ञान करके कारणके सहित कार्यरूपी जगत् का यदि नाश होजाता

तब फिर अस्मदादिक सब जीव और वृक्षादिक सृष्टिभी न होती ऐसा तो नहीं देखते हैं किन्तु जगत् ज्योंका त्योंही बना है तब फिर आप कैसे कहते हैं कि अज्ञानके नाशसे जगत् का नाश होजाता है ॥३०॥ अष्टावक्रजी कहते हैं हे राजन् ! जैसे मधुमरीचिका के जल को देखकर जल की इच्छा करके पुरुष उस के पास जाता है और जब आगे उसको जल नहीं मिलता है और फिर किसीके घताने से जान लेता है कि यह भ्रमकरके मेरे को जो जल दिखाई देताथा यह जल नहीं है तब आकर वृक्षके नीचे बैठजाता है और फिर जब उधरको देखता है तब फिर जल पूर्वकी तरह दिखाई पड़ता है पर जलकी इच्छा करके फिर उसतरफ नहीं दौड़ता है और न दुःखी होता है तैसेही जिसको आत्मज्ञान हुआ है और जिसने जानलिया है कि यह जगत् मिथ्या है भ्रम करके प्रतीत होता है वह फिर दुःखी नहीं होता है और न उसमें उसकी आसक्ति होती है किन्तु बाधत् जगत् है उस सबको मिथ्या जानता है उस मिथ्यात्व निश्चयका नाम ही जगत् का नाश है स्वरूपसे इस का नाश कदापि नहीं होता है यह प्रवाहरूपने सदा बनाही रहना है हे जनक ! जिनने अपने आत्मा को

सत् चित् आनंदरूपकरके जान लिया है वह फिर जन्ममरणरूपी बन्धको प्राप्त नहीं होता है हे जनक ! तू अपने को ही आनंदरूप और परमानन्द बोधस्वरूप याने ज्ञानस्वरूप जान और सुख से विचर ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! अज्ञान एक है या नाना हैं ॥ उ० ॥ अज्ञान एक है ॥ प्र० ॥ जब अज्ञान एक है तब तिस एक अज्ञान के नाश होने से उसका कार्य जगत्का भी स्वरूप से ही नाश होजाना चाहिये ॥ उ० ॥ यद्यपि अज्ञान एकही है तथापि उसके कार्यतन्मात्रा और तन्मात्रा का कार्य अंतःकरणरूपी भाग अनन्त हैं जैसे आकाश एक है पर अनेक घटरूपी उपाधियों के साथ यह अनेक भेदको प्राप्त होरहा है और जब घटरूपी उपाधि नष्ट होजाती है तब वही घटाकाश महाकाश में मिलजाता है तैसेही जिस अंतःकरण में ज्ञानरूपी प्रकाश उदय होता है वही अंतःकरण नाशको प्राप्त होजाता है और दृष्टि नष्ट हो अथवा

और अपने ज्ञान स्वरूप को प्राप्त होकर सुखपूर्वक संसार में विचर ॥ १० ॥ प्र० ॥ जंत्र सारा जगत् रज्जु सर्प की तरह कल्पित है और मिथ्या है तब फिर बंध मोक्ष पुरुष को कैसे हो सके हैं ॥

मूलम् ॥

मुक्ताभिमानीमुक्तो हि बद्धो बद्धाभि-
मान्यपि ॥ किंवदन्तीह सत्येयं यामतिः
सा गतिर्भवेत् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ॥

मुक्ताभिमानी मुक्तः हि बद्धः बद्धा-
भिमानी अपि किंवदन्ती इह सत्या
इयम् या मतिः सा गतिः भवेत् ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
मुक्ताभि-	(मुक्ति का	बद्धः = बद्ध है	
मानी	(अभिमानी	हि = क्योंकि	
मुक्तः = मुक्त है		इह = इस संसार	
बद्धाभि-	(बद्ध का अ-	में	
मानी	(भिमानी	इयम् = यह	

सत् चित आनंदरूपकरके जान लिया है वह फिर जन्ममरणरूपी बन्धको प्राप्त नहीं होता है हे जनक! तू अपने को ही आनंदरूप और परमानन्द बोधस्वरूप याने ज्ञानस्वरूप जान और सुख से विचर ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! अज्ञान एक है या नाना हैं ॥ उ० ॥ अज्ञान एक है ॥ प्र० ॥ जब अज्ञान एक है तब तिस एक अज्ञान के नाश होने से उसका कार्य जगत्का भी स्वरूप से ही नाश होजाना चाहिये ॥ उ० ॥ यद्यपि अज्ञान एकही है तथापि उसके कार्यतन्मात्रा और तन्मात्रा का कार्य अंतःकरणरूपी भाग अनन्त हैं जैसे आकाश एक है पर अनेक घटरूपी उपाधियों के साथ वह अनेक भेदको प्राप्त होरहा है और जब घटरूपी उपाधि नष्ट होजाती है तब वही घटाकाश महाकाश में मिलजाता है तैसेही जिस अंतःकरण में ज्ञानरूपी प्रकाश उदय होता है वही अंतःकरण नाशको प्राप्त होजाता है और वही जीव जो अतक बंध या मुक्त होजाता है बाकी सब बन्ध में पड़े रहते हैं जैसे दश पुरुष सोयेहुये अपने २ स्वप्ने को देखते हैं जिसकी निद्रा दूर होजाती है उसी का स्वप्न नष्ट होजाता है और लोग अपने २ स्वप्नों को देखते ही रहते हैं हे राजन् ! अब तू अज्ञानरूपी निद्रासे जाग

और अपने हल स्वरूप को प्रलहोकर सुन्दर
सेतार में बिचर ॥ १० ॥ २० ॥ अब सग जगद रज्जु
तर्ज की तरह बल्लिगई और निष्ठा है सब दिर दंभ
नेह पुन को बँते हो सत्ते हैं ॥

इति ॥

मुक्ताभिमानो मुक्तो हि बद्धो बद्धाभि-
मान्यपि ॥ किंवदन्ती ह सत्येयं यामतिः
सा गतिर्भवेत् ॥ ११ ॥

पदभेदः ॥

मुक्ताभिमानो मुक्तः हि बद्धः बद्धाभि-
मानो अपि किंवदन्ती इह सत्या-
यम् या मतिः सा गतिः भवेत् ॥

जन्मदः	शब्दार्थः	जन्मदः	शब्दार्थः
मुक्तानि	(मुक्तिश्च	बद्धः	= बद्ध है
मानो	(अभिमानो	हि	= क्योंकि
मुक्तः	= मुक्त है	इह	= इन सेतार
बद्धानि	(बद्धका ज-		
मानो	(अभिमानो	इति	= यह

किंवदन्ती = लोकवाद

सत्या = सत्य है कि

या = जैसी

मतिः = मति है

सा = वैसी ही

गतिः = गति

भवेत् = होती है

भावार्थ ॥

हे जनक ! बन्धका कारण अभिमान है ॥ ब्राह्मणोंहं क्षत्रियोहं वैश्योहं शूद्रोहं ॥ मैं ब्राह्मणहूं मैं क्षत्रियहूं मैं वैश्यहूं मैं शूद्रहूं जैसा २ जिसको अभिमान होता है वैसे २ वह कर्मों को करके उनके फलोंको भोक्ता है और एक जन्मसे दूसरे जन्मको प्राप्त होता है और वही बन्धायमान कहा जाता है और जिसको ऐसा अनुभव है ॥ नाहं ब्राह्मणः न क्षत्रियः ॥ न मैं ब्राह्मणहूं न क्षत्रियहूं न वैश्यहूं न शूद्रहूं किंतु ॥ शुद्धोहं निरंजनोहं निराकारोहं निर्विकल्पोहं ॥ किंतु मैं शुद्धहूं मायामलसे रहितहूं आकार से भी रहितहूं विकल्प से भी रहितहूं नित्यमुक्तहूं ॥ बंध मोक्ष ये सब मन के धर्म हैं मेरे मैं ये सब तीनोंकाल में नहीं हैं मैं सब का साक्षी हूं ऐसे अभिमानवाला पुरुष नित्यमुक्त है अन्यत्र भी इसी वार्ताको कहा है ॥ देहाभिमानाय त्पापं नतद्रोयचकोटिभिः । प्रायश्चित्ताद्भवेच्छुद्धिर्नृणां

गोबधकारिणाम्॥ १ ॥ पुरुषोंको जो देहके अभिमान से पाप होता है वह पाप करोड़ों गौके बध करने से भी नहीं होता है क्योंकि करोड़ों गौके, बधकरनेवाले की शुद्धिके लिये शास्त्र में प्रायश्चित्त लिखा है अर्थात् प्रायश्चित्त करके करोड़ों गौका बधकरनेवाला भी शुद्ध होसकता है परंतु देहाभिमानी की शुद्धिके लिये शास्त्र में कोई भी प्रायश्चित्त नहीं लिखा है इसी वास्ते जातिवर्णादिक जो देहके धर्म हैं उन धर्मोंको जो आत्मा में मानते हैं वही देहाभिमानी कहे जाते हैं और वही सदा बन्धायमान रहते हैं और जो जातिवर्णों के धर्मों को आत्मा में नहीं मानते हैं किंतु अपने आत्माको असंग नित्यमुक्त शुद्ध मानते हैं वे नित्य ही मुक्त हैं हे राजन् ! दो दृष्टि कही हैं एक तो शास्त्रदृष्टि है दूसरी लौकिकदृष्टि है शास्त्रदृष्टि से तो देहादिक धर्म के अभिमानी का नामही चमार है क्योंकि अपनेको धर्मका अभिमानी मानता है " देहोहं " और जो धर्म के अभिमान से रहित है वही अपने को देहादिकों से भिन्न नित्य शुद्धबुद्ध मानता है वही मुक्त है और लोक भी कहते हैं कि जैसी जिसकी मति याने बुद्धि अन्तकालमें होती है वैसीही उसकी गति होती है अर्थात् जैसा जिसका निश्चय होता है वैसा

ही उसको फल प्राप्त होता है हे राजन् ! तू भी अपने को शुद्ध बुद्ध मुक्तरूप निश्चय कर ॥ ११ ॥ जनक जी कहते हैं हे भगवन् ! जीवात्माको जो बन्ध और मोक्ष हैं वे दोनों वास्तवसे हैं या अवास्तव से हैं यदि बन्ध वास्तव से हो तब उसकी निवृत्ति कदापि न हो यदि मोक्षही वास्तव हो तो जीवको बन्ध कदापि न हो ॥ इस शंका के उत्तरको आगेवाले वाक्य करके अष्टावक्रजी कहते हैं ॥

मूलम् ॥

आत्मा साक्षी विभुः पूर्ण एको मुक्तश्चि
दक्रियः ॥ असङ्गो निःस्पृहः शान्तो भ्रमा
त्संसारवानिव ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ॥

आत्मा साक्षी विभुः पूर्णः एकः
मुक्तः चित् अक्रियः असंगः निःस्पृहः
शान्तः भ्रमात् संसारवान् इव ॥

अन्वयः शब्दार्थ

आत्मा = आत्मा

साक्षी = साक्षी है

अन्वयः शब्दार्थ

विभुः = व्यापक है

पूर्णः = पूर्ण है

एकः = एकहै	निःस्पृहः = इन्द्रादि-
मुक्तः = मुक्तहै	न है
चित् = चैतन्यरूपहै	शान्तः = शान्तहै
अक्रियः = क्रियारहि-	भ्रमान् = भ्रमवेया-
तहै	गण
असंगः = संगरहितहै	संसारवान् = संसारवान्
	एव = भावताहै

भावार्थ ॥

हे जनक ! पन्ध मोक्ष दोनों अशक्य हैं वंशत अ-
पने स्वरूप की अज्ञानतामें देहादियों में अविमान
करके जीव अपने को पन्धायमान करके मुक्त होने की
इच्छा करता है वास्तव में न उसमें पन्ध है न मोक्ष
है जीवआत्मा नित्य है एक है पूर्ण है निर्दोष मुक्त है
असंग है निःस्पृह है शान्त है भ्रमवर्ग्ये संसारवाला
भाव होता है वास्तवसे उस में संगर तीनों शान्त में
नहीं है इसलिये एक दृष्टान्त यहलें है ॥ एक दुग्धवा
नाम घेयकुम्भ था और उसकी स्त्री का नाम प्रसीतिथा
एक दिन उसकी स्त्री उनके साथ लड़ाई लगीदा द-
रके बर्ती पत्नीगई तब यह स्त्री को बड़ेजनेदे लिये
लंगल में गड़ा धरोपर एक मछरके डमरों नित्य
और उमने पूरत नू लंगल में बड़े दमक है उमने

ही उसको फल प्राप्त होता है हे राजन् ! तू भी अपने को शुद्ध बुद्ध मुक्तरूप निश्चय कर ॥ ११ ॥ जनक जी कहते हैं हे भगवन् ! जीवात्माको जो बन्ध और मोक्ष हैं वे दोनों वास्तवसे हैं या अवास्तव से हैं यदि बन्ध वास्तव से हो तब उसकी निवृत्ति कदापि न हो यदि मोक्षही वास्तव हो तो जीवको बन्ध कदापि न हो ॥ इस शंका के उत्तरको आगेवाले वाक्य करके अष्टावक्रजी कहते हैं ॥

मूलम् ॥

आत्मासाक्षीविभुः पूर्णएकोमुक्तश्चि
दक्रियः ॥ असङ्गो निःस्पृहः शान्तो भ्रमा
त्संसारवानिव ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ॥

आत्मा साक्षी विभुः पूर्णः एकः
मुक्तः चित् अक्रियः असंगः निःस्पृहः
शान्तः भ्रमात् संसारवान् इव ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्मा = आत्मा		विभुः = व्यापक है	
साक्षी = साक्षी है		पूर्णः = पूर्ण है	

एकः = एकहै	निःस्पृहः = इच्छारहित है
मुक्तः = मुक्तहै	शान्तः = शान्तहै
चित् = चैतन्यरूपहै	भ्रमात् = भ्रमके कारण
अक्रियः = क्रियारहितहै	संसारवान् = संसारवान्
असंगः = संगरहितहै	इव = भासताहै

भावार्थ ॥

हे जनक ! बन्ध मोक्ष दोनों अवास्तव हैं केवल अपने स्वरूप की अज्ञानतासे देहादिकों में अभिमान करके जीव अपने को बन्धायमान करके मुक्त होने की इच्छा करता है वास्तव से न उसमें बन्ध है न मोक्ष है जीवआत्मा नित्यहै एक है पूर्ण है नित्यहै मुक्त है असंग है निःस्पृह है शान्त है भ्रमकरके संसारवाला भान होता है वास्तवसे उस में संसार तीनों काल में नहीं है इसविषे एक दृष्टांत कहते हैं ॥ एक पुरुषका नाम वेवकूक्रथा और उसकी स्त्री का नाम प्रजोतीया एक दिन उनकी स्त्री उसके साथ लड़ाई सगड़ा करके कहीं चलीगई तब वह स्त्री को खोजनेके लिये जंगल में गया वहांपर एक तपस्वी उसको मिला और उससे पूछा तू जंगल में क्यों घूमता है उत्तने

कहा मैं अपनी स्त्री को खोजता हूँ तब उस तपस्वी ने कहा तुम्हारी स्त्री का क्या नाम है और तुम्हारा क्या नाम है तब उसने कहा मेरा नाम धेवकूफ है और मेरी स्त्री का नाम फ़जीती है तब उसने कहा “धेवकूफ” को फ़जीतियों की क्या कमती है जहाँपर जावैगा वहाँपर उस धेवकूफ को फ़जीती मिल जावैगी दाष्टी-त में जबतक जीव अज्ञानी मूर्ख बना है तबतक इसको जन्ममरणरूपी फ़जीतियों की क्या कमती है जब ज्ञानवान् होगा तब बंध से रहित हो जावैगा ॥ जनकजी कहते हैं हे भगवन्! नैयायिक लोक आत्मा को वास्तव से बंध मोक्ष मानते हैं उनका मानना ठीक है या नहीं ॥ अष्टावक्र जी कहते हैं हे राजन्! नैयायिकादिकों का कथन सवेमुक्ति और वेदसे विरुद्ध है यदि आत्मा को वास्तव से बंध होती तब उसकी निगृहीत कदापि न होती और साधनभी सब व्यर्थ हो जाते ऐसा तो नहीं है क्योंकि वेद उसकी निगृहीत को निगृहता है और वाग्नय में आत्मा संसारी नहीं है इसमें दश हेतुओं को दिखाने हैं ॥ अहंकारादिकों का भी आत्मा साक्षी है पर कर्ता नहीं है १ विभु याने सर्वका अधिष्ठान है २ ॥ ३ एक है याने सजाती विज्ञाना स्वयं भेद ॥ रहित है ४ मुक्त है अर्थात्

माया और मायाके कार्य देहादिकों से भी रहित है ५
चित है याने चैतन्य स्वरूप है ६ अक्रिय है याने चेष्टा
से रहित है परिच्छिन्न में चेष्टा याने क्रिया होती है व्या-
पक में नहीं होती है ७ असंग है याने सम्पूर्ण सम्यग्धों
से रहित है ८ निःस्पृह है अर्थात् विषयों की अभिला-
षा से भी रहित है ९ शान्त है याने प्रवृत्ति निवृत्ति
देहादि अन्तःकरण के धर्मों से रहित है १० इन दश
हेतुओं करके आत्मा वास्तव से संसारी नहीं होसक्त
है ॥ असंगो ह्ययं पुरुषः ॥ यह आत्मा असंग है ॥ न
जायते म्रियते वा कदाचित् ॥ आत्मा वास्तव से न ज-
न्मता है न मरता है यह गीतावाक्य और अनेक
भुतिवाक्य भी आत्मा की असंगता में प्रमाण हैं इसी
में नैयायिकादिक मिथ्यावादी साधित होते हैं ॥ १२ ॥
मैं परिच्छिन्न हूँ मेरे यह देहादिक हैं मैं सुखी हूँ
मैं दुःखी हूँ इस तरह के जो अन्तःकरण के धर्मों को
अध्यास कर के आत्मा में जीवोंने मान रखा है तिस
अध्यासरूपी भ्रमकी निवृत्तितो एकबार असंग आत्मा
के उपदेश करने से नहीं होती है इसीपर व्यास
भगवान् ने सूत्र कहा है ॥ आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॥
ज्ञानकी स्थिति के लिये श्रवण मननादिकों की आवृ-
त्ति पुनः २ करै क्योंकि उदात्तक ने अपने पुत्र के

प्रति नववारं तत्त्वमसि महावाक्य का उपदेश कि-
याहै चारंवार श्रवणादिकोंके करने से चित्तकी वृत्ति
विजाती भावनाका त्यागकरके सजाती भावनावाली
होकर आत्माकार होजाती है इसी वास्ते जनकजीको
पुनः २ आत्मज्ञान का उपदेश अष्टावक्रजी करते हैं ॥

मूलम् ॥

कूटस्थं बोधमद्वैतमात्मानं परिभा-
वय ॥ आभासोहंभ्रमंमुक्ता भावंवाह्य
मथान्तरम् ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ॥

कूटस्थम् बोधम् अद्वैतम् आत्मा-
नम् परिभावय आभासः अहम् भ्रमम्
मुक्ता भावम् वाह्यम् अथ अन्तरम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अहम् = मैं

आभासः = आभास

रूपअहंका-

री जीवहं

अन्वयः शब्दार्थ

इति = ऐसे

भ्रमम् = भ्रमको

अथ = और

वाह्यम् = बाहर

अन्तरम् = भीतर	बोधम् = बोधरूप
भावम् = भावको	अद्वैतम् = अद्वैत
मुक्ता = छोड़करके	आत्मानम् = आत्मा
त्वम् = तू	को
कूटस्थम् = कूटस्थ	परिभावय = विचारकर

भावार्थ ॥

हे जनक !—“मैं आभास हूँ” “मैं अहंकार हूँ” इस भ्रम का त्याग करके और जो बाहर के पदार्थों में ममता हो रही है कि यह मेरा शरीर है मेरे यह कान नाका-दिक हैं इन सबमें॥अहं॥और॥मम॥भावना को त्याग करके और अन्तर अन्तःकरणके धर्म जो सुख दुःखा-दिक हैं उनमें जो तुझको अहंभावना हो रही है उसको त्यागकरके आत्मा को अकर्ता कूटस्थ असंग ज्ञानस्वरूप अद्वैत व्यापक निश्चय कर ॥ १३ ॥ जनकजी प्रार्थना करते हैं कि महाराज ! अनादि कालका जो देहादिकों में अभिमान हो रहा है वह एक बार के उपदेश से दूर नहीं हो सक्ता है आप पुनः २ मेरे को उपदेश करिये ता कि श्रवण करके मेरा देहा-दि अभिमान दूर हो जावे ॥ इस प्रश्नको सुनकर अष्टा-वक्र जी फिर आत्मविद्या के उपदेश को करते हैं ॥

मूलम् ॥

देहाभिमानपाशेन चिरंवद्धोसिपु
त्रक ॥ बोधोहंज्ञानखड्गेन तन्निष्कृत्य
सुखीभव ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ॥

देहाभिमानपाशेन चिरम् बद्धः असि
पुत्रक बोधः अहम् ज्ञानखड्गेन तत्
निष्कृत्य सुखी भव ॥

अन्वयः शब्दार्थ

पुत्रक = हे पुत्र

देहाभिमान = { देहके अ-
भिमानरू-
पा पाशसे

चिरम् = बहुत का-
लका

बद्धः = बंधा हुआ

असि = तू है

अहम् = मैं

बोधः = बोधरूपहं

अन्वयः शब्दार्थ

इति = ऐसे

ज्ञानखड्गेन = ज्ञानरूपा
तलवारसे

तत् = उसको या-
नी उस र-
स्सीको

निष्कृत्य = काट करके

त्वम् = तू

सुखीभव = सुखी हो

भावार्थ ॥

हे जनक ! “देहोऽहं” मैं देह हूं इस प्रकार के अभिमान करके तू चिरकालसे बन्धायमान हो रहा है अर्थात् अपने को संसार बंध में डाल रहा है अब तू आत्मज्ञानरूपी खट्ग से उसका छेदन करके मैं ज्ञानस्वरूप हूं नित्यमुक्तहूं ऐसा निश्चय करके सुखी हो तेरे मैं बन्धन तीनोंकाल में नहीं है ॥ १४ ॥ जनक जी फिर पूछते हैं हे भगवन् ! पतंजलिमतानु-यायी चित्तवृत्ति के निरोध रूप योगकोही बंधकी निवृत्तिकहेतु मानते हैं सो उनका मानना ठीक है या नहीं है ॥

मुलम् ॥

निःसंगो निष्क्रियो सित्वं स्वप्रकाशो निरंजनः ॥ अयमेवहिते बन्धः समाधिमनुतिष्ठसि ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ॥

निःसंगः निष्क्रियः असि त्वम् स्वप्रकाशः निरंजनः अयम् एव हि ते बन्धः समाधिम् अनुतिष्ठसि ॥

मूलम् ॥

देहाभिमानपाशेन चिरंवद्धोसिपु
त्रक ॥ बोधोहंज्ञानखड्गेन तन्निष्कृत्य
सुखीभव ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ॥

देहाभिमानपाशेन चिरम् बद्धः असि
पुत्रक बोधः अहम् ज्ञानखड्गेन तत्
निष्कृत्य सुखी भव ॥

अन्वयः शब्दार्थ
पुत्रक = हे पुत्र
देहाभिमान = { देहके अ-
भिमानरू-
पापाशसे
चिरम् = बहुत का-
लका
बद्धः = बँधा हुआ
असि = तू है
अहम् = मैं
बोधः = बोधरूपहं

अन्वयः शब्दार्थ
इति = ऐसे
ज्ञानखड्गेन = ज्ञानरूपी
तलवारसे
तत् = उसको या-
नी उस र-
स्सीको
निष्कृत्य = काट करके
त्वम् = तू
सुखीभव = सुखी हो

भावार्थ ॥

हे जनक ! “देहोऽहं” मैं देह हूं इस प्रकार के अभिमान करके तू चिरकालसे बन्धायमान हो रहा है अर्थात् अपने को संसार बंध में डाल रहा है अथ तू आत्मज्ञानरूपी स्वप्न से उसका छेदन करके मैं ज्ञानस्वरूप हूं नित्यनिरुद्ध ऐसा भ्रम करके सुखी हो तो मैं बन्धन तीनो काल में नहीं हूँ ॥ १४ ॥ जनक जी फिर पूछते हैं हे भगवन् ! पतंजलिमतानु-यायी विसृष्टि के निरोध रूप योगकोही बंधकी निवृत्तिपाहंतु मानते हैं सो उनका मानना ठीक है या नहीं है ॥

सूत्रम् ॥

निःसंगो निष्क्रियो सित्वं स्वप्रकाशो निरंजनः ॥ अयमेव हि ते बन्धः समाधिमनुतिष्ठसि ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ॥

निःसंगः निष्क्रियः असि त्वम् स्वप्रकाशः निरंजनः अयम् एव हि ते बन्धः समाधिमनुतिष्ठसि ॥

मूलम् ॥

देहाभिमानपाशेन चिरंवद्धोसिपु
त्रक ॥ बोधोहंज्ञानखड्गेन तन्निष्कृत्य
मुखीभव ॥ १४ ॥

पदव्येदः ॥

देहाभिमानपाशेन चिरम् बद्धः असि
पुत्रक बोधः अहम् ज्ञानखड्गेन तत्
निष्कृत्य सुखी भव ॥

अन्वयः शब्दार्थ

पुत्रक = हे पुत्र

देहाभिमान = देहके अ-

भिमानरू-

पाशेन (पी पाशसे

चिरम् = बहुत का-

लका

बद्धः = बँधाहुआ

असि = तू, हे

अहम् = मैं

बोधः = बोधरूपहं

अन्वयः शब्दार्थ

इति = ऐसे

ज्ञानखड्गेन = ज्ञानरूपी

तलवारसे

तत् = उसको या-

नी उस र-

स्सीको

निष्कृत्य = काट करके

त्वम् = तू

मुखीभव = सुखी हो

भावार्थ ॥

हे जनक ! “देहोऽहं” मैं देह हूँ इस प्रकार के अभिमान करके तू चिरकालसे बन्धायमान होरहा है अर्थात् अपने को संसार बंध में डाल रहा है अब तू आत्मज्ञानरूपी खट्ग से उसका छेदन करके मैं ज्ञानस्वरूप हूँ नित्यमुक्तहूँ ऐसा निश्चय करके सुखी हो तेरे में बन्धन तीनोंकाल में नहीं है ॥ १४ ॥ जनक जी फिर पूछते हैं हे भगवन् ! पतंजलिमतानु-यायी चित्तवृत्ति के निरोध रूप योगकोही बंधकी निवृत्तिकोहेतु मानते हैं सो उनका मानना ठीक है या नहीं है ॥

मुञ्जम् ॥

निःसंगो निष्क्रियो सित्वं स्वप्रकाशो निरंजनः ॥ अयमेव हिते बन्धः समाधिमनुतिष्ठसि ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ॥

निःसंगः निष्क्रियः असि त्वम् स्वप्रकाशः निरंजनः अयम् एव हि ते बन्धः समाधिम् अनुतिष्ठसि ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
त्वम् = तू	अयम् एव = यह ही
निःसंगः = संगरहित	ते = तेरा
है	बन्धः = बंधन है
निष्क्रियः = क्रियार-	हि = जो
हित है	समाधिम् = समाधिको
स्वप्रकाशः = स्वयंप्रका-	अनुतिष्ठसि = अनुष्ठा-
शरूप है	न करता है
निरंजनः = निर्दोष है	

भावार्थ ॥

अष्टावक्र जो कहते हैं हे जनक ! तू निःसंग है याने मयके सम्यग्बन्ध से तू रहित है और क्रिया से भी तू रहित है सम्यग्बन्ध से रहित और क्रिया से रहित आत्मा की प्राप्ति के लिये जो समाधिका अनुष्ठान करना है उसीका नाम बन्ध है जो स्वप्रकाश आत्माका ध्यान जड़वृत्ति को निरोध करके करता है उसमें बढ़कर और कोई बन्ध नहीं है और न कोई अज्ञान है आत्मा के स्वरूपके ज्ञान से भिन्न जितना मुक्ति के लिये उपाय कहा है वह सब बन्धकाही कारण है यही बन्धरूपही मय है ॥ १५ ॥ अप

अष्टावक्रजी जनककी विपरीतबुद्धिके दूर करने के निमित्त उपदेश करते हैं ॥

मूलम् ॥

त्वया व्याप्तमिदं विश्वं त्वयि प्रोतं यथार्थतः ॥ शुद्धबुद्धस्वरूपस्त्वं मागमः क्षुद्रचित्तताम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ॥

त्वया व्याप्तम् इदम् विश्वम् त्वयि प्रोतम् यथार्थतः शुद्धबुद्धस्वरूपः त्वम् मागमः क्षुद्रचित्तताम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

इदम् = यह

विश्वम् = संसार

त्वया = तुमकरके

व्याप्तम् = व्याप्त है

त्वयि = तुम्हीं में

प्रोतम् = परोया है

त्वम् = तू

अन्वयः शब्दार्थ

यथार्थतः = परमार्थ से

शुद्ध = { शुद्ध

बुद्ध = { चेतन्य

स्वरूपः = { स्वरूप है

क्षुद्रचि = { विपरीतचि-

त्तताम् = { त्तवृत्तिको

मागमः = मतप्राप्तहो

भावार्थ ॥

हे जनक ! जैसे स्वर्ण करके कंकणादिक व्याप्त हैं और मृत्तिका करके जैसे घटादिक व्याप्त हैं तैसे यह सारा जगत् तुझ चेतन करके व्याप्त है और जैसे मालाके सूत में दाने सब पुरोये हुये रहते हैं तैसे यह सारा जगत् तेरे चेतनरूप तागे करके पुरोये हुये हैं जैसे मिथ्या रजत शुक्तिकी सत्ता करके सत्यवत् प्रतीत होती है वास्तव से वह सत्य नहीं है तैसे चेतनकी सत्ता करके जगत् सत्यकी तरह प्रतीत होता है वास्तव से जगत् सत्य नहीं है जगत् को अपनी सत्ता कुछ भी नहीं है तेरे संकल्पसे यह जगत् उत्पन्न हुआ है तेरे संकल्पके निवृत्त होनेसे यह जगत् भी निवृत्त हो जावेगा तू अपने शुद्धस्वरूप में स्थित हो क्षुद्रताको मत प्राप्त हो ॥ मन्दालसाने भी अपने पुत्रोंको यही उपदेश करके संसार बन्धनसे छुड़ा दिया था ॥ शुद्धोसि बुद्धोसि निरंजनोसि संसारमायापरिवर्जितोसि ॥ संसारस्वप्न स्त्यजमोहनिद्रां मन्दालसावाक्यमुवाचपुत्रम् १ ॥ हे तात ! तू शुद्ध है ज्ञानस्वरूप है मायामलसे तू रहित है तू संसाररूपी असत् माया नहीं है संसाररूपी स्वप्नः मोहरूपी निद्रा करके प्रतीत हो रहा है इसको तू त्याग इस प्रकार माता के उपदेश से वे जीवन्मुक्त

होगये हे जनक ! तू भी ऐसा विचार करके संसार में
जीवन्मुक्त होकर विचर १६ ॥

मूलम् ॥

निरपेक्षो निर्विकारो निर्भरः शीतला-
शयः ॥ अगाधबुद्धिरक्षुब्धो भवचि-
न्मात्रवासनः ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ॥

निरपेक्षः निर्विकारः निर्भरः शीत-
लाशयः अगाधबुद्धिः अक्षुब्धः भव-
चिन्मात्रवासनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
त्वम् = तू		शीतला	शान्ति
निरपेक्षः = { अपेक्षा		शयः = { और सु-	
{ रहित है		{ श्रिता	
निर्विकारः = विकार-		{ स्थान है	
रहित है		अगाध	
निर्भरः = चिरघन		बुद्धिः = { अतन्त्र	
रूप है		{ बुद्धिरूप	
		{ है	

क्रियासे रहित होकर चैतन्य स्वरूप में निष्ठावाला हो ॥
 १७ ॥ अष्टावक्रजीने उत्थानका दूसरे श्लोक में जनक
 जीको मोक्षका उपाय इस प्रकार उपदेशकिया कि
 विषयों को तू विषके तुल्य त्यागकर और सत्यको तू
 अमृत के तुल्य पानकर परन्तु विषयों की विषकी
 तुल्यता में और सत्यरूप आत्मा की अमृतकी तुल्यता
 में कोईभी हेतु नहीं कहा अब आगे उसको कहते हैं ॥

मूलम् ॥

साकारमनृतं विद्धि निराकारं तु निश्च-
 लम् ॥ एतत्तत्त्वोपदेशेन न पुनर्भवस-
 म्भवः ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ॥

साकारम् अनृतम् विद्धि निराकार-
 म् तु निश्चलम् एतत्तत्त्वोपदेशेन न
 पुनः भवसम्भवः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
साकारम् = शरीरादि-	कोको	अनृतम् = मिथ्या	विद्धि = जान

निराकारम् =	$\left. \begin{array}{l} \text{निराकार} \\ \text{आत्म-} \\ \text{तत्त्वको} \end{array} \right\}$	एतत्तत्त्वो इस यथार्थ
		पदेशेन उपदेशसे
		पुनः = फिर
निश्चलम् = निश्चल		भवस =
नित्य		$\left. \begin{array}{l} \text{संसारविपे} \\ \text{उत्पत्ति} \end{array} \right\}$
		न = नहीं
विद्धि = जान		भवति = होताहै

भावार्थ ॥

हे जनक ! साकार जो शरीरादिक हैं इनको तू मिथ्याजान जो मिथ्या होकर बन्धका हेतु होता है वही विपके तुल्य त्यागने योग्य भी होता है इसीमें एक दृष्टान्त कहते हैं ॥ एक बनिये के घरमें लड़का नहीं होता था एकदिन रात्रीके समय वह पलंगपर अपनी स्त्री के साथ सोया था उसकी स्त्रीने उस बनियेसे कहा यदि परमेश्वर हमको एकलड़का देदेवै तब उसको कहाँपर सुलावेंगे बनिया थोड़ासा पीछे हटा और कहा कि उस लड़केको यहां बीचमें सुलावेंगे फिर स्त्री ने कहा यदि एक और होजावै तब उसको कहाँपर सुलावेंगे वह थोड़ासा और पीछे हटकर कहनेलगा उसकोभी बीचमें सुलालेवेंगे फिर स्त्रीने कहा यदि एक

और होजावे तब उसको कहां मुलावेंगे फिर पीछे
 हटकर यह कहताहीया कि इतने में नीचे गिरपड़ा
 और उसकी टांग टूटगई हाय हाय करके रोनेलगा
 तब इधर उधर से पड़ोसके लोग आकर पूछने लगे
 क्याहुआ कैसे टांगतेरी टूटगई तब बनिघेने कहा बिना
 हुये मिथ्या लड़के ने मेरीटांग तोड़दी यदि सच्चा होता
 तब न जाने क्या अनर्थ करता तैसेही साकार जितने
 स्त्रीपुत्रादिक विषय हैं वे तब दुःखके हेतु हैं ये विषके
 तुल्य त्यागने योग्य हैं ॥ और हे जनक ! जो निरा-
 कार आत्मतत्त्व है वह निश्चल है नित्य है श्रुति
 भी ऐसी कहती है "नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" आत्मा
 नित्य विज्ञान आनन्दस्वरूप है उसी आत्मतत्त्व में
 स्थिरता को पाकर हे जनक ! फिर तू जन्ममरण-
 रूपी संसारको नहीं प्राप्त होवेगा ॥ १८ ॥ अब अष्टा-
 वक्र जी वर्णाश्रमी धर्मवाले स्थूलशरीरसे और धर्मा-
 ऽधर्मरूपी संस्कारवाले लिङ्गशरीरसे विलक्षण परिपूर्ण
 चैतन्यस्वरूप आत्माके दृष्टान्त के सहित कहते हैं ॥

मूलम् ॥

यथैवादर्शमध्यस्थैरूपैतः परितस्तु

.....	} निराकार आत्म- तत्त्वको	एतत्तत्त्वो	} इसं यथार्थ उपदेशसेः
निराकारम् =		पदेशेन	
		पुनः =	फिर
निश्चलम् = निश्चल	}	भवस =	} संसारविपे
नित्य		म्भवः =	
		न =	नहीं
विद्धि = जान		भवति =	होती है

भावार्थ ॥

हे जनक ! साकार जो शरीरादिक हैं इनको तू मिथ्याजान जो मिथ्या होकर बन्धका हेतु होता है वही विपके तुल्य त्यागने योग्य भी होता है इसीमें एक दृष्टान्त कहते हैं ॥ एक बनिये के घरमें लड़का नहीं होता था एकदिन रात्रीके समय वह पलंगपर अपनी स्त्री के साथ सोया था उसकी स्त्रीने उस बनियेसे कहा यदि परमेश्वर हमको एकलड़का देदेवे तब उसको कहाँपर सुलावेंगे बनिया थोड़ासा पीछे हटा और कहा कि उस लड़केको यहां बीचमें सुलावेंगे फिर स्त्री ने कहा यदि एक और होजावे तब उसको कहाँपर सुलावेंगे वह थोड़ासा और पीछे हटकर कहने लगा उसकोभी बीचमें सुलावेंगे फिर स्त्रीने कहा यदि एक

और होजावै तब उसको कहां मुलावैगे फिर पीछे हटकर यह कहताहीया कि इतने में नीचे गिरपड़ा और उसकी टांग टूटगई हाय हाय करके रोनेलगा तब इधर उधर से पड़ोसके लोग आकर पूछने लगे क्याहुआ कैसे टांगतेरी टूटगई तब बनियेने कहा बिना हुये मिथ्या लड़के ने मेरीटांग तोड़दी यदि सच्चा होता तब न जाने क्या अनर्थ करता तैसेही साकार जितने स्त्रीपुत्रादिक विषय हैं वे सब दुःखके हेतु हैं ये विषके तुल्य त्यागने योग्य हैं ॥ और हे जनक ! जो निराकार आत्मतत्त्व है वह निश्चल है नित्य है श्रुति भी ऐसी कहती है “नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म” आत्मा नित्य विज्ञान आनन्दस्वरूप है उसी आत्मतत्त्व में स्थिरता को पाकर हे जनक ! फिर तू जन्ममरण-रूपी संसारको नहीं प्राप्त होवेगा ॥ १८ ॥ अब अष्टावक्र जी वर्णाश्रमी धर्मवाले स्थूलशरीरसे और धर्माधर्मरूपी संस्कारवाले लिङ्गशरीरसे विलक्षण परिपूर्ण चैतन्यस्वरूप आत्माको दृष्टान्त के सहित कहते हैं ॥

मूलम् ॥

यथैवादर्शमध्यस्थेरूपैतः परितस्तु

सः ॥ तथैवास्मिञ्छरीरेऽन्तःपरितःपरमे
श्वरः ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ॥

यथा एव आदर्शमध्यस्थे रूपे अ-
न्तः परितः तु सः तथा एव अस्मि-
न् शरीरे अन्तः परितः परमेश्वरः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यथा = जैसे		भासते = भासताहै	
एव = निश्चयक-		तथाएव = वैसाही	
रूपे		अस्मिन् (इसशरीर	
आदर्शम) दर्पणमध्य		शरीरे) में	
ध्यस्थे) स्थितहुये		अन्तः) भीतर और	
रूपे = प्रतिबिम्बमें		परितः) बाहरसे	
सः = वह यानी		परमेश्वरः = परमेश्वर	
शरीर		भासताहै	

भावार्थ ॥

हे जनक ! जैसे दर्पण में प्रतिबिम्बित जो शरीर-
दिक हैं उनके अन्तर मध्य बाहर चारोंतरफ दर्पण

व्याप करके वर्तता है याने वह प्रतिबिम्ब अध्वरत है दर्पण में देखनेमात्रही है स्वरूपसे सत्य नहीं है तैसे ही अपने आत्मा में अध्यस्त जो शरीरहै उसके भीतर बाहर मध्य सर्वओर चेतनआत्माही व्याप्यकरके स्थित है हे राजन् ! कल्पित पदार्थ की अधिष्ठान से भिन्न अपनी सत्ता कुछभी नहीं होती है अधिष्ठानकी सत्ता करके वह सत्यवत् प्रतीत होताहै जैसे शुक्ति में रजत दर्पण में प्रतिबिम्ब प्रतीत होता है तैसे शरीरादिक भी आत्मा में उसी की सत्ताकरके सत्यकी नाई प्रतीत होते हैं वास्तव से येभी सत्य नहीं हैं मिथ्या हैं ॥१९॥ दर्पण के दृष्टान्त से कदाचित् जनकको ऐसा भ्रम हो जायै कि जैसे दर्पण परिच्छिन्न है तैसे ही आत्माभी परिच्छिन्न होगा इस भ्रम के दूरकरने के लिये ऋषि दूसरा दृष्टान्त देते हैं ॥

मूलम् ॥

एकं सर्वगतं व्योम बहिरन्तर्यथा घटे ॥ नित्यं निरन्तरं ब्रह्म सर्वभूतगणेश्वरं ॥ २० ॥

पदव्युत्पत्तिः ॥

एकम् सर्वगतम् व्योम बहिः अ-

न्तः यथा घटे नित्यम् निरन्तरम् ब्र-
ह्म सर्वभूतगणे तथा ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
यथा = जैसे		अस्ति = स्थित है	
सर्वगतम् = सर्वगत		तथा = तैसेही	
एकम् = एक		नित्यम् = नित्य	
व्योम = आकाश		निरन्तरम् = निरंतर	
बहिः = बाहर		ब्रह्म = ब्रह्म	
अन्तः = भीतर		सर्वभूत = सबभूतोंके	
घटे = घटमें		गणे शरीरविषे	
		अस्ति = स्थित है	

भावार्थ ॥

जैसे सर्वगत एकही आकाश घटपटादिकों में बाहर भीतर मध्यसे व्यापक है तैसेही नित्यअविनाशी आत्माभी संपूर्ण भूतोंके गणों में बाहर भीतर मध्यसे व्यापक है ॥“ एष ते आत्मा सर्वस्यान्तर इति श्रुतेः ” यह तेराही आत्मा सर्वके अंतर व्यापक है ऐसा जानकर हे जनक ! तू सुखपूर्वक विचर ॥ २० ॥ इति श्रीअष्टावक्रगीताप्रथमप्रकरणं समाप्तम् ॥

दूसरा अध्याय ॥

मूलम् ॥

अहो निरञ्जनः शान्तो बोधोऽहं प्रकृ-
तेः परः ॥ एतावन्तमहं कालं मोहेनैव
विडंबितः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो निरञ्जनः शान्तः बोधः अ-
हम् प्रकृतेः परः एतावन्तम् अहम्
कालम् मोहेन एव विडंबितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
अहम् = मैं		परः = परे हूँ	
निरञ्जनः = निर्दोष हूँ		अहो = आश्चर्य्य	
शान्तः = शांत हूँ		है कि	
बोधः = बोधरूप		अहम् = मैं	
हूँ		एतावन्तम् = इतने	
प्रकृतेः = प्रकृति से		कालम् = कालप-	
		र्यन्त	

न्तः यथा घटे नित्यम् निरन्तरम् ब्र-
ह्म सर्वभूतगणे तथा ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
यथा = जैसे		अस्ति = स्थित है	
सर्वगतम् = सर्वगत		तथा = तैसेही	
एकम् = एक		नित्यम् = नित्य	
व्योम = आकाश		निरन्तरम् = निरंतर	
बाहिः = बाहर		ब्रह्म = ब्रह्म	
अन्तः = भीतर		सर्वभूतगणे = सबभूतोंके शरीरविषे	
घटे = घटमें		अस्ति = स्थित है	

भावार्थः ॥

जैसे सर्वगत एकही आकाश घटपटादिकों में बाहर भीतर मध्यसे व्यापक है तैसेही नित्यअविनाशी आत्मानों संपूर्ण भूतोंके गणों में बाहर भीतर मध्यसे व्यापक है ॥“ एष ते आत्मा सर्वस्यान्तर इति श्रुतेः “यह तेराही आत्मा सर्वके अंतर व्यापक है ऐसा जानकर हे जनक ! तू सुखपूर्वक विचर ॥ २० ॥ इति श्रीअष्टावक्रगीता प्रथमप्रकरणं समाप्तम् ॥

दूसरा अध्याय ॥

मूलम् ॥

अहो निरञ्जनः शान्तो बोधोऽहं प्रकृ-
तेः परः ॥ एतावन्तमहं कालं मोहेनैव
विडंबितः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो निरञ्जनः शान्तः बोधः अ-
हम् प्रकृतेः परः एतावन्तम् अहम्
कालम् मोहेन एव विडंबितः ॥

अन्वयः शब्दार्थः

अहम् = मैं

निरञ्जनः = निर्दोषः

शान्तः = शांतः

बोधः = बोधरूपः

हं

प्रकृतेः = प्रकृति से

अन्वयः शब्दार्थः

परः = परे हूं

अहो = आश्चर्य

है कि

अहम् = मैं

एतावन्तम् = इतने

कालम् = कालप-

र्यन्तः

न्तः यथा घटे नित्यम् निरन्तरम् ब्र-
ह्म सर्वभूतगणे तथा ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
यथा = जैसे		अस्ति = स्थित है	
सर्वगतम् = सर्वगत		तथा = तैसेही	
एकम् = एक		नित्यम् = नित्य	
व्योम = आकाश		निरन्तरम् = निरंतर	
बहिः = बाहर		ब्रह्म = ब्रह्म	
अन्तः = भीतर		सर्वभूत सर्वभूतोंके	
घटे = घटमें		गणे शरीरविषे	
		अस्ति = स्थित है	

भावार्थ ॥

जैसे सर्वगत एकही आकाश घटपटादिकों में
बाहर भीतर मध्यसे व्यापक है तैसेही नित्यअधिनाशी
आत्मानों संपूर्ण भूतोंके गणों में बाहर भीतर मध्यसे
व्यापक है ॥“ एष ते आत्मा सर्वस्यान्तर इति श्रुतेः “यह
तेगही आत्मा सर्वके अंतर व्यापक है ऐसा जानकर
हे जनक ! तू मुखपूर्वक विचर ॥ २० ॥ इति श्रीअष्टा-
वक्रगीताप्रथमप्रकरणं समाप्तम् ॥

दूसरा अध्याय ॥

मूलम् ॥

अहो निरञ्जनः शान्तो बोधोऽहं प्रकृ-
तेः परः ॥ एतावन्तमहंकालं मोहेनैव
विडम्बितः ॥ १ ॥

पदद्वेदः ॥

अहो निरञ्जनः शान्तः बोधः अ-
हम् प्रकृतेः परः एतावन्तम् अहम्
कालम् मोहेन एव विडम्बितः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अहम् = मैं

निरञ्जनः = निर्दोषहूँ

शान्तः = शांतहूँ

बोधः = बोधरूप

हूँ

प्रकृतेः = प्रकृति से

अन्वयः शब्दार्थ

परः = परे हूँ

अहो = आश्चर्य्य

है कि

अहम् = मैं

एतावन्तम् = इतने

कालम् = कालप-

र्यन्त

मोहेन = अज्ञान | एव = निःसंदेह
करके | विडंबितः = ठगागयाहूं
भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी के उपदेश से जनकजी को आत्माका साक्षात्कार जब उदय हुआ तब जनकजी अपने चेतन-स्वरूप आत्माको साक्षात्कार के अपने अनुभव को प्रकट करतेहुये बाधितानुवृत्ति से पूर्व प्रतीत हुये मोहके स्मरण को बड़े आश्चर्य के साथ प्रकट करते हैं ॥ मैं निरंजन याने संपूर्ण उपाधियों से रहित होकर शांतस्वरूप होकर अर्थात् संपूर्ण विकारों से रहित होकर और प्रकृति जो मायारूपी अंधकार है उससे भी परेहोकर और बोधस्वरूप याने ज्ञानस्वरूप होकर इतने कालतक देह और आत्माके अविवेक करके दुःखी होता रहा आज हे गुरो ! आपकी कृपाकरके मैं आत्मानंद अनुभवको प्राप्तहुआहूं ॥ १ ॥

मूलम् ॥

यथाप्रकाशं याम्येको देहमेनंतथा
जगत् ॥ अतोममजगत्सर्वमथवानच
किंचन ॥ २ ॥

एदब्बेदः ॥

यथा प्रकाशयामि एकः देहम् ए-
नम् तथा जगत् जतः मन जगत्
सर्वम् अथवा न च किञ्चन ॥

जन्मपः शब्दार्थः । जन्मपः शब्दार्थः

यथा = जैसे प्रकाश (प्रकाशक-

एनम् = इतल यामि) = बताहें

देहम् = देह को जतः = जलविदे

एकः = अकेलाही मन = मन

प्रकाश (ने प्रकाश सर्वम् = समस्त

यामि) = बताहें जगत् = संसार

तथा = तैनेही जप्पाय = या

जगत् = संसार को + मन = मन

की किञ्चन = कुछ भी

न = नहीं है

भावार्थः ॥

इतलक बान्हे जलकल्लो मोहको मोहको
यहा अर इतलक बान्हे इतलको कल्लो लो जलको
देह और अल्लक विवेक जलहुआ है जलको लोहक
जुनेको बचनकरपेहें ॥ मैं मरुहो मरुहो जलको बचन

निकाल दिया जावे तब जगत् की कोई वस्तु भी सत्य नहीं रहसक्ती है नाम रूप दोनों नाशी हैं क्योंकि एक हालत में नहीं रहते हैं इसी से सारा जगत् मिथ्या साबित होता है परब्रह्म की अस्ति भाति प्रिय अंशों करके ही सत्यवत् प्रतीत होता है यदि इन तीनों अंशों की हर एक पदार्थ से पृथक् कर दिया जाय तब जगत् का कोई भी पदार्थ सत्यवत् भान नहीं होसक्ता है इसी से सिद्ध होता है कि जगत् तीनों काल में मिथ्या है और ब्रह्म ही तीनों काल में सत्य है इस युक्तिसहित अनुभव करके जनक जी कहते हैं जितना दृश्य जगत् है सो मेरे में ही अध्यस्त याने कल्पित है परमार्थदृष्टि से कोई भी देहादिक मेरे में नहीं है जैसे आकाश में नीलता मरुस्थल में जल वन्या का पुत्र शशके शृङ्ग ये सब तीनों काल में नहीं हैं तैसे ही जगत् भी वास्तव से तीनों काल में नहीं है और न कोई मेरे देहादिक है मैं माया और तिसके कार्य से परे ज्ञानस्वरूप हूँ ॥ २ ॥

मूलम् ॥

सशरीरमहोविश्वं परित्यज्यमया

धुना ॥ कुतश्चित्तकौशलादेव परमा
त्माविलोक्यते ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

गशर्गम् अहो विश्वम् परित्यज्य
मया अधुना कुतश्चित् कौशलात् एव
परमात्मा विलोक्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
अहो = आश्चर्यं	कुतश्चित् = कदा		
हे कि			
गशर्गम् = गर्ग म-	कौशलात् = कुशलता		
श्चित्	मं यान्त्र-		
	पदेश से		
विराज = विग्न का	एव = ही		
न्यागका	मया = मुक्तकाके		
के याने	अधुना = अब		
अने मे	परमात्मा = ईश्वर		
विलोक्यते =	विलोक्यते = देखा जा-		
पूदक	ता है		
मयक			
का			

भावार्थ ॥

जनक जी फिर भी कहते हैं कि लिंगशरीर और कारणशरीर के सहित सम्पूर्ण विश्व जो विचार करके शास्त्र और आचार्य्य के उपदेश करके और चातुर्ग्यता करके आत्मा से पृथक् अपनी सत्ता से शून्य आत्माकी सत्ता करके सत्यवत् भान होता था उस को मैं अब मिथ्या जानकर अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा का अवलोकन कर रहा हूँ ॥ आत्मज्ञान से अतिरिक्त और कोई भी आत्मा के अवलोकन का उपाय नहीं है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

यथानतोयतोभिन्नास्तरङ्गाः फेनबुद्बुदाः ॥ आत्मनोनतथाभिन्नं विश्वमात्मविनिर्गतम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

यथा न तोयतः भिन्नाः तरङ्गाः फेनबुद्बुदाः आत्मनः न तथा भिन्नम् विश्वम् आत्मविनिर्गतम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
यथा = जैसे		आत्म	आत्मवि-
तोयतः = जल से		विनि	= शिष्ट
तरङ्गाः = तरङ्ग		गतम् }	
फेनबुद् }	= फेन और	विश्वम् = विश्व	
बुदाः }	बुद्धा	आत्मनः = आत्मासे	
भिन्नाः = भिन्न		भिन्नम् न = भिन्न नहीं	
न = नहीं			है
तथा = वैसेही			

भावार्थ ॥

(दृष्टान्त) जैसे तरंग और फेन जल से भिन्न नहीं हैं क्योंकि जलही उन सबका उपादान कारण है तैसेही आत्मा में उत्पन्न जो विश्व है अर्थात् आत्मा ही उपादान कारण है जिस का ऐसा जो जगत् है यह भी आत्मा से भिन्न नहीं है जैसे तरंग बुद्बुदादि में जल अनुगत है तैसे रम्य चैतन्य भी सम्पूर्ण विश्व में अनुगत है जैसे कल्पित रूप अपने अधिष्ठानभूत रज्जु में भिन्न नहीं है किन्तु रज्जुरूपही है तैसे कल्पित जगत् भी अधिष्ठानभूत चैतन्य से भिन्न नहीं है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

तन्तुमात्रोभवेदेव पटोयद्वद्विचार
तः ॥ आत्मतन्मात्रमेवेदं तद्वद्विश्वंवि
चारितम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

तन्तुमात्रः भवेत् एव पटः यद्वत्
विचारतः आत्मतन्मात्रम् एव इदम्
तद्वत् विश्वम् विचारितम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
यद्वत् = जैसे
पटः = कपड़ा
तन्तुमात्रः = तंतुमात्र
एव = ही
भवेत् = होता है
तद्वत् = वैसाही
विचारतः = विचारसे

अन्वयः शब्दार्थ
इदम् = यह
विश्वम् = संसार
आत्मत } = आत्मस-
न्मात्रम् } तामात्र
एव = ही
विचारितम् = प्रतीत हो-
ता है

भावार्थ ॥

जैसे स्थूल दृष्टि करके तन्तुओं से विलक्षण पट

प्रतीत होताभी है परन्तु विचारकर देखने से तन्तु-
रूपही पट है तन्तुओं से भिन्न पट कोई वस्तु
नहीं है तैसेही स्थूलदृष्टि कर देखने से ब्रह्मसे विल-
क्षण जगत् प्रतीत होता है परन्तु युक्ति और विचार
से आत्मरूप ही जगत् है जैसे तन्तु अपनी सत्ता
करके पट में अनुगत है तैसेही आत्मा भी अपनी सत्ता
करके अधिष्ठान भूतरूप होकर सारे जगत् में अनु-
गत है ॥ ५ ॥ मूलम् ॥

यथैवेश्वरसेकृता तेनव्याप्तैवशर्क-
रा ॥ तथाविश्वंमयिकृतं मयाव्याप्तंनिर-
न्तरम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

यथा एव इक्षुरसे कृता तेन व्या-
प्ता एवं शर्करा तथा विश्वम् मयि
कृतम् मया व्याप्तम् निरन्तरम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
यथा = जैसे
एव = निश्चय
करके

अन्वयः शब्दार्थ
इक्षुरसे = इक्षु के रस
में
कृता = अध्यस्तहुई

शर्करा = शकर	मृतम् = अध्यस्त
तेन = उसीकरके	हुआ
व्यासाएव = व्यास है	विश्वम् = संसार
तथाएव = वैसाही	मया = मुझ करके
मयि = मेरे में	निस्तम् = सदा
	व्यासम् = व्यास है

भावार्थ ॥

(आत्मा करकेही सारा जगत् व्यास है इग धिये जनकजी दृष्टान्त कहते हैं) ॥ जैसे इक्षु जो गन्ना है सो रस में अध्यस्त है और तिसी मधुरग करके गन्ना भी व्यास है तैसेही मेरे नित्य आनन्दरूप में यह सारा जगत् अध्यस्त है और मेरे नित्य आनन्दरूप करके बाहर और भीतर से व्यास भी है इसवास्ते यह विश्व भी आत्मरूप ही है ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

आत्माऽज्ञानाज्जगद्भाति आत्मज्ञा
नान्नभासते ॥ रज्ज्वज्ञानादहिर्भाति त
ज्ज्ञानाद्भासतेनहि ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

आत्माऽज्ञानात् जगत् भाति आत्म-
ज्ञानात् न भासते रज्ज्वज्ञानात् अहिः
भाति तज्ज्ञानात् भासते न हि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्माऽ	}	रज्ज्वज्ञानात्	= रज्जु के अज्ञान से
ज्ञानात्			
	= अज्ञान से		
जगत्	= संसार	अहिः	= सर्प
भाति	= भासता है	भाति	= भासता है
आत्मज्ञानात्	= आत्मा	च	= और
	के ज्ञान से	तज्ज्ञानात्	= तिस के
न भासते	= नहीं भा-		ज्ञान से
	सता है	नहि	= नहीं
यथा	= जैसे	भासते	= भासता है

भावार्थ ॥

आत्मा के स्वरूप के अज्ञान करके जगत् संत्य प्रतीत होता है और अधिष्ठान स्वरूप आत्मा के ज्ञान करके असत् प्रतीत होता है (इस में लोक प्र-

सिद्ध दृष्टान्त कहते हैं) ॥ रज्जु के स्वरूप के अ-
ज्ञान से जैसे सर्प प्रतीत होता है और रज्जु के स्वरूप के ज्ञान से सर्प उस में प्रतीत नहीं होता है
तैसेही आत्मा के स्वरूप के अज्ञान करके जगत् प्र-
तीत होता है और आत्मा के स्वरूप के ज्ञान करके
जगत् प्रतीत नहीं होता है ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

प्रकाशो मे निजरूपं नातिरिक्तोऽस्म्य
हन्ततः ॥ यदा प्रकाशते विश्वं तदा हं भा-
स एव हि ॥ ८ ॥

पदव्येदः ॥

प्रकाशः मे निजम् रूपम् न अ-
तिरिक्तः अस्मि अहम् ततः यदा
प्रकाशते विश्वम् तदा अहम्भासः
एव हि ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
प्रकाशः = प्रकाश		निजम् = निज	
मे = मेरा		रूपम् = रूपहे	

अहम् = मैं
 ततः = उस से
 अतिरिक्तः = अलग
 न अस्मि = नहीं हूँ
 यदा = जब
 विश्वम् = संसार
 प्रकाशते = प्रकाश-
 ता है

तदा = तब
 तत् = वह
 अहंभासः = मेरे प्रका-
 शसे
 एव हि = ही
 + प्रकाशते = प्रकाश-
 ता है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ आत्मा के स्वरूप का जयतक अज्ञान बना है तबतक आत्मा के प्रकाशका भी अभाव ही रहता है तब फिर आत्मा के स्वरूप के प्रकाश का अभाव होने से जगत् का भान कैसे होसका है ॥ उत्तर ॥ जनक जी कहते हैं मेरा जो प्रकाश याने नित्यज्ञान है सो मेरा स्वाभाविक स्वरूप है मैं उस प्रकाश से भिन्न नहीं हूँ इसी वास्ते जिस काल मैं मेरेको विद्य प्रतीत होता है तब आत्मा के प्रकाश में ही प्रतीत होता है ॥ प्रश्न ॥ यदि स्वरूप भूतचेतन ही प्रकाशक है तब फिर अज्ञान कैसे रहसका है क्योंकि ज्ञान और अज्ञान दोनों परस्पर

विरोधी है तम प्रकाश की तरह ॥ उत्तर ॥ दो प्रकारका चेतन है एक सामान्यचेतन है दूसरा विशेषचेतन है विशेषचेतन अज्ञान का विरोधी है याने बाधक है सामान्यचेतन अज्ञान का विरोधी नहीं है किन्तु साधक है अर्थात् अज्ञान को सिद्ध करता है जैसे दो प्रकार की अग्नि है एक सामान्य अग्नि है दूसरी विशेष अग्नि है सामान्य अग्नि तो सब काष्ठों में व्यापक है परन्तु काष्ठों के स्वरूप को जलाती नहीं है किन्तु घनाती है क्योंकि जितने जगत् के पदार्थ हैं सब भूतों के परिष्कारण से घने हैं जैसे लकड़ी जो पंचतत्त्वों से घनी है उसको सामान्य तेज याने अग्नि जो उसके भीतर है जलाती नहीं है पर जब दो लकड़ियों के परस्पर रगड़से जो विशेष अग्निरूप तेज उस में से उत्पन्न होता है वह तुरन्त उस लकड़ीको जला देता है क्योंकि वह उस का विरोधी है तैसे सामान्यचेतन जो सर्वत्र व्यापक है वह उस अज्ञान का विरोधी याने बाधक नहीं है बल्कि अपने सत्ता करके उस का साधक है और आत्माकारवृत्त्यवच्छिन्न विशेषचेतन है वही उस अज्ञान का बाधक याने नाशक है यदि स्वरूप चेतन अज्ञान का विरोधी होवे तब जड़ की

सिद्धि भी न होवैगी यदि आत्मा के प्रकाश का
अभाव माना जावै तब जगदान्वय प्रसंग होजावै
इस वास्ते आत्मा के स्वरूप प्रकाश करके
जगत् भी प्रकाशमान होरहा है स्वतः जग
मिथ्या है ॥ ८ ॥

मूलम् ॥

अहोविकल्पितंविश्वमज्ञानान्मा
भासते ॥ रूप्यंशुक्तौफणीरज्जौवा
सूर्य्यकरेयथा ॥ ९ ॥

पदव्येदः ॥

अहो विकल्पितम् विश्वम् अज्ञ
नात् मयि भासते रूप्यम् शुक्तौ फ
रज्जो वारि सूर्य्यकरे यथा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहो = आश्चर्य्य		विकल्पितम्	} = कल्पित
है कि		तम्	

विश्वम् = संसार	रूप्यम् = चांदी
अज्ञानात् = अज्ञान से	रज्जौ = रस्सी में
मयि = मेरे में	फणी = सर्प
ईदृशम् = ऐसा	सूर्यकरे = सूर्यके कि-
भासते = भासता है	रणों में
यथा = जैसे	चारि = जल
शुक्लौ = शुक्ति में	भासते = भासता है

भावार्थ ॥

जनक जी कहते हैं जैसे शुक्ति के अज्ञान से शुक्ति में रजत असत् प्रतीत होती है तैसीही अज्ञान करके मुझ स्वप्रकाश आत्मा में असत् जगत् प्रतीत हो रहा है यही बड़ा भारी आश्चर्य है ॥ ९ ॥

मूलम् ॥

मत्तोविनिर्गतं विश्वं मय्येव लयमे
प्यति ॥ मृदिकुम्भोजले वीचिः कनके
कटकं यथा ॥ १० ॥

पदच्छेदः ॥

मत्तः विनिर्गतम् विश्वम् मयि एव

लयम् एष्यति मृदि कुम्भः जले वीचिः
कनके कटकम् यथा ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
मत्तः = मुक्त से		यथा = जैसे	
विनिर्गतम् = उत्पन्न		मृदि = मिट्टी में	
	हुआ	कुम्भः = घड़ा	
इदम् = यह		जले = जल में	
विश्वम् = संसार		वीचिः = लहर	
मायि = मेरे में		कनके = स्वर्ण में	
लयम् = लय को		कटकम् = भूषण	
एष्यति = प्राप्तहोगा		लयम् } = लय हैं	
		सन्ति }	

भावार्थः ॥

जैसे घट मृत्तिकाकार्य्य है याने मृत्तिकासे ही उत्पन्न होता है और फिर फूटकर मृत्तिकामें ही लय होजाता है तैसेही जगत् भी प्रकृति का कार्य्य है प्रकृतिसे ही उत्पन्न होता है और प्रकृतिमें ही लय होजाता है चेतन आत्मा से न जगत् उत्पन्न होता है और न उस में लय होता है क्योंकि जगत् जड़ है आत्मा चेतन है चेतन से जड़ की उत्पत्ति ब-

नती नहीं है ऐसी सांख्यी की शङ्का है ॥ उस के उत्तर को कहते हैं ॥ सांख्यी परिणामवादि है पूर्व-
जाली अवस्थामे अवस्थान्तरताको प्राप्त होनेका नाम
ही परिणाम है जैसे दूध का परिणाम दधि है मृ-
त्तिका का घट है स्वर्ण का कुण्डल है तैसे प्र-
कृतिका परिणाम जगत् है ऐसे सांख्यी मानता है और
नैयायिक आरम्भवादि है अन्यवस्तु से अन्यवस्तु
की उत्पत्ति का नाम आरम्भवाद है जैसे अन्य त-
न्तु से अन्य पटकी उत्पत्ति होती है तैसे अन्य
परमाणुओं से अन्य रूप जगत्की भी उत्पत्ति होती
है और वेदान्ती का विद्यर्त्तवाद है जो एकही वस्तु अ-
पनी पूर्वजाली अवस्था से अन्य अवस्था करके प्र-
तीति होवे उसी का नाम विद्यर्त्त है जैसे रज्जु का वि-
द्यर्त्त सर्प है वह रज्जुही सर्परूप करके प्रतीति होती
है यदि जगत् ब्रह्म का परिणाम माना जावे तब तो
दोष आवे जो चेतन से जड़ कैसे उत्पन्न होता है
और कैसे जगत् चेतन में लय होजाना है यह सब
दोष वेदान्तीके मत में नहीं आते हैं क्योंकि जैसे रज्जु
के अज्ञान से रज्जु सर्परूप प्रतीति होती है और रज्जु
ज्ञान करके उस सर्पकी निवृत्ति होजाती है तैसे ब्रह्म
आत्मा के स्वरूप के अज्ञान से जगत् की प्रतीति

होती है आत्मा के स्वरूप के ज्ञान करने जगत् ही निवृत्ति हो जाती है ॥ मांछणी और नैगायिक के मत में अनेक दोष पड़ने हैं एक तो वेदमें परिणामवाद और आरम्भवाद नहीं भी नहीं लिखा है उनका मत वेदविद्वद् है दूसरी युक्तियों में भी परिणामवाद और आरम्भवाद सिद्ध नहीं होता है क्योंकि घट मृत्तिकाका परिणाम नहीं है न स्वर्णका परिणाम कुण्डल होसकते हैं उत्पत्तिकाल में भी घट मृत्तिका रूपही है गोलाकार उस का रूप और घट यह नाम दोनों कल्पित हैं यदि घट से मृत्तिका निकाल दीजायै तब घट का कहीं पता नहीं लगसकता है घट मिथ्या है इसी तरह स्वर्ण के कुण्डल भी मिथ्या हैं घट और कुण्डल भी मृत्तिका का विवर्त्त ही है क्यों मृत्तिकाही और स्वर्ण ही अन्यरूप से घट और कुण्डल प्रतीत हो रहे हैं ॥ सो व्यवर्त्तवादही ठीक है इसी तात्पर्य को लेकर जनकजी कहते हैं यह सारा जगत् मेरेसे ही उत्पन्न होता है और फिर मेरेमें ही लय होजाता है जैसे मृत्तिका से घट उत्पन्न होता है और फिर मृत्तिका में ही लय होजाता है ॥ अइम ॥ इस में कोई वेदवाक्यभी प्रमाण है ॥ उत्तर ॥ यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्याभिसं-

विशन्ति ॥ इति श्रुतेः ॥ जिस आत्माब्रह्म से ये सब भूत प्राणी उत्पन्न होते हैं जिस ब्रह्माकी सत्ता करके उत्पन्न हुये जीते हैं फिर मरकरके सब जिसमें लय होजाते हैं उसी को तुम अपना आत्मा जानो ॥ यह वेदवाक्य भी प्रमाण है ॥ १० ॥

मूलम् ॥

अहो अहन्नमोमहं विनाशो यस्य नास्ति मे ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगन्नाशेऽपि तिष्ठतः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो अहम् नमः मह्यम् विनाशः यस्य न अस्ति मे ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तम् जगन्नाशो अपि तिष्ठतः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
गङ्गादि	= ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त	जगन्नाशो -	जगत्के
स्तम्बपर्यन्तम्			नाशो-
			ने पर

अपि = भी	+ अतः एव = इसलिये
यस्य मे = जिस मेरे	अहम् = मैं
तिष्ठतः = होते हुये	अहो = आश्चर्य्य
का	रूप हूँ
विनाशः = नाश	मह्यम् = मेरे लिये
न अस्ति = नहीं है	नमः = नमस्कार
	है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ यदि ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण मानोगे तब वह विकारी होजावैगा और विकारी होनेसे नाशी भी होजावैगा ॥ उत्तर ॥ ब्रह्म विकारी और नाशी तब होवे जब हम जगत् को ब्रह्म का परिणामि उपादान कारण मानें सोतो नहीं है किन्तु जगत् को हम ब्रह्म का विवर्त्त मानते हैं इस वारसे विकारी और नाशी ब्रह्म कदापि नहीं होसक्ता है ॥ जनक जी कहते हैं मैं आश्चर्य्यरूप हूँ क्योंकि सारे जगत् का उपादानकारण होने परभी मेरा नाश कदापि नहीं होता है स्वर्णादिकों की नाई विकारता भी मेरे में नहीं है मैं अविकारी हूँ जगत् मेरा विवर्त्त है इसी कारण वह विवर्त्त का अधिष्ठानरूप है ॥ उपादान

की सत्ता से कार्य की सत्ता विपरीत होना इसी का नाम विवर्त्त है ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता है और जगत् की प्रतिभासिक सत्ता है ब्रह्म तीनों काल में नित्य है जगत् तीनों काल में अनित्य है किन्तु केवल प्रतीतमात्रही है इस वास्ते जगत् ब्रह्म का विवर्त्त है जगत् की उत्पत्ति आदिकों के होने से ब्रह्म का एक रोना भी नहीं बिगड़ता है याने ब्रह्म की किञ्चिन्मात्र भी हानि नहीं होती है ब्रह्मा से लेकर चौंटीपर्यन्त जगत् के नाश होने परभी ब्रह्म ज्योंका त्यों एकरस रहता है सोई मेरा पारमार्थिक स्वरूप है ॥ ११ ॥

मूलम् ॥

अहो अहन्नमोमह्यमेकोहं देहवान्
पि ॥ कचिन्नगन्तानागन्ताव्याप्यवि
श्वमवस्थितः ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो अहम् नमः मह्यम् एकः
अहम् देहवान् अपि कचित् न ग-

न्ता न आगन्ता व्याप्य विश्वम् अवस्थितः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अहम् = मैं

अहो = आश्चर्य

रूप हूँ

मह्यम् = मेरे लिये

नमः = नमस्कार

हे

अहम् = मैं

देहवान् = देहधारीहो-

ताहुआ

अपि = भी

अन्वयः शब्दार्थ

एकः = अद्वैतहूँ

न कचित् = न कहीं

गन्ता = जानेवाला

हूँ

न कचित् = न कहीं

आगन्ता = आनेवा-

लाहूँ

विश्वम् = संसारको

व्याप्य = आच्छादित

करके

अवस्थितः = स्थितहूँ

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ आत्मा नाना प्रतीत होते हैं प्रत्येक देह में आत्मा सुख दुःखादिकवाला, जुदाही प्रतीत होता है यदि आत्मा एक होवै तब एक के सुखी होने से सब को सुखी होना चाहिये एक के दुःखी होने से सब को दुःखी होना चाहिये एक के चलने से

सब का चलना और एकके बैठने से सबका बैठना
 होना चाहिये ॥ उत्तर ॥ जनक जी कहते हैं षड्रं
 आश्चर्य्य है मेरा आत्मा एकही है तथापि नाना देह
 रूपी उपाधियों के भेद करके नाना आत्मा प्रतीत
 हो रहा है जैसे एकही जल नाना घटरूपी उपाधियों
 में नाना रूपवाला प्रतीत होता है जैसे एकही सूर्य्य
 का प्रतिबिम्ब नाना जलोपाधियों में हिलता चलता
 प्रतीत होता और जैसे एकही आपन्नश नाना घटमूला-
 दिक उपाधियों में किया आदिकवाला प्रतीत होता
 है पशु घातक में वे क्रिया आदिक सब उपाधियोंके
 धर्म हैं आपन्नश के नहीं हैं तैसे सुख दुःख गमना-
 गमनादिक भी सब वेंहादि उपाधियों के धर्म हैं आ-
 त्मा के नहीं हैं इसी से एकही आत्मा गमनादिकों से
 रहित व्यापक होकर स्थित है ॥ १३ ॥

मूलम् ॥

अहो अहं नमो मह्यं दक्षो नास्तीह
 मत्समः ॥ असंस्पृश्यशरीरेण येन वि-
 श्वं चिरं धृतम् ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ॥

१ अहो अहं नमः मह्यम् दक्षः न

अस्ति इह मत्समः असंस्पृश्य शरीरेण
येन विश्वम् चिरम् धृतम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अहम् = मैं

अहो = आश्चर्य्य

रूपहं

नमः = नमस्कार हे

मह्यम् = मुझको

इह = इस संसारमें

मत्समः = मेरेतुल्य

दक्षः = चतुर

न अस्ति = नहीं है

कोई

येन = क्योंकि

अन्वयः शब्दार्थ

शरीरेण = शरीरसे

असंस्पृश्य = पृथक्

मया = मुझ क-

रके

+इदम् = यह

चिरम् = विरकाल
पर्यन्त

विश्वम् = विश्व

धृतम् = धारणकिया

गया है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ असंग आत्मा का शरीरादिकों के साथ
कैसे होसक्ता है और जगत् को कैसे धारण
सक्ता है ॥ उत्तर ॥ जनकजी कहते हैं यही तो

बड़ा आश्चर्य्य है जो मैं असंग होकरके भी शरीरा-
दिकों को चेष्टा कराता हूं जैसे चुम्बक पत्थर आप
क्रिया से रहित भी है तथापि लोहे को चेष्टा कराता है
जैसे उस में एक विलक्षण शक्ति है तैसे आत्मा में
भी एक विलक्षण शक्ति है शरीरादिकों के अन्तर
असंग स्थित है पर किया रहित है शरीर इन्द्रियादिक
सब अपने अपने काम को करते हैं जैसे अग्नि
घृत के पिण्ड से अलग रहकरके भी उस को पि-
घला देती है तैसेही आत्मा भी सब से असंग रह-
करके भी और क्रिया से रहित होकरके भी सारे ज-
गत्को क्रियावान् कर देता है इसी से मेरे तुल्य
जनक जी कहते हैं कोई चतुर नहीं है इसी का-
रण मैं अपने आपको ही नमस्कार करता हूं ॥ मुझसे
अन्य दूसरा कोई नहीं है कि उस को नमस्कार
करूं ॥ १३ ॥

मूलम् ॥

अहोअहंनमोमह्यं यस्य मेनास्तिकिं
चन ॥ अथवायस्य मे सर्वं यद्वाअनस
शोचरम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो अहम् नमः मह्यम् यस्य मे
न अस्ति किञ्चन अथवा यस्य मे स-
र्वम् यत् वाङ्मनसगोचरम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अहम् = मैं

अहो = आश्चर्यरूप
हूँ

मह्यम् = मुझको

नमः = नमस्कार है

यस्य = जिस

मे = मेरेका

किञ्चन = कुछ

न = नहीं

अन्वयः शब्दार्थ

अस्ति = है

अथवा = या

यस्य = जिस

मे = मेरेका

+तत् = वह

सर्वम् = सब है

यत् = जो कुछ

वाङ्मनसगोचरम् = { वाणी और

मनका

विषय है

भावार्थ ॥

जनकजी कहते हैं मेरे मैं सम्बन्धवाला कोई
पदार्थ नहीं है क्योंकि वास्तव से कोई पदार्थ सत्य
नहीं है केवल एक ब्रह्मात्माही परमार्थ से सत्य है ॥

नेहं नानानास्ति किञ्चन ॥ इस चेतन आत्मा में नाना-
नारूप करके जो जगत् प्रतीत होता है सो वास्तव
से नहीं है ऐसे श्रुति कहती है ॥ मृत्योर्वै मृत्युमाप्नो-
तिय इह नानैव पश्यति ॥ वह मृत्युसे भी मृत्यु को
प्राप्त होता है जो ब्रह्म में नानात्व को देखता है याने
नाना आत्मा को देखता है इत्यादि अनेक श्रुतिवा-
क्य हैं जो द्वैतका निषेध करते हैं फिर जनकजी क-
हते हैं जितना कि मन वाणीका विषय है वह सब
मिथ्या उस का मुझ चैतन्य स्वरूप आत्माके साथ
कोई भी सम्बन्ध नहीं है ॥ इसी वास्ते में अपने
ही आश्चर्य्य रूप आत्मा को नमस्कार करता हूँ १४॥

मूलम् ॥

ज्ञानं ज्ञेयं तथा ज्ञाता त्रितयं नास्ति वा-
स्तवम् ॥ अज्ञानाद्भातियत्रेदं सोहम
स्मि निरंजनः ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ॥

ज्ञानम् ज्ञेयम् तथा ज्ञाता त्रितयम्
न अस्ति वास्तवम् अज्ञानात् भाति
यत्र इदम् सः अहम् अस्मि निरंजनः ॥

अन्ययः	शब्दार्थ	अन्यः	शब्दार्थ
ज्ञानम् = ज्ञान		अज्ञानम् = अज्ञानमे	
ज्ञेयम् = ज्ञेय		+ यत्र = जिसमें	
तथा = और		इदम् = यह	
ज्ञाता = ज्ञाना		मानि = भावना है	
त्रितयम् = तीनों		सः = सोई	
यत्र = जिसमें		अश्म् = मैं	
वास्तवम् = यथार्थ से		निर्जनः = निर्जन	
न अस्ति = नहीं है		रूप	
+ च = और		अस्मि = हैं	

मायार्थ ॥

जनकजी कहते हैं ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय यह जो त्रिपुटी रूप है सोभी वास्तव से नहीं है किन्तु अज्ञान करके चेतन में ये तीनों प्रतीत होते हैं वास्तव से चेतन का इन के साथ भी कोई सम्बन्ध नहीं है जो माया और माया के कार्य से रहित चेतन आत्मा है सो मैंही हूँ ॥ १५ ॥

मूलम् ॥

“ हेतुमूलमहोदुःखं नान्यत्तस्यास्ति

पजम् ॥ दृश्यमेतन्मृपासर्वमेकोहं
चेद्रसोमलः ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ॥

द्वैतमूलम् अहो दुःखम् न अन्यत्
तस्य अस्ति भेषजम् दृश्यम् एतत्
मृपा सर्वम् एकः अहम् चिद्रसः अमलः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अन्वयः शब्दार्थ

अहो = आश्चर्य

न अस्ति = नहीं है

हे कि

एतत् = यह

द्वैतमूलम् = द्वैतहे मूल

सर्वम् = सब

कारणजि-

दृश्यम् = दृश्य

सका ऐसा

मृपा = भूत है

यत् = जो

अहम् = मैं

दुःखम् = दुःख है

एकः = एक अद्वैत

तस्य = उसकी

अमलः = शुद्ध

भेषजम् = ओषधि

चिद्रसः = चैतन्य रस

अन्यत् = कोई

है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ जब आत्मा निरञ्जन है तब उस का दुःख के साथ सम्बन्ध कैसे होसक्ता है पर देखने में आता है और लोकभी कहते हैं कि हम बड़े दुःखी हैं ॥ उत्तर ॥ निरञ्जन आत्माको भी द्वैत भ्रमसे दुःख प्रतीत होता है वास्तव से वह दुःखी नहीं है ॥ प्रश्न ॥ इस भ्रमरूपी महान् व्याधिकी ओपधि क्या है ॥ उत्तर ॥ जो द्वैत प्रतीत होरहा है यह सब मिथ्या है वास्तव से सत्य नहीं है वास्तव सत्यबोधरूप आत्मा ही है ऐसा जो ज्ञान है वही त्रिविध दुःखकी निवृत्ति की ओपधि है और कोई उसकी ओपधि नहीं है १६ ॥

मूलम् ॥

बोधमात्रोहमज्ञानादुपाधिः कल्पितो मया ॥ एवं विमृश्यतो नित्यं निर्विकल्पे स्थितिर्मम ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ॥

बोधमात्रः अहम् अज्ञानात् उपाधिः कल्पितः मया एवम् विमृश्यतः नित्यम् निर्विकल्पे स्थितिः मम ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
अहम् = मैं	एवम् = इसप्रकार
बोधमात्रः = बोधरूपहूँ	नित्यम् = नित्य
भया = भुक्तकरके	विमृश्यतः = विचारक
अज्ञानात् = अज्ञानसे	रतेहुये
उपाधिः = उपाधि	मम = मेरी
कल्पितः = { कल्पना	स्थितिः = स्थिति
{ क्रियाग-	निर्विकल्पे = निर्विक-
{ याहै	ल्पमें है

भावार्थ ॥

प्र० ॥ यह जो द्वैतप्रपञ्चका अध्यास है इसका उपादान कारण कौन है ॥ उ० ॥ जनकजी कहते हैं नित्यज्ञानस्वरूप जो मैं हूँ सो मैंही अज्ञान द्वारा सारे प्रपञ्चका उपादान कारणहूँ अथवा अज्ञान के सहित जो कल्पित साराप्रपञ्च है उसका अधिष्ठान रूप होने से मैंही उपादान कारणहूँ विचारसे बिना जो सब मिथ्या प्रपञ्च सत्यकी तरह प्रतीत होताथा सो नित्य विचार करने से असत्य भानहोनेलगा अब अपने स्वरूप चैतन्य में प्राप्त होकर जीवन्मुक्ति को प्राप्त हुआहूँ १७ ॥

मूलम् ॥

अहोमयिस्थितंविश्वंवस्तुतो नमयि
स्थितम् । नमेवन्धोस्तिमोक्षोवा भ्रा
न्तिःशान्तानिराश्रया ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो.. मयि स्थितम् विश्वम् व-
स्तुतः.. न मयि स्थितम् न मे बन्धः
अस्ति मोक्षः वा भ्रान्तिः शान्ता
निराश्रया ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मे = मेरा

बन्धः = बन्ध

वा = या

मोक्षः = मोक्ष

न = नहीं

अस्ति = है

अहो = आश्चर्य्य

है कि

अन्वयः शब्दार्थ

मयि = मेरेमें स्थि-

तहुआ

विश्वम् = जगत्

वस्तुतः = वास्तव से

मयि = मेरे विषे.

न = नहीं

स्थितम् = स्थित है

+इतिवि।	} ऐसे वि- चार से निराधरा-आधर रहित	भ्रान्तिः = भ्रान्ति
		शान्ता = शान्त हुई है

भावार्थ ॥

प्र० ॥ मुक्ति क्या पदार्थ है ॥ उ० ॥ आनंदात्मक
प्रदायातिभमोक्षः ॥ आनंदस्वरूप आत्माको प्राप्तिका
नामही मुक्ति है ॥ प्र० ॥ यदि पूर्वोक्त मुक्तिको विचारसे
जन्य मानोगे तब मुक्तिभी अनित्य होजायगी क्योंकि
जो जो उत्पत्तिवाला पदार्थ होता है सो सो अनित्य
होता है ऐसा नियम है यदि मुक्तिको विचारसे अज-
न्य मानोगे तब फिर विचारसे रहित पुरुषोंकी भी मुक्ति
होनी चाहिये ॥ उ० ॥ जनकजी कहते हैं वारतय से
तो मेरे में न बंध है न मोक्ष है क्योंकि मैं नित्य चै-
तन्यस्वरूप हूं ॥ प्र० ॥ जब कि वास्तव से तुम्हारे में
बंध मोक्ष कोई नहीं है तब फिर शास्त्रके विचारका
और गुरुके उपदेशका क्या फल हुआ ॥ उ० ॥ चि-
त्कालकी जो देहादिकोंमें आत्मभ्रान्ति होरही है मैं
देहहूं मैं इन्द्रियहूं मैं ब्राह्मणहूं मैं कर्ता भोक्ताहूं इस
भ्रान्ति की जो निवृत्ति है न मैं देहहूं न इन्द्रियहूं न
मैं ब्राह्मणत्वादि जातिवाला हूं न मैं कर्ता भोक्ता हूं

किंतु देहादिकों से परे इन सबका मैं साक्षी शुद्ध ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसा अपने स्वरूपका जो यथार्थ बोध है यही शास्त्र विचारका और गुरुके उपदेश का फल है जनकजी कहते हैं अहो बड़ा आश्चर्य्य है कि मेरे स्थित भी संपूर्ण विश्व वास्तवसे तीनों काल मेरेमें नहीं है ऐसा विचार करनेसे मेरी भ्रान्ति दूर होगई है १८॥

मूलम् ॥

सशरीरमिदंविश्वं नकिञ्चिदिति
निश्चितम् ॥ शुद्धचिन्मात्रात्माचत
त्कस्मिन्कल्पनाधुना ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ॥

सशरीरम् इदम् विश्वम् न किञ्चित् इति निश्चितम् शुद्धचिन्मात्रः
आत्मा च तत् कस्मिन् कल्पना अधुना ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
सशरीरम् = शरीर स-		इदम् = यह	
हित		विश्वम् = जगत्	

किंचित् न	कुछ न- ही है या- ने न सत् हे ओर न अस- त् है	इति = ऐसा यदा = जब निश्चितम् = निश्चय हुआ तदा = तब
	च = और	कस्मिन् = किसविषे
	आत्मा = आत्मा	अधुना = अब
शुद्धि- मात्रः	शुद्ध चेतन्य मात्र है	कल्पना = विश्वकी कल्पना होवे

भावार्थ ॥

प्र० ॥ रज्जुरूपी अधिष्ठान के विद्यमान होते कभी न कभी मंद अंधकारमें फिरभी सर्पका भ्रम हो-सक्ता है तैसे अधिष्ठान चेतन के होतेहुये भी मुक्ति में कभी न कभी प्रपंच भी होजावेगा ॥ उ० ॥ शरीरके सहित यह विश्व किंचित् भी सत्य नहीं है और न असत्य है किंतु अनिर्वचनीय अज्ञानका कार्यहोने से अनिर्वचनीय है उस अनिर्वचनीय अज्ञान की निवृत्ति होनेसे उसके कार्य विश्वकी भी निवृत्ति

होजाती है अज्ञान ही कल्पित विश्वका कारण था उसके नाशहोजाने से फिर मुक्त पुरुष में विश्व उत्पन्न नहीं होता है जैसे मंद अंधकारके दूर होने से फिर सर्प की आन्तिभी नहीं होती है तैसे प्रकाश स्वरूप आत्माके ज्ञान से फिर कदापि विश्वकी उत्पत्ति नहीं होती है ॥ १९ ॥

मूलम् ॥

शरीरंस्वर्गनरकोबन्धमोक्षोभयन्त
था ॥ कल्पनामात्रमेवैतत्किमेकार्यं चि
दात्मनः ॥ २० ॥

पदव्येदः ॥

शरीरम् स्वर्गनरको बन्धमोक्षो
भयम् तथा कल्पनामात्रम् एव एतत्
किम् मे कार्यम् चिदात्मनः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

एतत् = यह

गर्गम् = शरीर

स्वर्गनरको = स्वर्ग और

नरक

अन्वयः शब्दार्थ

बन्धमोक्षो = बन्ध और

मोक्ष

तथा = और

भयम् = भय

एव = निःसंदेह	}	कल्पना- मात्रम्	} = मात्रहै	मेचिदा- त्मनः	}	=	{ मुक्त चै- तन्य आत्मा को
				किम् = क्या			
				कार्यम् = कर्तव्य है			

भावार्थः॥

प्रश्न ॥ यदि संपूर्ण प्रपञ्च अवास्तव माना जावे तब वर्ण और जाति आदिकों का आश्रय जो स्थूलशरीर है वह भी अवास्तव ही होगा और शरीरको आश्रयण करके प्रवृत्त जो विधिनिषेध शास्त्र है वह भी अवास्तव ही होगा फिर तिस शास्त्रने बोधन किये जो स्वर्ग नरक हैं वे भी सब अवास्तव याने मिथ्या ही होंगे फिर स्वर्गादिकों में राग और नरकादिकों से भय भी मिथ्या होंगे और शास्त्र ने बोधन करे जो बन्ध मोक्ष कहे हैं वे भी सब मिथ्या ही होंगे ॥ उत्तर ॥ जनकजी कहते हैं शरीरादिक सब कल्पना मात्र ही हैं सच्चिदानन्द स्वरूप मुक्त आत्माका इन शरीरादिकोंके साथ कौन सम्बन्ध है किन्तु कोई भी सम्बन्ध नहीं है क्योंकि सत्य मिथ्या का वास्तव सम्बन्ध नहीं बन

सक्ता है और मेरा शरीरादिकों के साथ कोई भी प्रयोजन नहीं है और जितने कि विधिनिषेध वाक्य हैं वे सब अज्ञानी के लिये हैं ज्ञानवान् का उनमें अधिकार नहीं है इस वास्ते ज्ञानवान् की दृष्टि में शरीरादिक और विधिनिषेध सब अवास्तवही हैं ॥ २० ॥

मूलम् ॥

अहो जनसमूहेऽपि न द्वैतं पश्यतो
मम ॥ अरण्यमिव संवृत्तं करति करवा
ण्यहम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो जनसमूहे अपि न द्वैतम्
पश्यतः मम अरण्यम् इव संवृत्तम्
क रतिम् करवाणि अहम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
अहो = आश्चर्य है		मम = मुझ	
कि		पश्यतः = देखते हुये	
जनसमूहे = जीवों के		का	
बीचमें		अरण्यम् इव = अरण्यवत्	
अपि = भी		द्वैतम् = द्वैत	

नसंवृत्तम् = नहीं वर्त-	अहम् = मैं
ताहै	रतिम् = मोहको
तस्मात् = तब	करवाणि = करूं
क = कैसे	

भावार्थ ॥

पूर्ववाले वाक्यकरके जनकजी ने कहा कि स्वर्गादिकों के साथ मेरा कुछभी प्रयोजन नहीं है अब इस वाक्य करके कहते हैं कि इस लोकके साथ भी मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ जनकजी कहते हैं हे प्रभो ! बड़ा आश्चर्य है कि मैं दैतको देखताभी हूं तबभी जनोंका जो समूहरूपी दैत वनकी तरह उत्पन्न हुआ है उसके बीचमें होताहुआ भी उसके साथ मुझको कोई प्रीति नहीं है क्योंकि मैंने उसको मिथ्या जानलिया है मिथ्या वस्तुके साथ ज्ञानवान् प्रीतिको नहीं करते हैं अज्ञानी मिथ्या पदार्थों के साथ प्रीति करते हैं इतनाही ज्ञानी अज्ञानीका भेद है २१ ॥

मूलम् ॥

नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमहं हि चि
त् ॥ अयमेव हि मे बंध आसीद्य जीविते
स्पृहा ॥ २२ ॥

पदच्छेदः ॥

न अहम् देहः न मे देहः जीवः
न अहम् अहम् । ह चित् अयम् एव
हि मे बन्धः आसीत् या जीविते स्पृहा ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
अहम् = मैं		हि = निश्चयकर	
देहः = शरीर		करके	
न = नहीं हूँ		चित् = चैतन्यरूप	
मे = मेरा		हूँ	
देहः = शरीर		मे = मेरा	
न = नहीं है		अयम् एव = यही	
अहम् = मैं		बन्धः = बन्धथा	
जीवः = जीव		या = जो	
न = नहीं हूँ		जीविते = जीनेमें	
अहम् = मैं		स्पृहा = इच्छा	
		आसीत् = थी	

भावार्थः ॥

प्रश्न ॥ शरीरमें अहंता ममता अवश्य करनी होगी

• क्योंकि बिना अहंता ममताके व्यवहारकी सिद्धि नहीं होती है ॥ उत्तर ॥ जनकजी कहते हैं १. देह नहीं हूँ क्योंकि देह जड़ है मैं चेतन हूँ और मेरा देह भी नहीं है क्योंकि मैं असंग हूँ मैं जीव अहंकारी भी नहीं हूँ क्योंकि अहंकार का कर्तृत्व धर्म है और मेरा अकर्तृत्व धर्म है ॥ प्रश्न ॥ फिर तुम कौन हो ॥ उत्तर ॥ मैं चैतन्य स्वरूप अहंकारका भी साक्षी अकर्त्ता अमोक्ष हूँ ॥ प्रश्न ॥ जब तुम खानपानादिक सब व्यवहारों को करते हो तो तुम अकर्त्ता कैसे होसकते हो ॥ उत्तर ॥ अज्ञानी पुरुषों की दृष्टिमें मैं व्यवहारों का कर्त्ता प्रतीत होता हूँ वास्तव से मैं कर्त्ता नहीं हूँ कर्तृत्व भोक्तृत्वपना अहंकारादिकों का धर्म है मुझ आत्माके ये धर्म नहीं हैं और ऐसा भी कहा है ॥ निद्राभिक्षेस्नानशांचेनेष्टामिनकरोमिच ॥ द्रष्टारश्चेत्कल्पयन्ति किम्मेस्यादन्यकल्पनात् ॥ १ ॥ सोना जागना भिक्षामांगना स्नानकरना पवित्र रहना इन सबकी मैं इच्छा नहीं करता हूँ और न मैं इनको करता हूँ यदि कोई देखनेवाला मेरेमें ऐसी कल्पना करता है कि मैं इनको करता हूँ तो दूसरेकी कल्पना करने से मेरी क्या हानि होसकती है ॥ १ ॥ अब इस विषे दृष्टांत कहते हैं ॥ गुंजापुंजादिदद्येतनान्यारोपितवद्भिना ॥ नान्यारोपितसंसारधर्मानेवमहंभजे ॥ २ ॥

जाड़ेके दिनोंमें वन बिपे जब कि बंदरोंको सरदी ल
 ती है तब वह घुंघची का ढेर लगाकर उसके
 मिलकरके बैठजाते हैं और उन घुंघचियोंके याने गुंजे
 के ढेरमें अग्निकी मिथ्या कल्पना करतेहैं कारण यह
 कि मिलकर बैठने से उनमें गरमी उत्पन्न होती है
 वे यह जानतेहैं कि इसगुंजे के पुंजसे हम सबको
 मी आरहीहै जैसे बंदरों करके कल्पीहुई गुंजामें, अ
 दाहका कारण नहीं होसक्ती है तैसेही मूर्ख अनर्थ
 यों करके कल्पेहुये खान पानादि व्यवहार भी विद्वान्
 की हानि नहीं करसक्ते हैं क्योंकि विद्वान् वास्तव
 अकत्ती अभोक्ता है उसकी दृष्टिमें न तो देहादिव
 और न उनके कर्तृत्वभोक्तृत्व धर्म हैं किंतु वे अ
 चैतन्यस्वरूपहैं ॥ प्रश्न ॥ अविवेकी विवेकियों को
 नेकी इच्छा क्यों होती है ॥ उत्तर ॥ जो उनके जीने
 इच्छाहै यही उन का बंधहै जीनेकी इच्छाकरके
 अविवेकी पुरुष अनर्थों को करतेहैं विवेकी पुरुष
 करतेहैं इसवास्ते जनकजी कहते हैं मेरेको उ
 मरनेकी इच्छा भी नहीं है जीने मरनेकी इच्छा
 अंतःकरण के धर्म हैं मुझ असंग चैतन्यस्वरूप
 त्मा के धर्म नहीं हैं ॥ २२ ॥

मूलम् ॥

अहोभुवनकल्लोलैर्विचित्रैर्द्राक्समु-
त्थितम् ॥ मयि अनन्तमहाम्भोधौ चित्तवाते
समुद्यते ॥ २३ ॥

पदच्छेदः ॥

अहो भुवनकल्लोलैः विचित्रैः द्राक्
समुत्थितम् मयि अनन्तमहाम्भोधौ
चित्तवाते समुद्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अहो = आश्चर्य्य
हे कि

अनन्त } अपारसमु-
महाम्भो } -द्रूप
धौ }

मयि = मुझविषे

चित्तवाते = { चित्तरू-
पीपवन
के उठने
परभी

अन्वयः शब्दार्थ

विचित्रैः = अनेकप्र-
कारके

भुवनक } = जगत् रूपी
ल्लोलैः } = तरंगों साथ

मम = मेरी

द्राक् = अत्यन्त

समुत्थि- } अभिन्नता
तम् } = है

भांवार्थ ॥

जनकजी कहते हैं जैसे वायुके चलने से समुद्र में बड़े छोटे अनेक प्रकार के तरंग उत्पन्न होते हैं और वायु के स्थिरहोने से वे तरंग लय होजाते हैं तैसे आत्मारूपी महान् समुद्र में चित्तरूपी वायु के पुराने से अनेक ब्रह्मांडरूपी तरंग उत्पन्न होते हैं और चित्त के शान्त होने से वे लय होजाते हैं और जैसे समुद्रके तरंग समुद्रसेही उत्पन्न होते हैं और समुद्रमेंही लय होजाते हैं और समुद्रके तरंग जैसे समुद्र से भिन्न नहीं हैं तैसे ब्रह्मांडरूपी अनेक तरंगभी मेरेसे भिन्न नहीं हैं मेरेमें उत्पन्नहोते हैं और मेरेमेंही लयहोते हैं क्योंकि राघव मेरेमेंही कल्पित हैं कल्पित पदार्थ अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होता है ॥ २३ ॥ मूलम् ॥

मय्यनन्तमहांभाधोचित्तवातेप्रशाम्यति ॥ अभाग्याज्जीववणिजोजगत्पोतोविनश्वरः ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ॥

मयि अनन्तमहांभाधो चित्तवाते प्रशाम्यति अभाग्यात् जीववणिजः जगत्पोतः विनश्वरः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अनन्त महांभो धा मयि = गुफ विपे	{ अपार समुद्र रूप मयि = गुफ विपे	जीवर, णिनः =	{ जीवरू- पीव.णि- क्के
चित्तग ते प्रशा भ्यनि	{ चित्तरू- पीपवन के शा- न्तहोने पर	जगत्सोवः =	{ जगत्सू- पीनोक्क यानेश- री
		विनश्वरः =	नाशु आ हे

भावार्थ ॥

जनकजी कहते हैं मुझ अनंत महान् समुद्र में
जय संकल्पविकल्पात्मक मनरूपी दायु शांत हो जा-
ता है अर्थात् जय मन संकल्पादिकों से रहित होता है
तब जीवरूपी व्यापारी दी शरीररूपी नौका प्राण-
वर्मरूपी नदी के क्षय होनेपर नाश होजाता है ॥२४॥

मूलम् ॥

मय्यनन्तमहांभोधावाश्चर्यं जीववी

चयः ॥ उद्यन्ति घ्नन्ति खेलन्ति प्रविश
न्ति स्वभावतः ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ॥

मयि अनन्तमहांभोधो आश्चर्यम्
जीववीचयः उद्यन्ति घ्नन्ति खेलन्ति
प्रविशन्ति स्वभावतः ॥

अन्ययः शब्दार्थ

आश्चर्यम् = आश्चर्य

हे कि

मयि = मुझ

अनन्त } अपार
महांभो } = ममद्
धो } विष

जीववी } जीव-
चयः } पीतगो

उद्यन्ति = उठनी हैं

अन्ययः शब्दार्थ

घ्नन्ति = परस्परल-

ड़ती हैं

च = और

खेलन्ति = खेलती हैं

च = और

स्वभावतः = स्वभावसे

प्रविशन्ति = लयदोती

हैं

भावार्थ ॥

अवधितानुश्रितिकरणे अपने में गंगुणं व्यपहारा
को देखनेहुँके जनकजी कहते हैं ॥ मदन ॥ याधितानु-

नुवृत्ति का क्या अर्थ है ॥ उत्तर ॥ बाधितहुये पदार्थकी जो पुनः अनुवृत्ति याने प्रतीति है उसका नाम बाधिता-नुवृत्ति है (दृष्टांत) जैसे एक पुरुष किसी वृक्षके नीचे गर्मी के दिनों में दोपहर के समय बैठाथा उसको प्यासलगी यह पानीकी खोजकरनेलगा तब उसको दूरसे जल दिखाई दिया यह उस जलके पानेके धारते जब गया तब उसको जल न मिला क्योंकि रेतमें जो सूर्य की किरण पड़ती थी वही दूरसे जलरूप होकर दिखाई पड़ती थी उसने जान लिया कि यह रेतही मुझको भ्रमकरके जल दिखाई देताथा यह तो जल है नहीं तब यह लौटकरके उसी वृक्षके नीचे आकर बैठगया और फिर उसको वही रेत की किरण के सम्यन्ध से चमकता हुआ जलरूप से दिखाई देनेलगा परन्तु यह पुरुष जलकी इच्छाकरके वहाँ न गया क्योंकि उसको निश्चय होगया कि यह जल नहीं है दूरत्य दोपसे और किरणके सम्यन्ध से मुझको जल दिखाई देता है पुरुष के यथार्थ ज्ञानकरके बाधित हुये परभी जलज्ञान की जो पुनः अनुवृत्ति याने प्रतीति है उसीका नाम बाधिता अनुवृत्ति है (दार्ष्टांत) आत्माके अज्ञान करके जो जगत् सत्यकी तरह प्रतीत होताथा उसके सत्यवत् ज्ञानका बाधा आत्माके ज्ञानसे भी होगया

तथापि उसकी अनुवृत्ति अर्थात् पुनः जो उसकी
 तीति विद्वान् को होती है वही वाधिता अनुवृत्ति व
 जाती है वह प्रतीति विद्वान्की कुछ हानि नहीं व
 सक्तो है क्योंकि विद्वान् उसको असत्य जान
 उसमें फिर आसक्ति नहीं करता है किंतु मिथ्या उ
 कर अपने आत्मानंदमेंही मग्न रहता है जनक
 कहते हैं क्रियासे रहित निर्विकार आत्मारूपी मा
 समुद्र में जीवरूपी बीचियां याने अनेक तरङ्ग उत्प
 होते हैं और परस्पर अध्याससे वे जीव आपसमें
 पीटकरते हैं खेलते हैं लड़ते हैं जैसे भरे स्वप्नमें
 स्वप्नमें परस्पर विरोधादिकों को करते हैं और जब
 के अविद्यादिका नाश होजाता है तब फिर भरे अ
 स्वरूपमेंही लय होजाते हैं फिर अविद्यादिकों व
 उत्पन्न होते हैं फिर लय होते हैं और जैसे घटरूप
 धिकी उत्पत्तिसे घटाकाश में उत्पत्ति व्यवहार हो
 और घटरूपी उपाधिके नाश होनेसे घटाकाशमें
 व्यवहार होता है वास्तव से आकाशकी न तो उत्प
 होती है और न नाश होता है तैसेही शरीरस्थ आत्म
 भी न उत्पत्ति होती है और न नाश होता है ज्ञान
 को वाधितानुवृत्ति करके जगत्की प्रतीति भी हो
 तबभी उसकी कोई हानि नहीं है २५ ॥ इति श्रीमद
 क्रमुनिविरचितायां गीतायां द्वितीयं प्रकरणं समाप्तम् ।

तीसरा अध्याय ॥

मूलम् ॥

अविनाशिनमात्मानमेकं विज्ञायत
तत्त्वतः ॥ तवात्मज्ञस्य धीरस्य कथमर्था
उर्जने रतिः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

अविनाशिनम् आत्मानम् एकम् वि-
ज्ञाय तत्त्वतः तव आत्मज्ञस्य धीरस्य
कथम् अर्थार्जने रतिः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

एकम् = अद्वैत

अविना } - अविनाशी
शिनम् }

आत्मानम् = आत्माको

तत्त्वतः = यथार्थ

विज्ञाय = जानकरके

तव = तुम्ह

अन्वयः शब्दार्थ

आत्मज्ञस्य = आत्मज्ञानी

धीरस्य = धीरको

कथम् = क्यों

अर्थार्जने = { धनकेमं
पादनक
रनेविषे -

रतिः = प्रीति है

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्माऽ } ज्ञानात् }	{ आत्मा के अज्ञा- न से	यथा = जैसे	
विषयभ्र } मगोचरे }	{ विषय के भ्रम के होने पर	शुक्लेः = सीपीके	
प्रीतिः = प्रीति होती है		अज्ञानतः = अज्ञानसे	
		रजतविभ्रमे = रजतकी भ्रांति में	
		लोभः = लोभ होता है	

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ हे भगवन् ! आत्मज्ञानके प्राप्त होने पर धना-
दिकों के संग्रह करने में क्या दोष है ॥ उत्तर ॥
हे शिष्य ! विषयों में अर्थात् स्त्री पुत्र धनादिकों में
जो प्रीति होती है सो आत्माके स्वरूपके अज्ञानसे ही
होती है आत्माके ज्ञानसे नहीं होती है क्योंकि जब आत्मा
का ज्ञान होता है तब विषयोंका बाध हो जाता है इसमें
लोकप्रसिद्ध दृष्टान्त को कहते हैं जैसे शुक्तिके अज्ञान
से और उसमें रजत भ्रमके होने से उस रजतमें लोभ
हो जाता है ॥ २ ॥ मूलम् ॥

विश्वं स्फुरति यत्रेदं तरंगा इव सागरे ॥

सोहमस्मीतिविज्ञाय किं दीन इव धावसि
सि ॥ ३ ॥

पदव्येदः ॥

विश्वम् स्फुरति यत्र इदम् तरंगाः
इव सागरे सः अहम् अस्मि इति वि-
ज्ञाय किम् दीनः इव धावसि ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यत्र = जिस अत्मा

रूपी समुद्र में

इदम् = यह

विश्वम् = संसार

तरंगाः = तरंगों के

इव = समान

स्फुरति = स्फुरण हो-

ता है

अन्वयः शब्दार्थ

सः = सोई

अहम् = मैं

अस्मि = हैं

इति = इस प्रकार

विज्ञाय = जान कर के

किम् = क्यों

दीनः इव = दीन की तरह

धावसि = दौड़ता है तू

भावार्थ ॥

और जैसे समुद्र में तरंगादिक अपनी सत्ता से
रहित प्रतीत होते हैं तैसे ही यह जगत् भी अपनी

सत्तासे रहित स्फुरणहोता है सबका अधिष्ठान आत्मा-
ज्योंका त्यों मैं हूँ इसप्रकार जिसने आत्माका साक्षा-
त्कार करलिया है वह दीनकी सृष्णावस्थाके व्याकुल-
की तरह विषयों की तरफ नहीं दौड़ता है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

श्रुत्वापिशुद्धचैतन्यमात्मानमतिमु-
न्दरम् ॥ उपस्थेत्यंतसंसक्तोमालिन्य-
मधिगच्छति ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

श्रुत्वा अपि शुद्धचैतन्यम् आत्मा-
नम् अतिसुन्दरम् उपस्थे अत्यन्तसंसक्तः
मालिन्यम् अधिगच्छति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
अहो = आश्चर्यह	कि	आत्मानम् = आत्माको	
अतिसुन्दरम् = अत्यन्त	सुन्दर	श्रुत्वापि = ज्ञानकरके	भी
		उपस्थे =	मर्मापर
शुद्धचै	} = { शुद्ध		निविष्ट
तन्यम्			में
	} = { चैतन्य		

अत्यन्त } = { अत्यन्त
संसक्तः } = { आसक्त
हुआपु-
रूप } मालिन्यम् = मूढ़ताको
अधिगच्छति = प्राप्त होता
है

भावार्थ ॥

आचार्य ने ऊपरवाले तीनों श्लोकोंकरके ज्ञानी शिष्य के लिये दृश्यमान विषय व्यवहार की निन्दार्थी अब सब ज्ञानियोंके प्रति विषय विषयक व्यवहारकी निन्दा शिष्य की परीक्षाके लिये करते हैं ॥ आत्मवित् गुरुके मुखसे और वेदांत वाक्य से आत्माका शुद्ध स्वरूप श्रवण करके और साक्षात्कार करके भी जो पुण्य समीपवर्ति विषयों में अत्यन्त संसक्त होता है वह कैसे मूढ़ता को प्राप्त होता है यह बड़े आश्चर्य की वार्ता है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्म
नि ॥ मुनेर्जानत आश्चर्यममत्त्वमनुव
र्तते ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

सर्वभूतेषु च आत्मानम् सर्वभूतानि

च आत्मनि मुनेः जानतः आश्चर्यम्
ममत्वम् अनुवर्तते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

आत्मानम् = आत्मा

को

सर्वभूतेषु = सबभूतोंमें

च = और

आत्मनि = आत्मा में

सर्वभूतानि = सबभूतों

को

अन्वयः शब्दार्थ

जानतः = जानतेहु-

ये

मुनेः = मुनिको

ममत्वम् = ममता

अनुवर्तते = होती है

आश्चर्यम् = यहीआ-

श्चर्य है

भावार्थ ॥

ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यंत सम्पूर्ण भूतोंमें जिस ने अधिष्ठान भूत आत्माको जानलियाहै और फिर सम्पूर्ण भूतोंको जिसने आत्मामें जानलिया है याने सम्पूर्ण भूत रज्जुसर्पकी तरह आत्मामें कल्पितहैं ऐसा जानकरके भी फिर जिसका विषयो में ममत्वहोवै तो आश्चर्यकी वार्ता है क्योंकि जिसने शुक्तिमें अध्यस्त रजतको जानलिया है उसकी प्रवृत्ति फिर उसरजतके लिये नहीं होती है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

आस्थितः परमाद्वैतमोक्षार्थेऽपि व्यव-
स्थितः ॥ आश्चर्य्यकामवशगो विक-
लः केलिशिक्षया ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

आस्थितः परमाद्वैतम् मोक्षार्थे
अपि व्यवस्थितः आश्चर्य्यम् कामवश-
गः विकलः केलिशिक्षया ॥

अन्वयः शब्दार्थ

परमाद्वैतम् = परमअ-

द्वैतको

आस्थितः = आश्रय

कियाहुआ

+ च = और

मोक्षार्थेऽपि = मोक्षकेलि-

येभी

व्यवस्थितः = उद्यतहुआ

पुरय

अन्वयः शब्दार्थ

कामवशगः = कामकेव-

राहो

केलिशि } (क्रीडाके

क्षया } = { अभ्या-

ससे

विकलः = व्याकुल

होताहै

आश्चर्य्यम् = यहीआ-

श्चर्य्यहै

भाषार्थ ॥

जिसने सजातीय विजातीय स्वगत भेदसे शून्य अद्वैत आत्माका साक्षात्कार करलियाहै और सच्चिदानन्द आत्मामें जिसकी निष्ठा हो चुकी है यदि फिर वह पुरुष कामके वश होकर नानाप्रकारकी क्रीड़ा करता हुआ दिखाई पड़े तो महान् आश्चर्य्य है ६ ॥

मूलम् ॥

उद्धृतं ज्ञानदुर्मित्रमवधार्यातिदुर्बलः ॥
आश्चर्य्यं काममाकांक्षेत्कालमन्तमनुश्रितः ॥ ७ ॥

पदञ्चेदः ॥

उद्धृतम् ज्ञानदुर्मित्रम् अवधार्य्यं
अतिदुर्बलः आश्चर्य्यम् कामम् आकां-
क्षेत् कालम् अन्तम् अनुश्रितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
उद्धृतम् = उत्पन्नहुये		अवधार्य्य = धारणकर-	
			के
ज्ञानदुर्मित्रम् } = {	ज्ञान के	अतिदुर्बलः = दुर्बल हो-	
	राशुका-		
	मकी		ताहुआ

च = और	कामम् = कामनाको
अन्तंकालम् = अन्तकाल को	आकांक्षेत् = इच्छाकर- ताहै
अनुश्रितः = { आश्रय करताहु- आपुरुष	आश्चर्यम् = यही आ- श्चर्यहै

भावार्थ ॥

जो ज्ञानी पुरुष कामको ज्ञानका अत्यन्त वैरी जानताहुआ फिरभी कामकी इच्छा करे तो इससे बढ़कर क्या आश्चर्य है जैसे मृत्यु करके प्रसित हुये पुरुषको समीपवर्ति विषयभोगकी इच्छा नहीं होतीहै तैसेही विवेकी पुरुष को भी विषयभोगकी इच्छा न होनी चाहिये ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

इहामुत्रविरक्तस्य नित्यानित्यविवे-
किनः ॥ आश्चर्यमोक्षकामस्य मोक्षा-
देवविभीषिका ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

इह अमुत्र विरक्तस्य नित्यानित्य-

विवेकिनः आश्चर्य्यम् मोक्षकामस्य
मोक्षात् एव विभीषिका ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
इह = इसलोकके		च = और	
भोगविषे		मोक्षका } मोक्षकेचा-	
+ च = और		मस्य } -इनेवालेपु-	
अमुत्र = परलोकके		रूपको	
भोगविषे		मोक्षात् } -मोक्षसेही	
विरक्तस्य = विरक्त		एव }	
नित्यानि } नित्यऔर		विभीषिका = भयहै	
त्यविवे } अनित्यके		आश्चर्य्यम् = यहीआ-	
किनः } -विचारकर		श्चर्य्य है	
नेवाले			

भावार्थ ॥

आत्मा नित्यहै और शरीरादिक अनित्यहैं इन दोनोंके विवेचन करनेवालेका नाम विवेकी है और आनन्दरूप ब्रह्मकी प्राप्तिका नाम मोक्षहै उस मोक्षकी कामनावाले शानीको ऐसा भयहो कि असद्रूप स्त्री पुत्र धनादिकों के साथ मेरावियोग होजायगा तो महान्

आश्चर्य्य है क्योंकि स्वप्न में देखेहुये धनका जाग्रत में नाश होनेसे मोह किसी को भी नहीं हुआ है ॥ ८ ॥

मूलम् ॥

धीरस्तु भोज्यमानोऽपि पीड्यमानो
पि सर्वदा ॥ आत्मानं केवलं पश्यन्न तु प्य
ति न कुप्यति ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ॥

धीरः तु भोज्यमानः अपि पीड्य-
मानः अपि सर्वदा आत्मानम् केवलम्
पश्यन् न तु प्यति न कुप्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

धीरः = दानी पुरुष

तु = तो

भोज्य } भोगता हुआ

मानः } आ

अपि = भी

च = और

अन्वयः शब्दार्थ

पीड्य } पीड़ित हो-
मानः } ता हुआ

अपि = भी

सर्वदा = नित्य

केवलम् = एक

आत्मानम् = आत्माको	होताहै
पश्यत् = देखताहु-	+ च = और
आ	नकुप्यति = न कोपक-
नकुप्यति = न प्रसन्न	रताहै

भावार्थ ॥

ज्ञानीको शोक और कोपभी न होना चाहिये ॥ ज्ञानीपुरुष लोकोंके दृष्टिमें विषयों को भोक्ताहुआ भी और लोकोंकरके निन्दित पीड़ाको प्राप्तहुआ २ भी सर्वदाकाल सुख दुःखके भोगसे रहित केवल आत्मा को देखताहुआ न हर्षको न कोपको प्राप्तहोता है क्योंकि तोप और रोप आत्मा में नहीं रहसक्तेहैं यदि ज्ञानी में भी तोप रोप रहें तो बड़ा आश्चर्य्यहै ॥ ९ ॥

मूलम् ॥

चेष्टमानंशरीरंस्वं पश्यत्यन्यशरीरवत् ॥ संस्तवेचापिनिंदायां कथंक्षुभ्येन्महाशयः ॥ १० ॥

पदच्छेदः ॥

चेष्टमानम् शरीरम् स्वम् पश्यति अन्यशरीरवत् संस्तवे च अपि निं-

दायाम् कथम् क्षुभ्येत् महाशयः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
चेष्टमानम् = चेष्टाकरते
हुये

स्वम् = अपने

शरीरम् = { शरीरको
आत्मासे
भिन्न

अन्यश-
रीरवत् } = शरीरकी त-
रह

+ यः = जो

परयति = देखताहै

अन्वयः शब्दार्थ

+ सः = सो

महाशयः = महाशय
पुरुष

संस्तवे = स्तुतिविषे

च = और

निंदाया ! निंदाविषे
मअपि } = भी

कथम् = कैसे

क्षुभ्येत् = क्षोभको प्रा-
प्त होवेगा

भावार्थ ॥

जैसे दूसरे का शरीर अपने आत्मासे भिन्न चेष्टा
का आश्रय है तैसे अपना शरीरभी अपने आत्मासे
भिन्न चेष्टाका आश्रय है इसप्रकार जो जानी देखताहै
वह अपनी स्तुतिमें हर्षको और निंदामें क्षोभको पन्दापि

प्राप्त नहीं होता है यदि वह हर्ष और क्षोभको प्राप्त होने तो वह ज्ञानवान् नहीं है ॥ १० ॥

मूलम् ॥

मायामात्रमिदंविश्वं पश्यन्विगत
कौतुकः ॥ अपिसंनिहितेमृत्योकथं त्रस्य
तिधीरधीः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ॥

मायामात्रम् इदम् विश्वम् पश्यन्
विगतकौतुकः अपि सन्निहिते मृत्यो
कथम् त्रस्यति धीरधीः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
विगतकौतुकः दूरहोगईहै
अज्ञानता
जिसकी
ऐसा

धीरधीः = धीरपुरुष
इदंविश्वम् } इसविश्व
को

अन्वयः शब्दार्थ
माया } - मायारूप
मात्रम् }
पश्यन् = देखताहुआ
मृत्योस } मृत्युके
निहिते } - आनेपर
अपि } भी
कथम् = क्यों
त्रस्यति = डरेगा

भावार्थ ॥

यह जो दृश्यमान जगत् है सो सब मायाका कार्य है और मायाका कार्य होनेसेही वह सब मिथ्या है जो ज्ञानी इसको मिथ्या देखता है वह फिर ऐसा विचार नहीं करता है कि कहांसे यह दारीरादिक उत्पन्न होते हैं और नाश होकर किसमें लय हो जाते हैं यदि ऐसा विचार करके वह मोहको प्राप्त होवे तो वह ज्ञानी नहीं हो सक्ता है जो विद्वान् अपने स्वरूपमें अचल है वह मृत्युके समीप आने परभी भयको नहीं प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

मूलम् ॥

निःस्पृहं मानसं यस्य नैराश्येपि महा
त्मनः ॥ तस्यात्मज्ञानतृप्तस्य तुलना केन
जायते ॥ १२ ॥

यदच्चेदः ॥

निःस्पृहम् मानसम् यस्य नैराश्ये
अपि महात्मनः तस्य आत्मज्ञानतृप्त-
स्य तुलना केन जायते ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
यस्य = जिस		आत्मज्ञा- नतृप्तस्य	आत्मज्ञा- नसेतृप्त हुयेकी
महात्मनः = महात्मा			
'का			
मानसम् = मन		तुलना = बराबरी	
नेराशये } अपि }	= मोक्षमेंभी	केन = किसके	
निःस्पृहम् = इच्छा- रहितहै		साथ	
तस्य = तिस		जायते = होसकती है	

भावार्थ ॥

अव्यक्तानीकी उत्कृष्टताको दिखातेहैं ॥ जिस विद्वान् का मन मोक्षकीभी इच्छासेरहितहै संसारकेकिसीपदार्थ के लाभअलाभमें जिसका मन हर्ष और शोकको नहीं प्राप्त होताहै जिसके सब मनोरथ समाप्त होगयेहैं और अपने आत्माके आनन्द करकेही जो तृप्तहै तिस विद्वान्की किसके साथ तुल्यतादीजावै किन्तु किसीके भी साथ उसकी तुल्यता नहीं दीजासकतीहै क्योंकि वह अतुल्य है ॥ १२ ॥

मूलम् ॥

स्वभावादेव जानानो दृश्यमेतन्न किञ्चन ॥ इदं ग्राह्यमिदं त्याज्यं सः किं पश्यति धीरधीः ॥ १३ ॥ पदच्छेदः ॥

स्वभावात् एव जानानः दृश्यम्
एतत् न किञ्चन इदम् ग्राह्यम् इदम्
त्याज्यम् सः किम् पश्यति धीरधीः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

एतत् = यह

दृश्यम् = दृश्य

स्वभावात् = स्वभावसे
ही

न किञ्चन = कुछनहीं
है

+ इति = ऐसा

जानानः = जाननेवा-
ला है

+ यः = जो

सः धीरधीः = वह ज्ञानी

अन्वयः शब्दार्थ

किम् = कैसे

पश्यति = देखसक्ता
है कि

इदम् = यह

ग्राह्यम् = ग्रहण करने
योग्य है

+ च = और

इदम् = यह

त्याज्यम् = त्यागने
योग्य है

भावार्थ ॥

यह जो दृश्यमान प्रपंच है सो सब दृश्य हानेसे शुक्ति रजतकी तरह मिथ्या है अर्थात् जंगे शुक्ति में रजत दृश्यभी है और मिथ्याभी है तैसे यह प्रपंचभी दृश्यहोने से मिथ्या है इस अनुमान प्रमाण करके यह जगत् मिथ्या साधित होता है ऐसा जिस विद्वान् ने निश्चय करलिया है यह धीमण्डल ऐसा कब देखता है कि यह मेरेको ग्रहण करने योग्य है यह मेरेको त्यागने योग्य है किन्तु कदापि नहीं देखता है अथ इम विषे हेतुको आगेवाले वाक्य करके कहते हैं ॥११॥

मूलम् ॥

अन्तस्त्यक्तकपायस्य निर्द्वन्द्वस्य
निराशिपः ॥ यदृच्छयाऽऽगतोभोगो न
दुःखाय चतुष्टये ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ॥

अन्तस्त्यक्तकपायस्य निर्द्वन्द्वस्य नि-
राशिपः यदृच्छया आगतः भोगः न
दुःखाय च तुष्टये ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अन्तःकरण
स्य
क = विषयवास-
ना का क-
पाय जि-
सने

निर्द्वन्द्व / द्वन्द्वसे र-
स्य { हित है जो

निरा / { आशाराहित
शिवः { है जो ऐसे
पुरुषको

अन्वयः शब्दार्थ

यद्वन्द्वया = दैवयोगसे

आगतः = प्राप्तहुई

भोगः = वस्तु

नदुःखाय = नदुःखके
लिये है

च = और

नतुष्टये = नसंतोषके
लिये है

भावार्थ ॥

जिस विद्वान् ने अन्तःकरणके मल्लोंको दूरकर दिया है वह शीत उष्णादिक द्वन्द्वोंसे अर्थात् शीत उष्णजन्य सुख दुःखादि से भी रहित है और नष्टहो-
गई हैं सम्पूर्ण विषयवासना जिसकी ऐसा जो सम-
चित्त विद्वान् है उसको दैवयोगसे प्राप्तहुये जो भोग हैं

उनको प्रारब्धवश से भोगताहुआ भी हर्य शोकको प्राप्त नहीं होता है ॥ १४ ॥

इति श्रीअष्टावक्रकृतगीतायांतृतीयप्रकरणसमाप्तम् ॥

चौथा अध्याय ॥

मूलम् ॥

हन्तात्मज्ञस्य धीरस्य खेलतो भोग
लीलया ॥ न हि संसारवाही कैर्मूढैः सह स
मानता ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

हन्त आत्मज्ञस्य धीरस्य खेलतः
भोगलीलया न हि संसारवाही कैः
मूढैः सह समानता ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
हन्त = यथार्थ है		भोगली	} भोगली- लासे
कि		लीलया	

खेलतः = खेलतेहु-
ये

आत्मज्ञस्य = आत्म-
ज्ञानी

धीरस्य = धीरपुरुष
की

समानता = बराबरी

संसारवा ! संसारसे
हीनैः ; = लिप्त

मूढैः सह = मूढ़पुरुषों
के साथ

नहि = हरगिजन-
हीनोसक्ती
है

भावार्थ ॥

तृतीयप्रकरण में जो गुरुने शिष्यकी परीक्षा के लिये ज्ञानीके ऊपर आक्षेप कियेहैं अब उन आक्षेपों के उत्तरोंको शिष्य कहता है कि प्रारब्धवशसे और बधिताऽनुवृत्तिकरके सम्पूर्ण व्यवहारों को करताहुआ भी ज्ञानी दोष को प्राप्त नहीं होता है ॥ जनकजी कहते हैं हे भगवन् ! जिस आत्मज्ञानी विद्वान् ने सबका अधिष्ठान अपने आत्माको जान लिया है वह विषयोंकरके विक्षेपको प्राप्त नहीं होता है अर्थात् उसका चित्त विषयों के सम्बन्ध से विक्षेपको प्राप्त नहीं होता है ॥ यदि विद्वान् प्रारब्धकर्मके वशसे स्त्रीआदि भोगोंमें प्रवृत्तभी होजावे तबभी मूढ़बुद्धि वाले अज्ञानियोंके साथ उसकी तुल्यता किसीप्रकारसे

नहीं होसती है ॥ क्योंकि विद्वान् विषयोंको भोगना हुआभी उनमें आगमन नहीं होता और मूर्खकर्मों आसक्त होजाता है इसीवार्ता को भीनामें भी भगवान् ने कहा है ॥ तत्त्वविनुमहायातो गुणवर्माभिभागयोः ॥ गुणागुणेपुर्वतन इति मत्मानमज्जनं १ ॥ हे महायातो ! तत्त्ववित्त जो ज्ञानीहै सो इन्द्रियोंके विषयोंके विभाग को जानता है इन्द्रिया अपने २ विषयोंमें वर्तित हैं इनको भी गाड़ीहै भोग इनकोमात्र सोहै मगदग्ध नहीं है १ और पंचदशीवाग्ने भी ज्ञानी अज्ञानीका भेद दिखलाया है ॥ ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्चात्र गमे प्राग्ध-

है कष्टके होनेपर भी ज्ञानी धीर्यतासे भ्रेशको नहीं प्राप्त होताहै और मूर्ख अज्ञानी अधीर्यता के कारण भ्रेशको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

सुलम् ॥

यत्पदं प्रेप्सवोर्दानाः शक्नवाः स हि देवताः ॥ अहोतत्रस्थितो योगी न हर्षमुपगच्छति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

यत् पदम् प्रेप्सवः दीनाः शक्राद्याः
सर्वदेवताः अहो तत्र स्थितः योगी
न हर्षम् उपगच्छति ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
यत् = जिस		स्थितः = स्थित हो	
पदम् = पद को		हुआंभी	
प्रेप्सवः = इच्छा कर- ते हुये		योगी = योगी	
शक्राद्याः = शक्रादि		हर्षम् = हर्ष को	
सर्वदेवताः = सब देवता		न उपगच्छति {	नहीं प्रा
दीनाः = दीन हो रहे हैं		च्छति {	= होता है
तत्र = तिस पद		अहो = यही अ	
विषे		श्चर्य	

भावार्थः ॥

१ प्रश्न ॥ संसार विषे व्यवहार में स्थित हुआ २ श
अज्ञानी के लिये क्यों नहीं होसकता है ॥ उत्तर ॥
ज्ञानी को लाभ अलाभ में सुख दुःख होते हैं ॥

यान् को नहीं होते हैं इसी से उनकी तुल्यता नहीं बनसक्ती है ॥ जनकजी कहते हैं हे गुरो ! इन्द्र से आदि लेकर सब देवता जिस आत्मपद की प्राप्तिकी इच्छा करतेहुये बड़ी दीनता को प्राप्त होते हैं और जिस पदकी अप्राप्ति होने में बड़े शोक को प्राप्त होते हैं उस आत्मपद में स्थितहुआ २ योगी विषय भोगकी प्राप्ति होने से न तो वह हर्ष को प्राप्त होता है और विषयों के न प्राप्त होने से या नष्ट होनेपर वह शोक को नहीं प्राप्त होता है क्योंकि आत्मसुख से अधिक और सुख नहीं है सो उस को नित्य प्राप्त है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

तज्ज्ञस्य पुण्यपापाभ्यां स्पर्शो ह्यन्तर्न जायते ॥ न ह्याकाशस्य धूमेन दृश्यमानापि संगतिः ॥ ३ ॥

पदब्धेदः ॥

तज्ज्ञस्य पुण्यपापाभ्याम् स्पर्शः हि अन्तः न जायते न हि आकाशस्य धूमेन दृश्यमाना अपि संगतिः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
	{ उस पद	हि = क्योंकि	
तज्ज्ञस्य =	{ को जा-	आका } = आकाश	
	{ नने वा-	शस्य } = का	
	{ ले के	संगतिः = सम्बन्ध	
अन्तः = अन्तःकर-		दृश्यमाना = देखाजाता	
एका		हुआ	
पुण्यपा }	पुण्य और	अपि = भी	
पाप्याम् }	पापके साथ	धूमेन = धूमके साथ	
स्पर्शः = सम्बन्ध		न = नहीं है	
न जायते = नहीं होता			
है			

भावार्थ ॥

ज्ञानवान् विधिवाक्यों का भी किङ्कर नहीं होता है इसी वास्ते उस को पुण्य पापभी स्पर्श नहीं करते हैं जिस विद्वान् ने तत्पद और त्वम्पद के अर्थ को महावाक्यों द्वारा भागत्याग लक्षणा करके अभेद अर्थ को निश्चय कर लिया है उसके अन्तःकरण के धर्म जो पुण्य पाप हैं उन के साथ उसका सम्बन्ध किसी प्रकार नहीं होता है ॥ क्योंकि वह पुण्य

पापको अन्तःकरणका धर्म मानता है अपने आत्माका नहीं मानता है जो अपने में मानता है उसी को पुण्य पापभी लगने है इस में एक दृष्टान्त कहते हैं ॥ एक पण्डित किसी ग्राम को जाता था रस्ते में खेत के किनारे एक वृक्ष के नीचे वह बैठकर मुस्ताने लगा उस खेत में एक जाट हर जोतता था और उग के घैल हरके आगे चलते चलते जब खड़े होजाते थे तब वह जाट घैलोंको गालियां देता तेरे खसमकी लड़की को ऐसा करूं तेरे खसम के मुग्य में पेशाब करूं ॥ पण्डित ने जब उस को घैलों के प्रति गालियां देते देखा तब विचार करने लगा इन घैलों का खसम तो यह पुरुष आपही है अपनेको ही ये गालियां दे रहा है परन्तु इस वार्ता को यह मनसता नहीं है इस को समझा देना चाहिये ॥ तब पण्डितने उस जाट से कहा वह जो तू घैलों को गालियां दे रहा है ये गालियां किसको लगती हैं तब जाटने कहा जो साला गालियों को समझता है उसी को लगती हैं पण्डितजी चुप चलेगये जाटका तात्पर्य यह था मैं तो समझता नहीं हूं तू समझना है ये गालियां तेरेको ही लगती हैं ॥ (दार्ष्टान्त) अज्ञानी पाप पुण्य को अपने में मानता है इस दाम्ने अज्ञानी को ही

पाप पुण्य लगते हैं ज्ञानी अपने में नहीं मानता है उन को अन्तःकरण का धर्म मानता है इस वास्ते उस को पाप पुण्य नहीं लगते हैं अथवा जिस को पाप पुण्यका विशेष ज्ञान होता है उसी को पाप पुण्य लगते हैं बालक को या पागल को पाप पुण्य का ज्ञान नहीं होता है इस वास्ते उन को भी पाप पुण्य नहीं लगते हैं ज्ञानवान् को भी पाप पुण्य का ज्ञान नहीं होता है क्योंकि अपने आत्मानन्द में मग्न रहता है उसको भी पाप पुण्य नहीं लगते हैं इसी पर और दृष्टान्त कहते हैं जैसे आकाश का धूमके साथ कोई सम्यन्ध नहीं है तैसे आत्मवित् का भी पुण्य पाप के साथ कोई भी सम्यन्ध नहीं है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

आत्मैवेदं जगत्सर्वं ज्ञातं येन मं
हात्मना ॥ यदृच्छया वर्त्तमानं तं निषेद्धं
क्षमेत कः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

आत्मा एव इदम् जगत् सर्वम्

ज्ञातम् येन महात्मना यदृच्छया वर्त-
मानम् तम् निषेद्धुम् क्षमेत कः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
येनमहा } जिसमहा-
त्मना } त्माकरके
इदमसर्वम् = यहसम्पू-
र्ण
जगत् = संसार
आत्माएव = आत्माही
ज्ञातम् = जानाग-
याहै

अन्वयः शब्दार्थ
यदृच्छया = प्रारब्धव-
शासे
तम् = तिस
वर्तमानम् = वर्तमान
ज्ञानीको
निषेद्धुम् = निषेधकर-
नेको
कः = कौन
क्षमेत = समर्थ है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ अंगर ज्ञानी कर्मों को करेगा तो उस
को पुण्य पापकाभी सम्बन्ध जरूर होगा यह कैसे हो-
सकता है कि वह कर्म करे पर उसको पुण्य पापका
सम्बन्ध न हो ॥ उत्तर ॥ जिस विद्वान् ने दृश्य-
मान सारे जगत् को अपना आत्मा जान लिया है
उस को प्रारब्धवश से कर्मों में वर्तमान को कौन
वाक्य प्रवृत्त करने में वा निषेध करने में समर्थ है

किन्तु कोई भी नहीं है ॥ शारीरक भाष्यमें कहा है ॥
 अविद्यावद्विषयोवेदः ॥ वेदवचन जो विधिनिषेध
 वाक्य हैं वे भी अज्ञानी के लिये हैं ज्ञानवान् के
 ऊपर उनकी आज्ञा नहीं है ॥ स्मृति भी कहती है ॥
 प्रबोधनीयएवासौ सुसोराजेवबन्धुभिः ॥ जैसे बन्दी-
 गण भाटलोग राजा के चरित्रों का वर्णन करते हैं
 तैसे वेद भी ज्ञानवान् के चरित्रों का वर्णन करते हैं
 इसी कारण ज्ञानवान् को पुण्य पाप भी स्पर्श नहीं
 कर सक्ता है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

आब्रह्मस्तंवपर्यन्ते भूतग्रामेचतु-
 र्विधे ॥ विज्ञस्यैवहिसामर्थ्यमिच्छानि
 च्छाविवर्जने ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

आब्रह्मस्तंवपर्यन्ते भूतग्रामे चतु-
 र्विधे विज्ञस्य एव हि सामर्थ्यम् इ-
 च्छानिच्छाविवर्जने ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आम्र	ब्रह्मासे	इच्छानि	इच्छा
स्तंवर्य	चौटीपर्य-	च्छाविव	ओर अ-
न्ते	न्त	र्जने	निच्छाके
चतुर्विधे =	चारप्रकार		त्याग
	के		विषे
भूतग्रामे =	जीवोंकेस-	हि =	निश्चय
	मूहमेंसे		करके
विद्वत्स्यएव =	ज्ञानीको	सामर्थ्यम् =	सामर्थ्यहै
	ही		
	भावार्थ ॥		

प्रश्न ॥ ज्ञानीकी प्रवृत्ति यदृच्छासे याने दैवइच्छासे होती है याकि अपनी इच्छासे होती है ॥ उत्तर ॥ ज्ञानीकी प्रवृत्ति यदृच्छासे होती है अपनी इच्छा से नहीं होती है ॥ ब्रह्मासे लेकर स्तंवर्यतः यद्यपि इच्छा अनिच्छा हटाई नहीं जासकती है तथापि ब्रह्मज्ञानी में इच्छा अनिच्छा हटानेकी सामर्थ्यहै इसीवास्ते यदृच्छाकरके भोगोंमें प्रवृत्तहुआर या कर्मोंमें प्रवृत्त हुआ विधिनिषेधका किंकर नहीं होसक्ता है ॥ शुक्रदेवजीने भी कहा है ॥ भेदाभेदौसपदिगलितौ पुण्य

पापेर्विशोर्णं मायामोहौक्ष्यमुपगतौ नष्टसंदेहवृत्तेः ॥
 शब्दार्तीतं त्रिगुणरहितं प्राप्य न त्वावबोधं निस्त्रैगुण्येप
 थिविचरतां कोविधिः को निषेधः ॥ १ ॥ जिस विद्वान्
 के आत्मज्ञान के प्रभाव से भेद अभेद यह दोनों
 वृत्तिज्ञान शीघ्र ही नष्ट होगये हैं उसी के पुण्य और
 पाप भी नष्ट हो जाते हैं और माया औ माया का कार्य
 मोह ये दोनों जिसके नाश होगये हैं और शब्द आदि
 विषयों से और तीनों गुणों से रहित है जो और
 आत्मतत्त्व को जो प्राप्त हुआ है और तीनों गुणों से
 रहित होकर निर्गुण ब्रह्म के मार्ग में विचरता रहता है
 जो उसके लिये न कोई विधि है और न कोई निषेध
 है ॥ १ ॥ प्र० ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशु-
 भम् ॥ १ ॥ किये हुये जो शुभ अशुभ कर्म हैं वे सब अ-
 वश्य ही सब जीवों को भोगने पड़ते हैं तो फिर इन वा-
 क्यों से क्या प्रयोजन है ॥ उ० ॥ ये सब वाक्य अज्ञानी
 प्रति हैं ज्ञानी प्रति नहीं ऐसा वेद में भी कहा है ॥ तथा च
 श्रुतिः ॥ तस्य पुत्रादायमुपयन्ति सुहृदः साधुकृत्यं द्विपं-
 तः पापकृत्यम् ॥ १ ॥ जो विद्वान् शुभ अशुभ कर्मों को
 करते हैं उसके द्रव्य को उसके पुत्र लेते हैं और उसके
 मित्र उसके पुण्य कर्मों को लेते हैं और द्वेषी उसके पाप क-
 र्मों को ले लेते हैं यह आप पुण्य पाप से रहित होकर मुक्त

होजाता है॥ तस्य तावदेव चिरं यावच्च विमोक्षये॥ केवल उ-
 तनाही काल उस विद्वान्की मोक्षमें बिलंब है जितने
 कालतक वह प्रारब्धकर्म के भोग से नहीं छूटता है ॥
 अथ संपत्त्ये ॥ जय वह प्रारब्धकर्मों से छूटजाता है
 तब वह शरीररूपी उपाधि से रहित होकर ब्रह्मसे अ-
 भेदको प्राप्त होजाता है ॥ तदा विद्वान् पुण्यपापेष्विभूय
 निरंजनः परमं साम्यमुपैति ॥ शरीरत्यागतेही विद्वान्
 पुण्य पापसे रहित होकर और भाविजन्मकर्मों से रहित
 होकर ब्रह्ममें लीन होजाता है ॥ न तस्य प्राणा उत्क्राम-
 न्ति ॥ और उस विद्वान् के प्राण लोकांतर में गमन
 नहीं करते हैं ॥ अथैव समयलीयन्ते ॥ इसी जगह अ-
 पने कारण में लय होजाते हैं ॥ इस तरह के अनेक
 ध्रुनियाक्य हैं जो विद्वान् के कर्मों के फलको निषेध
 करते हैं और गीतामें भी भगवान् ने कहा है कि
 ज्ञानरूपी अग्नि करके उसके सब कर्म दग्ध होजाते
 हैं ॥ प्र० ॥ कारणके नाश होने से कार्यकामी नाश
 होजाता है जैसे तन्तुबोके नाश होनेसे पटका भी नाश
 होजाता है तैसेही आत्मज्ञान करके अज्ञान के
 नाश होने से अज्ञानका कार्य जो विद्वान् का शरीर
 है उसकाभी नाश होजाना चाहिये ऐसी शंका किसी
 नैयायिक की है ॥ इसके समाधान को कहते हैं ॥

उ० ॥ कारण अज्ञानके नाशसमकाल ही विद्वान् के शरीर इन्द्रियादिकों का भी नाश होजाता है अर्थात् ज्ञानरूपी अग्नि करके विद्वान्के देहादिक सब भस्म होजाते हैं पर दग्धहुये भी उसके कामको देते हैं जैसे महाभारत में ब्रह्मास्त्र करके अर्जुन का रथ भस्म हो गयाथा तथापि कृष्णजी की शक्तिसे वह रथ भस्म हुआ २ भी चलता फिरता था तैसे आत्मज्ञान करके कारणके सहित देहादिक विद्वान्के भस्म हुये २ भी प्रारब्धरूपी शक्ति करके अपने २ कार्य्य को करते रहते हैं अथवा नैयायिकके मतमें कारण के नाश से एकक्षणपीछे कार्य्य का नाश होता है जैसे तन्तुवों के नाश से एकक्षणपीछे पट का नाश होता है तैसेही अज्ञानरूपी कारणके नाशके एकक्षणपीछे विद्वान् के देहादिकों का भी नाश होता है यदि कहो देहादिक तो ज्ञानकी उत्पत्तिसे पीछे अनेक वयों तक रहतेहैं सो नहीं जैसे अल्पकालतक रहनेवाले पट का नाशभी अल्प है तैसे ही अनादिकालके अज्ञान का कार्य्य जो देहादिक हैं उनके नाशके लिये दीर्घकाल लगताहै पूर्वोक्तयुक्ति और प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि ज्ञानी के ऊपर विधिनिषेधवाक्यों की आज्ञा नहीं है

७ अज्ञानी के ऊपरही है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

आत्मानमद्वयंकश्चिज्जानातिजग-
दीश्वरम् ॥ यद्वेत्तितत्सकुरुतेनभयंतस्य
कुत्रचित् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

आत्मानम् अद्वयम् कश्चित् जा-
नाति जगदीश्वरम् यत् वेत्ति तत् सः
कुरुते न भयम् तस्य कुत्रचित् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
! कश्चित् = कोई एक
आत्मानम् = आत्माया-
ने जीवको
च = और
जगदीश्वरम् = ईश्वर
को
अद्वयम् = अद्वैत

अन्वयः शब्दार्थ
जानाति = जानताहै
यत् = जिस कर्म
को करने
योग्य
वेत्ति = जानताहै
तत् = उसको
सः = वह

कर्म = करना है भयम = भय
 तम्य = उस आत्म कश्चित् = कहीं
 ज्ञानों का न = नहीं है

भाग्य ॥

अद्वैतज्ञानकरक इन का बाध होना है और
 इनके बाध होने से भय का कारण अज्ञान विद्वान्को
 नहीं रहता है तम्य और त्वयः कलत्स्यार्थ का भाग-
 त्यागलक्षणकारक और महावाक्यों करके अमेवता
 से जो जानता है वही अद्वैतज्ञान है जिसको अद्वैत
 ज्ञान प्राप्त है वह विद्वान् है वह वाचिमानुवृत्ति क-
 रके संपूर्ण व्यवहारों को कराना है पर उसको
 किसी का भय नहीं होता है क्योंकि उसके भय का
 द्वैतज्ञान का बाध हो गया है इसी वार्ताका श्रुति
 भगवती भी कहती है ॥ द्वितीयाह भयमवति ॥ इतने
 ही निश्चय करके भय होता है ॥ उदामवत्स्वनेत्य-
 तम्यमयमवति ॥ जो थोड़ा सा भी भय करना है उस
 को भय होता है ॥ अन्योमावहमन्त्यमन्त नमवेत्यय-
 पगुः ॥ जो अनेक से बचने के लिए ज्ञान कर उपाय
 करता है वह पगु की तरह बचकर नष्ट हो जाता है ।
 ब्रह्मवितर्कमवभवति ॥ ब्रह्मवितर्कप्रसवर्णनात् ।

तरतिदोकमात्मवित् ॥ आत्मवित् संसाररूपी शोक से
तरजाता है इन श्रुतिवाक्यों से भी सिद्ध होता है कि त्रि-
द्वान्दो किसी दूसरेका भी भय नहीं होता है क्योंकि
उसकी दृष्टि में कोई भी दूसरा नहीं है ॥ ६ ॥

इति भाषाटीकाचतुर्थप्रकरणसमाप्तम् ॥

पांचवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

न ते सङ्गोऽस्तिकेनापि किं शुद्धस्त्य
क्तुमिच्छसि ॥ संघातविलयं कुर्वन्नेव मे
वलयं ब्रज ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

न ते संगः अस्ति केन अपि किम्
शुद्धः त्यक्तुम् इच्छसि संघातविलयम्
कुर्यन् एवम् एव लयम् ब्रज ॥

अन्वयः शब्दार्थ अन्वयः शब्दार्थ

ते = तेरा

केनअपि = किसी के

साथ

संगः = संग

न = नहीं

अस्ति = है

अतः = याते

शुद्धः = तू शुद्ध है

किम् = किसको

त्यक्तुम् = त्यागना

इच्छसि = चाहता है

एवमण्व = इसप्रकार

संवातवि = { देहाभि-
मानको

लयम् { त्याग

कुर्वन् = कर्ता हुआ

लयम् = मोक्षको

व्रज = प्राप्त हो

भावार्थ ॥

चतुर्थप्रकरणमें शिष्यकी परीक्षा के लिये उपदेश कियाथा अथ उसकी दृढ़ता लिये चारश्लोकों करके त्वका उपदेश करनेहैं अष्टावक्रजी कहते हैं हे शिष्य ! तू शुद्ध बुद्धस्वरूप है तैरा देह मेहादिकों के साथ अहंकार और ममकार का आग्नेयद्वारा करके सम्यग् नहीं है जब तू अगम है और शुद्ध है तब फिर तेरे विषे त्याग और प्रदण कहाँ है इत्यादि अथ तू देहगोपाय को लय कर याने मैं देहहूँ या मेरा यह देहहूँ ऐसे अहं-कारको भी दूर करके आने स्वरूपमें स्थित हो ॥ १ ॥

मूलम् ॥

उदेति भवतो विश्वं वारिधेरिव बु-
दः ॥ इति ज्ञात्वा एकमात्मानमेवमेव लयं
ब्रज ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

उदेति भवतः विश्वम् वारिधेः इव
बुद्बुदः इति ज्ञात्वा एकम् आत्मानम्
एवम् एव लयम् ब्रज ॥

अन्वयः शब्दार्थः
भवतः = तुझ से
विश्वम् = संसार
उदेति = उत्पन्न हो-
ता है
इव = जैसे
वारिधेः = समुद्र से
बुद्बुदः = बुद्बुद
इति = इस प्रकार

अन्वयः शब्दार्थः
एकम् = एक
आत्मानम् = आत्मा
को
एवम् एव = ऐसा
ज्ञात्वा = जान क-
रके
लयम् = शान्ति
को
ब्रज = प्राप्त हो

भावार्थ ॥

जैसे समुद्र में अनेक बुदबुदे तरंग उत्पन्न होते हैं फिर समुद्र में ही लय होजाते हैं समुद्र से भिन्न नहीं हैं तैसे ही मनके संकल्प से यह जगत् उत्पन्नहुआ है और मनके ही लय होने से जगत् लय होजाता है देवीभागवत में कहाहै ॥ शुद्धो मुक्तःसदैवात्मा नवैवध्येतकर्हिचित् ॥ बंधमोक्षौमनस्संस्थौतस्मिन्शान्तेप्रशाम्यति ॥ १ ॥ आत्मा सदैवकाल शुद्ध और मुक्त है वह कदापि बंधको नहीं प्राप्त होता है बंध और मोक्ष दोनों मनके धर्म हैं मनके शान्त होने से बंध और मोक्ष का नाम भी नहीं रहता है ॥ आत्मा में मनके लय करने से साराजगत् लय को प्राप्त होजाता है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

प्रत्यक्षमप्यवस्तुत्वाद्विश्वं नास्त्यम

अस्ति अमले त्वयि रज्जुसर्पः इव ।
 अम एवम् एव लयम् व्रज ॥

वयः शब्दार्थः	अन्वयः शब्दार्थः
रज्जुम् = दृश्यमान	रज्जुसर्पः = रज्जुसर्प
त्वम् = संसार	की
प्रत्यक्ष हो- मपि } ताहुआभी	इव = नाई भी
स्तुत्वात् = वास्तव	न अस्ति = नहीं है
से	एवम् एव = इसीलिये
अमले = मलरहित	लयम् = शान्तिको
त्वयि = तुम्हें विषे	व्रज = प्राप्त हो न

भावार्थः ॥

प्र० ॥ प्रत्यक्षप्रमाणकरके रज्जु विषे सर्पादिकों का भेद प्रतीत होता है उनका कैसे लय होसक्ता है क्योंकि जो वस्तु प्रत्यक्षप्रमाण का विषय है उसका लय नहीं होता है ॥ उ० ॥ प्रत्यक्षप्रमाण का जो विषय है उसका भी बाध शास्त्रकरके होजाता है ॥ जैसे चन्द्रमा का मंडल प्रत्यक्षप्रमाणसे तो एकचित्ताभर न दिखाई देता है परंतु ज्योतिषशास्त्र में वह दश

हजार योजन का लिखा है तिस शास्त्र करके विचार
का नहीं माना जाता है तैसे ही प्रत्यक्षप्रमाण का वि-
षय जो जगत् है वह भी श्रुतिवाक्योंकरके बाधित हो
जाता है क्योंकि जगत् वास्तवसे तीनों काल में नहीं है
और जैसे स्वप्न की सृष्टि और गंधर्वनगरादिक तीनों
काल में नहीं हैं तैसे ही यह जगत् भी वास्तव से तीनों
काल में नहीं है ऐसा चिन्तनही जगत् के लय का
हेतु है ॥ ३ ॥ मूलम् ॥

समदुःखसुखः पूर्ण आशानेराश्य
योः समः ॥ समजीवितमृत्युः सन्नेवमे
वल्यं व्रज ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

समदुःखसुखः पूर्णः आशानेराश्ययोः
समः समजीवितमृत्युः सन् एवम् एव
लयम् व्रज ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
समः	तुल्य है दुःख	पूर्णः	= पूर्ण है जो
दुःखः	= और सुख	आशाने	आशा
सुखः	प्रिय	राश्ययोः	निगगाये

समः = बराबर है जो	एवमएव = ऐसा
सम } तुल्य है जी-	सन् = होता हुआ
जीवित } = ना और मर-	लयम् = ब्रह्मदृष्टिको
मृत्युः } ना जिसको	मज = प्राप्त हो तू

भावार्थ ॥

अष्टाद्यकजी कहते हैं हे जनक! तू आत्मानन्दकरके पूर्ण है देववश्य से शरीरमें उत्पन्न हुये जो मुख दुःख हैं उन में भी तू पूर्ण है आशा निराशा में भी तू सम है जीने मरने में भी तू सम है तू निर्विकार है मुख दुःखादिक सब अनात्मा के धर्म हैं और मिथ्या हैं क्योंकि इनके धर्मी जो देहादिक हैं ये भी सब मिथ्या हैं उत्पत्तिसे पूर्व जो देहादिक नहीं थे और नाशसे उत्तर भी नहीं रहते हैं ये बीच में भी प्रतीतमात्र हैं जो वस्तु उत्पत्तिसे पूर्व और नाशसे उत्तर न हो वह बीचमें भी वास्तव से नहीं होती है केवल प्रतीतमात्र ही होनी है जैसे स्वप्न के पदार्थ और रज्जु बिपे सर्पादिक मिथ्या हैं तैसे यह जगत् भी मिथ्या है वास्तव में तीनों कालमें नहीं है केवल मध्यही मध्य है ॥ सर्वगल्बिदं मध्य ॥ यह संपूर्ण जगत् निभय करके मध्यरूपही है ऐसे चित्तन का नामही लय चित्तन है ॥ ४ ॥ इति श्रीजगद्गुरु-तायां भाषाटीकायां पंचनं प्रकरणं सप्तमम् ॥ ५ ॥

छठवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

आकाशवदनन्तोहं घटवत्प्राकृत
जगत् ॥ इति ज्ञानं तथैतस्य न त्यागो न
ग्रहो लयः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

आकाशवत् अनन्तः अहम् घटवत्
प्राकृतम् जगत् इति ज्ञानम् तथा ए-
तस्य न त्यागः न ग्रहः लयः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

आकाशवत् = आकाश-
वत्

अहम् = मैं

अनन्तः = अनन्त है

जगत् = संसार

घटवत् = घटवत्

प्राकृतम् = प्रकृतिज-
न्य है

अन्वयः शब्दार्थ

तथा = इस कारण

एतस्य = इसका

न त्यागः = न त्याग
है

च = और

न ग्रहः = न ग्रहण
है

च = और | इतिज्ञानम् = ऐसाज्ञान
न लयः = न लय है | है

भाषार्थ ॥

पूर्वले पांचवें प्रकरण करके शिष्यकी परीक्षा के
घास्ते गुरुने लययोगरूप चिंतनका उपदेश किया
अब इस छठे प्रकरण में गुरु अपने अनुभव को दि-
खाताहुआ लयादिकों के असंभव को दिखाता है कि
मेरे में लय चिंतनरूप योगभी नहीं बनता है ॥
लय उसका होता है जो उत्पत्तिवाला पदार्थ है
जिसकी उत्पत्तिही तीनों कालमें नहीं है उसका लय
भी नहीं है जैसे घण्ट्याका पुत्र और दाशेके सींग की
उत्पत्ति नहीं है और न उसका लय है तैसे ही जगत
भी तीनोंकाल में न उत्पन्न हुआ है न होगा और न
वर्तमान काल में है तब उसका लय चिंतन कैसे हो
सकता है किंतु कदापि नहीं होसकता है ॥ प्र० ॥ यदि
जगत उत्पन्नही नहीं हुआ है तब प्रतीत क्यों होता
है ॥ उ० ॥ मादृक्क्यकारिणि में कहा है ॥ आदावन्नेव
यत्तास्ति वर्तमानेपितत्तथा ॥ अितर्धःसदृशाःसन्तोप्रवित-
धाइवलक्षिताः ॥ १ ॥ स्वप्नमायेयपाट्टे गंधर्वनगरं
पा ॥ तथाविश्यमिदंष्टं वेदांतेषुत्रिचर्षयः ॥ २ ॥ जो

तु उत्पत्ति में पहले नहीं है और नाशमें उन्नाभी
 ही है वह वर्तमानकाल में भी नहीं है ॥ परंतु मि-
 ॥ १६ ॥ २ ॥ मय की तरह वर्तमान काल में प्रतीत
 ती है ॥ १ ॥ जेव मय के द्वारा बोध और इन्द्र-
 लीलाके स्वेच्छुये पदार्थ और गन्धर्वनगर में मय
 नाहुंयही प्रतीत होने हैं तैसे यह जगत्भी विनाहुये
 प्रतीत होना है जानियोंने ऐसा अनुभव करके वे-
 तशास्त्रद्वारा देखा है कि केवल अद्वैत अनन्तम्य-
 र आत्माही सत्य है और माग प्रपञ्च प्रतीतिमात्रही
 वास्तव से नहीं है ॥ प्र० ॥ अनन्तम्यरूप आत्मा
 देहादिकों में निवास कैसे होमक्त है बड़ी वस्तु
 टी वस्तु के भीतर नहीं आसक्त है ॥ ३० ॥ जैसे
 मठादिक आकाशके निवासके स्थान हैं और भेदक
 हैं तैसेही देहादिक भी अनन्तस्वरूप आत्माके नि-
 सका स्थान है और भेदक भी है वास्तवसे तो यह
 गत् मिथ्या माया का कार्य होने से मिथ्या है इस
 द्वार वेदांत करके सिद्ध जो ज्ञान है वही ॥
 प होकर जगत्के मिथ्यात्व में प्रमाण है
 चेतनादिक भी जगत्

न्निभः ॥ इति ज्ञानंतथैतस्य न त्यागो
न ग्रहो लयः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

महोदधिः इव अहम् सः प्रपञ्चः
वीचिसन्निभः इति ज्ञानम् तथा एतस्य
न त्यागः न ग्रहः लयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
अहम् = मैं		न = और	
महोदधिः इव = समुद्र के		न = न	
सदृशहूँ		ग्रहः लयः = ग्रहण और	
सः = यह		लय है	
प्रपञ्चः = संसार			
वीचिसन्निभः = तरंगों के			
तुल्य है			
तथा = इसकारण			
न = न			
एतस्य त्यागः = इसका			
त्याग है			

इति ज्ञानम् = { यह ज्ञान है
यानी इस
प्रकार के
विचार को
ज्ञान कहते
हैं

भावार्थ ॥

प्र० ॥ घटाकाश के दृष्टान्तसे तो देह और आत्मा के
 भेदकी शंका उत्पन्न होती है जैसे आकाशसे घट भिन्न
 है और घटसे आकाश भिन्न है तैसे आत्मासे देह
 भिन्न है और देहसे आत्मा भिन्न है दोनों को भिन्न करने
 होने से ही द्वैत साधित हुआ अद्वैत आत्मा तो साधित
 न हुआ ॥ उ० ॥ जनकजी कहते हैं आत्मा मत्त
 हान् समुद्र की तरह है प्रपंच उसमें लहरों की तरह
 है इसप्रकार का अनुभवरूप ज्ञानही अद्वैत में प्र-
 भाण है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

अहंसशुक्तिसंकाशो रूप्यवद्विश्वक-
 ल्पना ॥ इतिज्ञानं तथेतस्य न त्यागो
 न ग्रहो लयः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

अहम् सः शुक्तिसंकाशः रूप्यवत्
 इति ज्ञानम् तथा एतस्य
 त्यागः लयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सः = वह		तथा = इसकारण	
अहम् = मैं		एतस्य = इसका	
शुक्तिसंकाशः = शुक्ति		न त्यागः = न त्याग है	
	तुल्यहं	न लयः = न लय है	
विश्वकल्पना = विश्व		इतिज्ञानम् = यही ज्ञान	
	कीकल्पना		है
रूप्यवत् = रजत के			
	समान है		

भावार्थ ॥

प्र० ॥ जैसे यीचिये सद्य समुद्र की विकार हैं और समुद्र विकारी है तैसे आप के दृष्टान्तसे देह आत्माका विकार है और आत्माविकारी साधित होता है ॥
 उ० ॥ अष्टावक्रजी कहते हैं विकार विकारीभाव सावयव पदार्थों में होते हैं निर्वयव पदार्थ में नहीं होते हैं इस लिये तुम्हारा दृष्टान्त सार्थक नहीं है मेरे दृष्टान्तको सुनो जैसे शुक्ति सत्यरूप है और रजत उस में मिथ्या है तैसे ही देहादिक समग्र प्रपंच का अधिष्ठान रूप मैंही सत्यहं और प्रपंच सारा मेरे में कल्पित रजतकी

तरेहे मिथ्याहै इसीकारण द्वैत तीनोंकालमें सिद्ध नहीं होसक्ता है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

अहंवासर्वभूतेषु सर्वभूतान्यथोम
यि ॥ इतिज्ञानंतथैतस्य नत्यागोनग्रहो
लयः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

अहम् वा सर्वभूतेषु सर्वभूतानि
अथो मयि इति ज्ञानम् तथा एतस्य
न त्यागः न ग्रहः लयः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अहम् = मैं

वा = निश्चयक-
स्के

सर्वभूतेषु = सब भूतों
विषे हूं

अथो = और

सर्वभूतानि = सबभूत

अन्वयः शब्दार्थ

मयि = मुझ विषे

+सन्ति = हैं

तथा = इसकारण
से

एतस्य = इसका

न त्यागः = न त्यागहै

न ग्रहः = न ग्रहणहै

च = और | इनिज्ञानम् = इसमकार
न लयः = न लय है | का ज्ञान है
भावार्थ ॥

प्र० ॥ शुक्ति में रजत के दृष्टांत करके भी आत्मा को परिच्छिन्नताकी शंका होती है क्योंकि जैसे शुक्ति परिच्छिन्न और एकदेशवर्ति है तैसही आत्मा भी परिच्छिन्न और एकदेशवर्ति सिद्ध होगा ॥ उ० ॥ जनक जी कहते हैं मैंही सम्पूर्ण भूतों में व्यापकरूप करके मणियों में सूतकी तरह वर्तता हूं मैंही सबका अधिष्ठानरूप होकर सत्तास्फूर्ति देनेवाला हूं मेरे मैंही सारा जगत् आकाशमें नीलता की तरह अध्यस्त है इस प्रकारका वेदांतवाक्यों करके सिद्धज्ञान याने अनुभव आत्मा के अद्वैत होनेमें प्रमाण है और जब मैं हूं तो मेरेमें ग्रहण त्याग और लय चिंतनादिक भी नहीं घनते हैं ॥ ४ ॥

इति श्रीअष्टावक्रगीताभाषाट्टीकायांशिष्यप्रोक्तमुत्तरष
तुष्टयं नाम पष्ठं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

सातवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

मय्यनन्तमहांभोधौ विश्वपोतइत
स्ततः ॥ भ्रमतिस्वान्तवातेन नममा
स्त्यसहिष्णुता ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

मयि अनन्तमहाम्भोधौ विश्वपोतः
इतः ततः भ्रमति स्वान्तवातेन न मम
अस्ति असहिष्णुता ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मयि { मुक्तअनं-
अनन्त = { त महास-
महाम्भोधौ { मुद्र विपे
विश्वपोतः = विश्वरू-
पीनौका
स्वांतवातेन = मनरूपी
पवनकरके

अन्वयः शब्दार्थ

इतःततः = इधरउधरसे
भ्रमति = भ्रमता है
परन्तु = परन्तु
मम = मुक्तको
असहिष्णुता = असहन
शीलता
न अस्ति = नहीं है

भावार्थ ॥

प्र० ॥ यदि लय चिंतन नहीं होगा तो सांसारिक
विक्षेपभी बने रहेंगे वे कदापि दूर नहीं होंगे ॥ उ० ॥
बने रहें मेरी क्या हानि है अनंत महान् समुद्ररूपी
मुझ आत्मा में यह विश्वरूपी नौका मनरूपी पवन
करके इधर उधर भ्रमती फिरती है उसका भ्रमण
करना मेरे को असहन नहीं है जैसे समुद्र में पवन
करके इधर उधर भ्रमती हुई नौका समुद्र को क्षोभ
नहीं करसکتی है तैसे मनरूपी पवन करके इधर उ-
धर भ्रमती हुई विश्वरूपी नौका भी समुद्ररूपी आ-
त्माको क्षोभ नहीं करसکتی है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

मय्यनन्तमहाम्भोधौ जगद्बीचिः स्व-
भावतः ॥ उदेतुवास्तमायातु नमेवृद्धि-
र्नचक्षतिः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

मयि अनन्तमहाम्भोधौ जगद्बीचिः
स्वभावतः उदेतु वा अस्तम् आयातु
न मे वृद्धिः न च क्षतिः ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
मयि	[मुक्त अनंत महा-समुद्र विषे]	अस्तम् =	लय को
अनन्त =		आयातु =	प्राप्त हो
महा		मे =	मेरी
म्भोधो		न =	न
जगद्दीचिः =	जगत् रू-	वृद्धि =	वृद्धि है
	पीकिलोल	च =	और
स्वभावतः =	स्वभाव से	न =	न
उदेतु =	उदयहों	क्षतिः =	हानि है
वा =	और चाहें		

भावार्थः ॥

. पूर्ववाले वाक्यकरके जगत् के व्यवहारको अनिष्टताका अभावकहा अब इस वाक्यकरके जगत् की उत्पत्ति आदिकों को भी अनिष्टता का अभाव कथन करते हैं ॥ जनकजी कहते हैं ॥ विनाश से रहित व्यापक आत्मारूपी समुद्र में जगत् रूपी लहरें अनेक उदय होती हैं और फिर अस्त होजाती हैं उन के उदयहोने से आत्मा की वृद्धि नहीं होती है और उन के अस्तहोने से आत्माकी कोई हानि नहीं होती है

जैसे समुद्रकी लहरों की उदय अस्त होने से समुद्र की कुछ भी हानि नहीं है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

मय्यनन्तमहांभोधो विश्वनामवि-
कल्पना ॥ अतिशान्तोनिराकार एत-
देवाहमास्थितः ॥ ३ ॥

पदन्वेदः ॥

मयि अनन्तमहाम्भोधो विश्वम् नाम
विकल्पना अतिशान्तः निराकारः एतत्
एव अहम् आस्थितः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मयि = मुझ

अनन्त (अनन्त

महा = महासमुद्र

म्भोधो विषे

नाम = निश्चयकरके

विश्वम् = संसार

विकल्पना = कल्पना-

मात्र है

अन्वयः शब्दार्थ

अहम् = मैं

अतिशान्तः = अत्यन्त

शान्तहं

निराकारः = निराकारहं

च = और

एतद्वयम् = इसी आ-

त्माके

आस्थितः = आश्रयहं

भावार्थ ॥

समुद्र और लहरके दृष्टांतसे किसीको ऐसा भ्रम न होजावै कि आत्मा का विकार जगत् है इस भ्रमके दूर करने के लिये जनकजी दूसरी रीतिसे कहते हैं॥ मुझ महान् समुद्ररूपी आत्मा में जो जगत् की कल्पना है सो भ्रममात्रही है वास्तवसे नहीं है क्योंकि मेरा अनंतस्वरूप निराकार है निराकार से साकार की उत्पत्ति बनती नहीं है जब कि आत्मा में जगत् की वास्तव से उत्पत्ति नहीं बनती है तो मैं प्रपंच से रहित शान्तरूप होकर स्थितहूँ लय योगादिक भी मेरे को करना उचित नहीं हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

नात्माभावेपुनोभावस्तत्रानन्तेनि
रञ्जने ॥ इत्यसक्तोऽस्पृहःशान्तएतदे-
वाहमास्थितः ॥ ४ ॥

पदव्येदः ॥

न आत्मा भावेपु नो भावः तत्र
अनन्ते निरञ्जने इति असक्तः अस्पृहः
शान्तः एतत् एव अहम् आस्थितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्मा = आत्मा		नो = नहीं है	
भावेपु = देहादि- विषे		इति = इसप्रकार	
न = नहीं है		असङ्गः = संगरहित	
+ च = और		शान्तः = शान्तहुआ	
भावः = देहादि		अहम् = मैं	
तत्र = उस		एतत्तएव = इसही आ- त्माके	
अनन्ते = अनन्त		आस्थितः = आश्रित	
निरंजने = { निर्देन्द्र आत्मा विषे		हूँ	

भावार्थ ॥

आत्मा देहादिभावों में आधेय याने आश्रितरूप करके नहीं है क्योंकि आत्मा व्यापक है देहादिक सब परिच्छिन्न हैं व्यापक परिच्छिन्न के आश्रित नहीं होता है और आत्मा निराकार होने से देहादिकों की उपाधि भी नहीं होसक्ता है क्योंकि आत्मा सत्य है देहादिक सब मिथ्या हैं सत्यवस्तु मिथ्यावस्तुकी उपाधि नहीं होसक्ती है और देह इन्द्रियादिक आत्मा की

आठवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

तदा वन्धो यदा चित्तं किञ्चिद्वाञ्छति
शोचति ॥ किञ्चिन्मुञ्चति गृह्णाति किञ्चि
हृष्यति कुप्यति ॥ १ ॥

पदञ्चेदः ॥

तदा वन्धः यदा चित्तम् किञ्चित्
वाञ्छति शोचति किञ्चित् मुञ्चति
गृह्णाति किञ्चित् हृष्यति कुप्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यदा = जब

चित्तम् = मन

वाञ्छति = चाहता है

किञ्चित् = कुछ

शोचति = सोचता है

किञ्चित् = कुछ

अन्वयः शब्दार्थ

मुञ्चति = त्यागता है

किञ्चित् = कुछ

गृह्णाति = ग्रहण क-

रता है

हृष्यति = प्रसन्न हो-

ता है

कृप्यति = दुःखित
होता है

तदा = तब
बन्धः = बन्ध है

भावार्थ ॥

पूर्वले ७ प्रकरणों करके अष्टावकजीने सर्वप्रकार
नकर्जके अनुभवकी परीक्षाकरली अथ इस आ-
प्रकरणमें चारदलों करके अपने शिष्य के अ-
की श्लघाको करते हैं ॥ हे जनक ! जो तूने पूर्वक-
कि मुझ अनंतस्वरूप आत्मामें त्याग और ग्रहण
की कल्पना नहीं है सो तूने ठीक कहा है क्योंकि
चित्त विषयों की इच्छावाला होकर किसी पदार्थ
प्राप्तिकी इच्छा करता है और उसके अप्राप्त होने
पर सोच करता है और बन्ध होता है तब तिसके
की इच्छा करता है और जब चित्तमें लोभ उ-
होता है तब ग्रहणकी इच्छा करता है पदार्थ की
होनेपर हर्ष को प्राप्त होता है अप्राप्ति होनेपर
दुःख होता है इसप्रकार जब कि अनेक घासनों
चित्त युक्त होता है तब जीवको बन्ध होता है यो
संस्तुति में भी कहा है ॥ रनेहेन धनलोभेन लाभेन मणि
ताम् ॥ अपातरमर्णयेन चेतो गच्छति पीनताम् ॥ १ ॥
आदिकों में रनेहकरके धनके लोभकरके मणिये

और स्त्री आदिकों के लाभकरके चित्त दीनताको प्राप्त होता है ॥ बंधोहि वासनाबंधो मोक्षः स्याद्वासनाक्षयः ॥ वासनास्त्वं परित्यज्य मोक्षार्थित्वमपित्यज ॥ २ ॥ चित्तमें अनेकप्रकारके भोगोंकी वासनाही पुरुष के बंधनका कारण है समग्ररूप से वासनाके क्षयहोजाने का नाम ही मोक्ष है हे राम ! जबतुम वासनाको त्यागकरोगे और मोक्ष की इच्छा न करोगे तब सुखीहोवोगे ॥ २ ॥ प्र० ॥ आपने कहा है जबतक चित्तमें वासना भरी है तबतक इसकी मुक्ति कदापि नहीं होती है सो संसार में निर्वासनपुरुष तो कोई भी नहीं दिखाई देता है क्योंकि जितने गृहस्थाश्रमी हैं उनके चित्तमें स्त्री पुं प्रधनादिकों की प्राप्तिकी वासना भरी है यदि कोई पुरुष ईश्वरका स्मरण और दानादिकों को करता है तो उसके चित्तमें यही कामना रहती है कि मेरे धनादिक सर्वदाकाल बने रहें निर्वासनहोकर कोई भी नहीं करता है और जितने कि त्यागी साधु महात्मा कहलाते उनके चित्तमें भी अनेक प्रकारकी कामना भरी है कोई मठों को बनाता है कोई सेवकी को बढ़ाता है निर्वासन तो उनमें भी कोई नहीं दिखाई देता है अतः यदि निर्वासन होवें तो वेपोंको और चेलों को और मठोंको क्यों बढ़ावें और क्यों प्रपंचको फैलावें स

प्रपंचको फैलाते हैं क्या गृहस्थी क्या संन्यासी
 जलतमें कोई ज्ञानी भी नहीं साबित होताहै ज्ञानी
 भावहोने से मुक्तिका भी अभावही सिद्धहोताहै ॥
 जैसे एक वन में एकही सिंह रहता है और
 मृगादिक लाखों रहते हैं तैसेही संसाररूपी अ-
 गृहस्थाश्रमरूपी अधवा संन्यासाश्रमरूपी वन
 सना से रहित ज्ञानवान् कोई एक बिरला ही
 है और वासना से भरेहुये अनेक होते हैं जैसे
 के मारेहुये शिफार को स्यारादिक खाते हैं तैसे
 सना पुरुषोंके चिह्नों को धारणकरके अर्थात् ज्ञा-
 यातें मुनाकरके और धैराग्यादिकों को दिख-
 र घहुत से मूर्खों को पद्मक संन्यासी या गृह-
 भाचार्यादिक ठगते हैं येही स्यार संसार के हैं
 एक दृष्टान्तको कहते हैं एकग्राममें जुलाहे बसते
 न्हों ने आपस में एकदिन सलाहकिया चलो
 को क्षत्रियों के ग्रामको लूटलावें वह जुलाहे
 मिलकर रात्रि को क्षत्रियों के ग्रामको लूटने
 जय क्षत्रियलोक हथियार लेकर जुलाहोंके मारने
 होड़े तब जुलाहे सब भागे उनमेंसे एक जुलाहे
 हा भाइयो भागेतो जातेहीहो भला मारो २ तो
 चलो वह सब जुलाहे भागतेजाने और मारो २

और स्त्री आदिकों के लाभकरके चित्त दीनताको प्राप्त होता है ॥ बंधोहि वासनाबंधो मोक्षःस्थाढासनाक्षयम् वासनास्त्वंपरित्यज्यमोक्षार्थित्वमपित्यज ॥ २ ॥ चित्तमें अनेकप्रकारके भोगोंकी वासनाही पुरुष के बंधनका कारण है समग्ररूप से वासनाके क्षयहोजाने का नाम ही मोक्ष है हे राम ! जबतुम वासनाको त्यागकरों और मोक्ष की इच्छा न करोगे तब सुखीहोवोगे ॥ २ ॥ प्र० ॥ आपने कहाहै जबतक चित्तमें वासना भरी तबतक इसकी मुक्ति कदापि नहीं होती है सो संसार में निर्वासनपुरुष तो कोई भी नहीं दिखाई देता क्योंकि जितने गृहस्थाश्रमी हैं उनके चित्तमें स्त्री पुत्र धनादिकों की प्राप्तिकी वासना भरीहै यदि कोई पुरुष ईश्वरका स्मरण और दानादिकों को करता है तो उसके चित्तमें यही कामना रहती है कि मेरेधनादि सर्वदाकाल बनेरहें निर्वासनहोकर कोई भी नहीं करता है और जितने कि त्यागी साधु महात्मा कहलाते उनके चित्तमें भी अनेक प्रकारकी कामना भरी कोई मठों को बनाता है कोई सेवकी को बढ़ाता निर्वासन तो उनमें भी कोई नहीं दिखाई देता है अतः यदि निर्वासन होवें तो वेपोंको और चेलों को और मठोंको क्यों बढ़ावें और क्यों प्रपंचको फैलावें स

कोई प्रपंचको फैलाते हैं क्या गृहस्थी क्या संन्यासी इस हालतमें कोई ज्ञानी भी नहीं साबित होता है ज्ञानी के अभावहोने से मुक्तिका भी अभावही सिद्ध होता है ॥ उ० ॥ जैसे एक वन में एकही सिंह रहता है और स्यार मृगादिक लाखों रहते हैं तैसेही संसाररूपी अध्या गृहस्थाश्रमरूपी अथवा संन्यासाश्रमरूपी वन में वासना से रहित ज्ञानवान् कोई एक बिरला ही होता है और वासना से भरेहुये अनेक होते हैं जैसे सिंहके मारेहुये शिकार को स्यारादिक खाते हैं तैसे निर्वासना पुरुषोंके चिह्नों को धारणकरके अर्थात् ज्ञानकी धातें मुनाकरके और धैर्यादिकों को दिखलाकर बहुत से मूर्खों को पशु संन्यासी या गृहस्थ आचार्यादिक ठगते हैं वेही स्यार संसार के हैं इसमें एक दृष्टान्तको कहते हैं एकग्राममें जुलाहे बसते थे उन्होंने आपस में एकदिन सत्याहकिया चलो रात्रि को क्षत्रियों के ग्रामको लूटलायें यह जुलाहे भय मिलकर रात्रि को क्षत्रियों के ग्रामको लूटने मेंये जब क्षत्रियलोक हथियार लेकर जुलाहोंके मारने को दौड़े तब जुलाहे सब भागे उनमेंसे एक जुलाहे ने कहा भाइयो भागेतो जातेहीहो भला मारो २ तो कहतेचलो यह सब जुलाहे भागनेजाते और भागे २

मी कर्त्तव्य जानथे दार्ष्टान्त्य यद्वत् किं वदन्मं यनावटके
जानी जानके माधनों म भाग ना जानें हैं पर औगों
में ऐमा कहने जानें हैं कि रामनाका व्यागों जानको
धारणकरो मच संसार मिथ्या इ एम दम्भी जानी नहीं
होसके हैं जो समग्रवागना म गर्जन है बंदी जानी हैं
वामनावालाही बन्धकों प्राप्त गता है ॥ १ ॥

मृत्तम ॥

तदामुक्तिर्यदाचित्तं नवाञ्छति न शो-
चति । न मुञ्चति न गृह्णाति न हृष्यति
न कुप्यति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

तदा मुक्तिः यदा चित्तम् न वा-
ञ्छति न शोचति न मुञ्चति न गृ-
ह्णाति न हृष्यति न कुप्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यदा = जब

चित्तम् = मन

नवाञ्छति = नचाहता
है

अन्वयः शब्दार्थ

नशोचति = नगोचता
है

नमुञ्चति = नत्यागता
है

न गृह्णाति = न ग्रहण क-
स्ता है
न हृष्यति = न प्रसन्न हो
ता है
च = और

न = न
कुम्पति = दुःखित
होता है
तदा = तब भी
मुक्तिः = मुक्ति है

भावार्थ ॥

जिसकालमें चित्त न भोगोंकी प्राप्तिका इच्छा क-
रता है और न शोकों के त्यागकी इच्छा करता है
अर्थात् पदार्थ के पानेपर न उसको हर्ष होता है और
न प्यारे सम्बन्धियों के नष्ट या वियोग होनेपर शोक
है एकरस सदा ज्योंका त्यों बनारहता है उसीकाल में
वह पुरुष मोक्षको प्राप्त होजाता है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

तदा बन्धो यदा चित्तं सक्तङ्कास्वपि
दृष्टिषु । तदामोक्षो यदा चित्तमसक्तसर्व
दृष्टिषु ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

तदा बन्धः यदा चित्तम् सक्तम्

कासु अपि दृष्टिषु तदा मोक्षः यदा
चित्तम् असक्तम् सर्वदृष्टिषु ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यदा = जब

चित्तम् = मन

कासु = किसी

दृष्टिषु = दृष्टिमेंयाने
विषय में

सक्तम् = लगा हुआ
है

तदा = तब

बन्धः = बन्ध है

अपि = और

यदा = जब

अन्वयः शब्दार्थ

चित्तम् = मन

सर्वदृष्टिषु } = सब दृष्टि-
योंमेंयाने
सब विष-
योंमें से
किसी भी
विषयमें

असक्तम् = नहीं लगा
है

तदा = तब

मोक्षः = मुक्त है

भावार्थ ॥

पूर्व एक वाक्य करके बन्ध के लक्षण को कहा
दूसरे वाक्य करके मुक्तिके लक्षणको कहा अब ए

ही वाक्य करके बन्ध मोक्ष दोनों को कथन करते हैं जय चित्त अनात्मपदार्थों में अनात्माकारवृत्तिवाला होता है तबभी इसको बन्ध होता है जय चित्त विषयाकार नहीं होता है अर्थात् आसक्ति से रहित होकर सर्वत्र आत्मदृष्टिवाला होता है तभी जीव मुक्त कहा जाता है॥प्र०॥आपने कहा है कि जिसकालमें चित्त विषयों में आसक्त होता है तब बन्ध होता है और जय अनासक्त होता है तब मुक्त होता है एकही चित्तमें कालभेद करके यदि बन्ध मोक्ष माना जावैगा तब मुक्तिभी अनित्य होजावैगी ॥ उ० ॥ उस वाक्यका यह तात्पर्य नहीं है जो आपने समझा है किंतु तिसका यह तात्पर्य है आत्मज्ञान की प्राप्ति से पूर्व जितने कालतक पुरुषका चित्त विचार से धून्य होकर विषयों में आसक्त रहता है उतने कालतक जीव बन्धमें ही पड़ा रहता है पश्चात् जय विचार करके युक्तहुआ रचित दोषदृष्टिकरके विषयों में आसक्ति से रहित होजाता है और फिर विषयवासनाका बीज भी चित्त में नहीं रहता है तब फिर वह मुक्त होकर कदापि बन्धको नहीं प्राप्त होता है जैसे भूजेहुये बीजमें फिर अंकुर उत्पन्न करने की शक्ति नहीं रहती है तैसेही निर्वासनकचित्तवाला पुरुष कभी भी जन्मको प्राप्त नहीं होता है ॥ ३ ॥

मन्त्रम् ॥

यदानाहेतदामोक्षो यदाहं बन्धनन्त
दा ॥ मत्वेतिहेतया किञ्चिन्मा गृहाण वि
मुञ्च मा ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

यदा न अहम् तदा मोक्ष यदा
अहम् बन्धनम् तदा मत्वा इति हेतया
किञ्चित् मा गृहाण विमुञ्च मा ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यदा = जब

अहम् = मैं हूँ

तदा = तब

बन्धनम् = बन्ध है

यदा = जब

अहम् न = मैं नहीं हूँ

तदा = तब

मोक्षः = मोक्ष है

अन्वयः शब्दार्थ

इति = इस प्रकार

मत्वा = मानकर-
केहेतया = इच्छा कर
के

मा = मत

गृहाण = ग्रहण कर

मा = मत

विमुञ्च = त्यागकर

भावार्थ ॥

जबतक पुरुषमें अहंकार घँटा है मैं ब्राह्मणहूँ मैं शानी हूँ मैं त्यागीहूँ तबतक वह मुक्त कदापि नहीं होसکتा है प्रेमाभी कहा है ॥ यावत्स्यात्स्वस्यसम्बन्धोऽहंकारेण दुर्गत्मना । तावज्जलेशमात्रापि मुक्तिर्वार्ताविलक्षणा ॥ जयतक इस जीव अहंकारीका सम्बन्ध दुरात्मा के साथ बना रहता है तबतक मुक्ति लेशमात्र इसको प्राप्त नहीं होती है ॥ इसी वार्ताको कहते हैं ॥ जयतक जीवका शरीरदियों से अहंकाराभ्यास बना है तबतक हमकी मुक्ति कदापि नहीं होसکتी है जिस कालमें अहंकाराभ्यास इसका निवृत्त होजाता है तिसीकाल में बिनाही परिश्रम अपना अभोक्ता होकर मुक्त हो-जाना है ॥ ४ ॥

इति श्रीअष्टावक्रगीतायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

कृताकृतेचद्वन्द्वानि कदाशान्ती

निकम्पया ॥ एवं ज्ञानेन निर्वेदाद्भव
त्यागपरमो व्रती ॥ १ ॥

५००४४

कृताकृते च द्वन्द्वानि कदा ज्ञान्ता
नि कस्य वा एवम ज्ञान्वा इह निर्वे-
दात् भव त्यागपरः अव्रती ॥

अन्वयः शब्दार्थ अन्वयः शब्दार्थ
कृताकृते = कृत और वा = मंगल ग-
अकृतकर्म हित

च = और ज्ञान्वा = ज्ञानरूपके
द्वन्द्वानि = दुःख और इह = इस संसार
मुख विषे

कस्य = किसके निर्वेदात् = विचारमें
= कब अव्रती = व्रतगति
= शान्त हु- होना हुआ
ये हैं त्यागपरः = त्यागपरा-
यण

॥ = इस प्रकार ॥ भव = हो

निकस्यवा ॥ एवंज्ञात्वेहनिर्वेदाद्भव
त्यागपरोव्रती ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

कृताकृते च द्वन्द्वानि कदा शान्ता
नि कस्य वा एवम् ज्ञात्वा इह निर्वे-
दात् भव त्यागपरः अव्रती ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कृताकृते = कृत और
अकृतकर्म

च = और

द्वन्द्वानि = दुःख और
सुख

कस्य = किसके

कदा = कब

शान्तानि = शान्त दु-
ये हैं

एवम् = इस प्रकार

अन्वयः शब्दार्थ

वा = संशय र-
हित

ज्ञात्वा = जानकरके

इह = इस संसार
विषे

निर्वेदात् = विचारसे

अव्रती = व्रतरहित

होताहुआ

त्यागपरः = त्यागपरा-

यण

भव = हो

भावार्थ ॥

अष्टावक्र जी कहते हैं हे शिष्य ! हजारों मनु-
ष्योंमेंसे किसी एक भाग्यशाली पुरुषके चित्तमें वैराग्य
उत्पन्न होता है उस के जीनेकी और भोगनेकी इ-
च्छा भी निवृत्त होजाती है क्योंकि संसार के पदार्थों
में गलानी और दोषदृष्टिका नामही वैराग्यहै जितने
संसारके उत्पत्ति नाशवाले पदार्थहैं सबमें दोष लगे हैं
संसारमें स्त्री पुत्र धन और शरीर तथा इन्द्रिय आदिक
सब को प्यारे हैं और इन्हीं के सुख के लिये पुरुष
अनेक अनर्थों को करता है और येही सब जीवों के
बन्ध के कारण हैं इस वास्ते बिना इन में वैराग्य
प्राप्त होने के कदापि पुरुष मोक्ष को नहीं प्राप्त होता
है इसी हेतु से प्रथम इन्हीं में दोषदृष्टि को दिग्गते
हैं ॥ योगवाशिष्ठ में कहा है ॥ गर्भेदुर्गन्धिभूयिष्ठे
जठराग्निप्रदीपिते ॥ दुःखंमयासं यत्तस्मात्कनोपः
कुम्भीपाकजम् ॥ १ ॥ बड़ी भाँति दुर्गन्धि कस्के
युक्त जो माताका उदर है और जो जठराग्नि कर के
प्रदीप्तहै तिस गर्भमें आकर जो जीव को दुःख होता
है वह कुम्भीपाक नरकसे भी कमहै ॥ १ ॥ और गर्भो-
पनिषद् में भी गर्भ के दुःखों का वर्णन किया है कि
जित्त काल में गर्भ में जीव अनिदुःखी होताहै ईश्वर

संसारजन्म में पुत्र होता है जो पूर्व जन्ममें पुत्र होता है
 वही उत्तरजन्ममें पिता होता है ॥ १ ॥ एकोयदावजाति
 कर्मपुरःसरोऽयं विश्रामवृक्षसदृशः खलुजीवलोकः ॥
 सायंसायंवात्तवृक्षंसमेतः प्रातःप्रातस्तेनप्रयान्ति ॥ २ ॥
 जैसे सायंकाल में इधर उधर से पक्षी उड़कर एकी
 वृक्षपर रात्रिको विश्रामके लिये इकट्ठे होजाते हैं और
 प्रातःकाल में सब इधर उधर उड़जाते हैं तैसेही इस
 संसाररूपी वृक्षमें जीव सब कर्मोंके बन्धनहोकर इकट्ठे
 होजाते हैं फिर प्रारब्धकर्म के भोगके पूरे होनेपर सब
 अकेले २ होकर चलेजाते हैं कोई भी स्त्री पुत्र घनादि
 इस के साथ नहीं जाते हैं और न साथ आते हैं इस
 तरह विचार करके इनमें मोहको कदापि न करे ॥ और
 देवीभागवत में शुकदेवजी ने जो स्त्री के सम्यन्ध से
 दोष दिखाये हैं उनको ॥ नरस्यबन्धनार्थाय शृङ्खला
 स्त्रीप्रकीर्तिता ॥ लोहबन्धोऽपिमुच्येत स्त्रीबन्धो नैव मु-
 च्यते ॥ १ ॥ पुरुष के बन्धन का हेतु स्त्रीकोही चेड़ी
 रूप करके कहा है लोहेकी चेड़ीकरके बांधाहुआ पुरुष
 छूटजाता है परन्तु स्त्रीके स्नेहरूपी पाश करके बां-
 धाहुआ पुरुष कदापि छूट नहीं सकता है इसीपर एक
 दृष्टान्त देते हैं ॥ एक लड़का बाल्यावस्था में सं-
 न्यासी होगया जब जवान हुआ तब तीर्थयात्रा करने

तिनपाशों से जो पुरुषगहित है वही मुक्तिका अधिकारी है दूसरा पुरुष पट्टशास्त्रों के जाननेवाला भी मोक्ष का अधिकारी नहीं है ॥ १ ॥ इसीपर अष्टावक्र जी कहते हैं संपूर्ण विषय वामना से रहित संसार त्रिपे लाखों में कोई एकही वैराग्यवान् जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

अनित्यंसर्वमेवेदं तापत्रितयद्वपि
तम् ॥ असारं निन्दितं हेयमिति नि
श्चित्य शाम्यति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

अनित्यम् सर्वम् एव इदम् ताप-
त्रितयम् २ असारम् निन्दितम् हे-
यम् २ इति निश्चित्य शाम्यति ॥

अनित्यम्	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
सर्वम्	= यह सबही	तापत्रि	{ तीनों
अनित्यम्		तयद्वपि	
			द्वपित है

असारम् = साररहितहै	निश्चित्य = निश्चय
निन्दितम् = निन्दितहै	करके
हेयम् = त्यागने	शाम्यति = शान्तिको
योग्यहै	तुम प्राप्त
इति = ऐसा	होताहै

भावार्थ ॥

प्र० ॥ ज्ञानीकी सर्वत्र इच्छाके उपशम में क्या कारणहै ॥उ०॥ जितना कि दृष्टी का विषय प्रपंच है वे सब अनित्य हैं याने चेतन में अभ्यस्त है॥प्र०॥यह प्रपंच कैसा है ॥उ०॥ आध्यात्मिक आदि तारों करके दूषित है यात पित्त श्लेष्मादि निमित्तसे जो दुःख होताहै उसका नाम आध्यात्मिक दुःख है याने जो काम क्रोध लोभ मोह ईर्ष्या आदि करके जो मानसदुःख है उसीकानाम आध्यात्मिक दुःख है और जो मनुष्य पशु सर्प वृक्षादिक निमित्तक दुःख है उसका नाम आधि भौतिक दुःख है यक्षराक्षस विनायकादि निमित्तक जो दुःख है उसका नाम आधिदैविक दुःख है ॥ इनतीन प्रकार के दुःखों करके पुरुष संदेव संतसरहता है ॥ इसी वास्ते यह सब प्रपंच असारहै तुच्छ है त्यागने

योग्य है ऐसा जानकर ज्ञानवान् किसी भी पदार्थ
इच्छा नहीं करता है ३ ॥

मूलम् ॥

कोऽसौ कालो वयः किं वा यत्र द्वन्द्वानि
नो नृणाम् ॥ तान्युपेक्ष्य यथा प्राप्तव
र्त्ता सिद्धिम् वा श्रुयात् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

कः अमो कालः वयः किम् वा
यत्र द्वन्द्वानि नो नृणाम् तानि उपे
क्ष्य यथा प्राप्तवर्त्ता सिद्धिम् श्रुयात् ॥
अन्यः शब्दार्थः । अन्यः शब्दार्थः

यत्र = त्रिम में

वा = ओ

नृणाम् = मनुष्यों को

किम् = कौन

द्वन्द्वानि = मूल ओ

वयः = आत्मा

नो = नहीं

अश्रितुम् । यानि कौन

अमो = वह

कोपि । नदी

कः = कौन

तानि = उनमें

ज्ञान = ज्ञान दे

उपेक्ष्य = विचार

कर

यथाप्रा- प्तवर्त्ता } =	{	यथाप्रा-		सिद्धिम् = सिद्धि या-	ने मोक्षको
		प्तवस्तु-			
		ओं वि			
		पे व-			
		र्तनेवा-		अवाप्नुयात् = प्राप्त होता	
		लापुरुष		है	

भावार्थ ॥

पुरुषों को सुख दुःखादिक द्वन्द्व किसी खास काल या अवस्था में नहीं व्याप्त है किन्तु सब अवस्थाओं में और सर्वकालों में सुखदुःखादिक द्वन्द्व वेहधारी को घराघर घने रहते हैं ॥ इसी वार्ता को रामजीने अध्यात्मरामायण में कहा है ॥ सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् । ह्यमेतद्विजंतूनामलंघ्यं दिनरात्रिषु ॥ १ ॥ सुख के अनन्तर दुःख होता है और दुःख के अनन्तर सुख होता है ये दोनों निश्चय करके जीवि को अलंघ्य हैं याने हटाये नहीं जा सकते हैं ॥ १ ॥ सुखमध्ये स्थितं दुःखं दुःखमध्ये स्थितं सुखम् । ह्यमन्योऽन्यसंयुक्तं प्रोच्यते जलपंकवत् ॥ २ ॥ सुख में दुःख और दुःख में सुख स्थित है अर्थात् क्षणमात्र सुख के देनेवाले विषयों से अनेक रोगादिक दुःख उत्पन्न होते हैं और उपवासादिक व्रतों से जिसमें दुःख

होता है फिर विषयों की प्राप्तिरूपी सुख होता है ये दोनों सुख दुःख ऐसे मिले हैं जैसे पानी और कीच मिले होते हैं ॥ २ ॥ किसी भी देहधारी से ये सुख दुःख किसी काल में त्यागे नहीं जासकते हैं इस वास्ते विवेकी पुरुष उन सुखदुःखादिक द्वन्द्वों में भी इच्छा को त्यागकर शरीरको प्रारब्ध आश्रित छोड़ देता है ॥ ४ ॥ मूलम् ॥

नानामतमहर्षीणां साधूनां योगिनां
तथा ॥ दृष्टानिर्वेदमापन्नाः कोनशाम्य
तिमानवः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

नाना मतम् महर्षीणाम् साधूनाम्
योगिनाम् तथा दृष्टा निर्वेदम् आपन्नः
कः न शाम्यति मानवः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
नानामतम् = नाना प्र-	महर्षी- णाम् } तथा = और	= महर्षियों के	
कार के			
मतहैं			

योगिनाम् = योगियोंके कःमानवः = कौन पु-

इति = ऐसा

दृष्ट्वा = देख करके

निवेदम् = वेराग्य को

आपन्नः = प्राप्त हुआ

नशा-
म्यति

रूप
{ नहीं
शान्ति
को प्राप्त
होना
है

भावार्थ ॥

हे शिष्य! तर्कशारर को और कर्मकाण्डमें निष्ठाको त्याग करके केवल आत्मज्ञान में ही निष्ठा करना चाहिये क्योंकि तर्कशस्त्रादिक सब बुद्धिके भ्रमावने वाले हैं ॥ गौतम आदियों के जो मत हैं वे वेद और युक्ति प्रमाण से विरुद्ध हैं केवल भ्रमजाल में डालने वाले हैं ॥ गौतम आदियों के मतके चलने वाले नैयायिक ईश्वर आत्मा और जीव आत्मा दोनों को जड़ मानते हैं और ज्ञानइच्छा आदियों को आत्माका गुण मानते हैं फिर ईश्वर आत्माके गुणों को नित्य मानते हैं जीव आत्माके गुणों को अनित्य मानते हैं और सारे जीव आत्मा को व्यापक मानते हैं आत्मा के संयोग को ज्ञान के प्रति कारण मानते हैं परमाशुद्धि ज्ञान

की उत्पत्तिमानते हैं फिर परमाणुओं को निरवयव मानते हैं प्रथम तो जीवात्मा और ईश्वरात्मा जड़ नहीं होसक्ते हैं क्योंकि सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ॥ आत्मा सत्य रूप ज्ञानस्वरूप आनन्दरूप है ॥ इस श्रुतिके साथ विरोध आता है दूसरा दोनों ईश्वर आत्मा के जड़ मानने से जगदांध प्रसंगहोगा ॥ यदि यह मानलिया जाय कि कर्म जड़ है आत्मा जड़ है ईश्वरात्मा भी जड़ है तो फिर भोक्ता कर्ता और फलप्रदाता कोई भी नहीं होगा क्योंकि जड़ में भोक्तापना कर्तापना आदिक शक्ति बनती नहीं और जड़का गुण ज्ञान और चेतनता बन नहीं सक्ते हैं क्योंकि गुण गुणाका भेद नहीं होता जैसे अग्नि और उष्णता जल और शीतताका भेद नहीं है यदि अग्नि से उष्णता और प्रकाश निकाललिया जाय तो अग्नि कोई बस्तु बाकी नहीं रहती है और दोनों जड़भी हैं जैसे अग्नि के स्वरूप उष्ण और प्रकाश हैं तैसे ज्ञान और चेतनता भी दोनों आत्मा के स्वरूपहीं हैं आत्मा के धर्म नहीं हैं क्योंकि गुणगुणभाव आत्मा में कदा भी नहीं लिग्या है और चेतनता जड़का धर्म है इसमें कोई भी दृष्टान्त नहीं मिलता है इसलिये नैयायिकका कथन असंगत है ॥ यदि ईश्वर के दृष्टादिक गुणों

को नित्य मानाजाय तो ईश्वरकी इच्छानुसार जगत् की उत्पत्ति अथवा प्रलय सर्वदाकाल हुआकरैगी याने दोनों मेंसे एकही होगा दोनों नहीं होवेंगे यदि यह मानाजाय कि दोनों कभी प्रलय कभी सृष्टि तब ईश्वर की इच्छा अनित्य होजावैगी ॥ सारेजीवात्मा व्यापक भी नहीं होसकते हैं यदि ऐसा मानें तो एक के दारीर में जगत्भरके जीवात्मा बँडे हैं और सब जीवात्मों के साथ उसके मनके संयोग बनेरहने से उसको सर्वज्ञता होनीचाहिये इस कारण सबको सर्वज्ञता होनी चाहिये सोतो होती नहीं है इसी से साधित होता है कि जीवात्मों को व्यापक मानना युक्ति प्रमाणसे विरुद्ध है और परमाणुओंसे जड़ जगत् की उत्पत्ति भी नहीं बनती है क्योंकि निरवयव परमाणुओं का परस्पर संयोग बनता नहीं सावयव पदार्थों काही परस्पर संयोग बनता है युक्ती प्रमाणों से विरुद्ध होनेके कारण नैयायिकका मत विवेकी को त्यागने योग्य है इसीतरह कर्मनिष्ठावाले कर्मियोंके मतमें भी विवेकी को न श्रद्धा करना चाहिये क्योंकि उनके मतमें भी नानाप्रकार के झगड़े लगे हैं कोई कर्मी होमकोही मुख्य मानते हैं कोई मन्त्रों के जंपादिकों कोही प्रधानमानते हैं कोई कृच्छ्रचांद्रा-

यणादिक व्रतों के करनेकाही धर्ममानते हैं कोई यज्ञों में पशुओं की हिंसा काही धर्ममानते हैं कोई मूर्ति पूजा को कोई तीर्थाटन को धर्ममानते हैं कर्मजाल इतनाबड़ाभारी है कि यदि एक आदमी प्रत्येकदिन एकएक कर्म को करे तबभी उसके मय उमरभरमेंसारे कर्म समाप्त नहीं होंगे और घटी यन्त्रकी तरह अधो-ध्व्र याने नरक स्वर्गका हेतु कर्मरूपी जाल है इसी पर कहा है ॥ कर्मणावध्यतंजंतुर्विद्ययात्राविमुच्यते ॥ तस्मात्कर्म न कुर्वति यत्तपःपारदर्शिनः १ कर्मों करके जीव बन्धको प्राप्तहोना है और आत्मविद्या करके वह मोक्षको प्राप्तहोता है इसलिये विवेकी आत्म ज्ञानी कर्मोंको नहीं करते हैं आत्मनिष्ठामेही भग्न रहते हैं १ जैमिनी आचार्य का मतभी श्रुतियुक्ति से विरुद्ध है ॥ जैमिनी आत्माको जड़ चेतन उभय रूप मानते हैं और स्वर्ग की प्राप्तिकोही मोक्ष मानतेहैं ॥ एकही पदार्थ जड़ चेतन उभयरूप नहीं होसका है क्योंकि इसमें कोई भी दृष्टांत नहीं मिलता है फिर चेतन निरावयव है और जड़ सावयव और अनित्य है शीतउष्ण जैसे परस्पर विरोधीहैं तैसेही उभयरूप जड़ चेतन भी विरोधी हैं और वेदमें भी कहा उभयरूपता आत्माको नहीं लिखा है और न स्वर्ग की प्राप्ति

का नाम भी मोक्ष है ॥ तद्यथेह कर्मचितोलोकः क्षी-
यत एवामुत्रपुण्यचितोलोकः क्षीयते ॥ श्रुति कहती है
कि जैसे इस लोक में कर्मों करके प्राप्त करीहुई खेती
काल पाकरके नष्टहोजाती है तैसेही पुण्य कर्मों करके
प्राप्तहुआ स्वर्ग भी नष्ट होजाता है इन श्रुतिवाक्यों
से स्वर्ग की अनित्यता सिद्ध होती है और जब
स्वर्ग ही अनित्य है तो मुक्तिभी अनित्य अवश्य
होगी इस वास्ते जैमिनि का मत आत्मज्ञान निष्ठा-
वालेको त्यागना चाहिये ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

कृत्वामूर्तिपरिज्ञानं चैतन्यस्य न किं
गुरुः ॥ निर्वेदसमतायुक्त्या यस्तारय
तिसंसृतेः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

कृत्वा मूर्तिपरिज्ञानम् चैतन्यस्य न
किम् गुरुः निर्वेदसमता युक्त्या यः
तारयति संसृतेः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

निर्वेद }
 समता } = { वैराग्य,
 युक्त्या } { समता
 { और यु-
 { क्तिद्वारा

चैतन्यस्य = चैतन्यके

मूर्ति- }
 परिज्ञा- } = { मूर्ति के
 नम् } { ज्ञान को

कृत्वा = जानकर

अन्वयः शब्दार्थ

यः = जो

संसृतेः = संसार से

स्वम् = अपने को

तारयति = तारता है

किम् = क्या

सः = वह

गुरुः न = गुरु नहीं

है

भावार्थ ॥

अष्टावक्र जी कहते हैं हे जनक जिसने विषय-
 वासना को त्याग करके शत्रु मित्र में समबुद्धि करके
 और श्रुति के अनुकूल युक्ति से साधिदानन्द रूप
 अपने आत्माका साक्षात्कार किया है और जिसने
 अपनेको ही सर्वरूप से अनुभव किया है उसने
 संसार से अपने को तारा है दूसरा नहीं हे जनक
 तुम अपने ही पुरुषार्थ से मुक्त होगे दूसरे करके नहीं
 होगे ॥ प्रदत्त ॥ संसार में लोग कहते हैं कि गुरु
 शिष्य को मुक्त कर देता है आप उसके विरुद्ध प्रेता

कहते हैं कि शिष्य अपने पुरुषार्थसे ही मुक्त होता है यह क्या बात है ॥ उत्तर ॥ हे प्रियदर्शन संसार के लोग प्रायः करके मूर्ख अज्ञानी होते हैं वे शास्त्र के तात्पर्य को और गुरु शिष्य शब्दों के अर्थ को नहीं जानते हैं क्योंकि वे कामना करके हत होते हैं जैसे कि मुसलमानों ने मान रक्खा है पैगम्बर हम को पापोंसे छुड़ा देगा और जैसे ईसाइयों ने मान रक्खा है ईसा हमको पापों से छुड़ा देगा तैसेही और भी संसारी लोगोंने मान रक्खा है कि गुरु हमको पापों से छुड़ा देगा ऐसा उनका मानना दुःख का जनक है क्योंकि पद और शास्त्रमें कानमें मंत्र फूकने-घाले को गुरु नहीं लिखा है ॥ जो अज्ञान और अज्ञान के कार्य जन्म मरणरूपी संसार से आत्मज्ञान उपदेश करके छुड़ा देवे और चित्त के संशयों को दूर कर देवे उसका नाम गुरु है मन्त्र फूकनेवाले का नाम गुरु नहीं है रामचन्द्रजी ने वसिष्ठजी के प्रति हजारों शंके कियेये और जब सबका उत्तर वसिष्ठजीने देकर रामजीको संशयोंसे रहित करके आत्मा का घोष करदिया तब रामजीने वसिष्ठजीको गुरु माना अर्जुनने श्रीकृष्णजीके प्रति हजारों शंके कियेये जब अर्जुनको विराटरूप भगवान् ने दिखाया तब उनको

अर्जुन ने गुरु माना इसी तरह औरभी पूर्व जितने श्रेष्ठपुरुष हुये हैं उन्होंने चित्त के सन्देह दूर करने वालेको ही गुरु करके माना है सोभी व्यवहार दृष्टि सेही माना है आत्मदृष्टि से नहीं माना है क्योंकि आत्मदृष्टि में आत्मा का भेद नहीं है अष्टावक्र जी ने आत्मदृष्टि को लेकरके कहा है कि संसारी मूर्ख कान में मन्त्र फूकनेवाले गुरु केही अज्ञानार्थ शिष्य पूरे पशु बनजाते हैं क्योंकि उन को बोध नहीं है कि पारमार्थिक गुरु आत्मज्ञानी काही नाम है ऐसे गुरु तो संसारमें बहुत दुर्लभ हैं दूसरा गुरु गायत्रीका मन्त्र देनेवाला है तीसरा गुरु व्यवहारिक विद्याका पढ़ानेवाला है चौथा सत्सङ्ग गुरु है विद्यादाता हजारों अक्षरों को पढ़ाता है पशु से आदमी बनाता है फिर भी लोग उसके उपकार को नहीं मानते हैं जो दो चार अक्षरों के मन्त्र को कान में फूक देता है उसी के पूरे पशु बनजाते हैं उस के उपदेश से कोई संशय दूर नहीं होता है बल्कि उल्टी भेद बुद्धि उत्पन्न होती है कोई विष्णु का मन्त्र देकर महादेव से विरोध करा देता है कोई विष्णुसे विरोध कराता है कोई देवीका पशु बनादेता है कनफुकवे गुरु तो आपही भेदवादरूपी कीचमें फसे हैं और शिष्योंको भी

पत्ताते हैं अपनी जीविका के लिये शिष्यों के घरों में भिखारियों की तरह मारे मारे फिरते हैं जैसे वे मूर्ख हैं तैसे उन के शिष्य भी मूर्ख हैं क्योंकि जो सत्समात्मा संशयों को नाश करते हैं उनकी वह सेवा पूजा नहीं करते हैं जो मूर्ख कनफुलकवे गुरु संशयों में डालते हैं उन्हींकी पूरी सेवा करते हैं जब गुरुही मोक्षमार्ग को नहीं जानते हैं तब शिष्य कैसे जानें शिष्योंके चित्तों में तो अनेक प्रकार के विषयों की कामना भरी है उन कामना की पूर्ति के लिये वे मन्त्र लेकर जपते हैं और जपते जपते मरजाते हैं परन्तु कामना किसी कीभी पूरी नहीं होती है इसी पर कबीरजी ने भी कहा है ॥

॥ दोहा ॥

गुरुलोभी शिष्यलालची, दोनों खेलें दांव ॥

दोनों डूबे घापड़े, घैठ पत्थर की नाव १

गुरुजन जाका है गृही, चेलागृही जो होय ॥

कीचकीच को धोवते, दाग न छूटे कोय २

बंधेको बंधा मिलै, छूटे कौन उपाय ॥

सेवाकर निर्बध की, पलमें देय लुढ़ाय ३

और गुरुगीता में भी अज्ञानी मूर्ख गुरुका त्याग

करना ही लिखा है ॥ ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्यो मिथ्या

वादीविडम्बिकः ॥ स्वविश्रान्तिनजानानि परशान्ति
 करोतिकिम् ॥ १ ॥ जो गुरु ज्ञान से हीनहो मिथ्या-
 वादीहो विडम्बी हो उमका त्याग करदेना चाहिये
 क्योंकि जब वह अपनाही कल्याण नहीं करसक्ताहै
 तो शिष्यों का क्या कल्याण कर्गगा ऐसे मूर्ख अज्ञानी
 गुरु के त्याग में बहुत से शास्त्रोक्त प्रमाण हैं पर मूर्ख
 अज्ञानी लोग कुकर्मों मूर्ख गुरुओं का नहीं त्यागते
 हैं क्योंकि प्रथम तो लोग आत्माके ही कल्याण को
 नहीं जानते हैं दूसरे उन के चित्तमें भय रहता है
 कि गुरुके निरादर करने से हमारेको कोई विघ्न न हो-
 जावे इसी से मूर्खोंके मूर्ख जन्मभर उनके पशु बने
 रहते हैं इन मूर्ख शिष्य गुरुओंका इस जगह में निरू-
 पण करने का कोई प्रकरण नहीं है इस वास्ते उन
 का प्रसङ्ग छोड़ दियाजाता है हे राजन् ज्ञानकी प्राप्ति
 के अनन्तर गुरु शिष्य व्यवहार भी मिथ्या होजाता
 है क्योंकि उसकी भेद बुद्धि नहीं रहती है ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

पश्यभूतविकारांस्त्वं भूतमात्रान्य-
 थार्थतः ॥ तत्क्षणाद्वन्धनिर्मुक्तः स्वरू-
 पस्थो भविष्यसि ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

पश्य भूतविकारान् त्वम् भूतमात्रान्
यथार्थतः तत्क्षणात् बन्धनिर्मुक्तः स्व-
रूपस्थः भविष्यसि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यदा = जब		तत्क्षणात् = उसीसमय	
भूतवि- कारात्	{ भूतनके कार्य देह इ- न्द्रिय आदि को	त्वम् = तू	
		बन्धवि- निर्मुक्तः =	{ बन्धसे छ टाहुआ
यथार्थतः = वास्तव से		स्वरूपस्थः =	{ अपने स्वरूप बिने स्थित
भूतमात्रान् = भूतमात्र		भविष्यसि = होगा	
पश्य = देखेंगा			

भावार्थ ॥

हे जनक भूतों के विकार जो देह इन्द्रियादिकहे
उनको यथार्थ रूप से तুম भूतमात्र देखो आत्म रूप

करके उनको तुम मन देगो जब तुम ऐसे देगोगे तब उत्सीक्षण में शरीरदिकों से पृथक् होकर आत्म स्वरूपमें स्थित होजावोगे और उनका मार्शभूत आत्माभी तुमको कगमलकवत् प्रत्यक्ष प्रतीत होने लगेगा ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

वासनाएवसंसार इतिसर्वाविमुञ्च-
ताः ॥ तत्त्यागोवासनात्यागात्स्थिति
रद्ययथातथा ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

वासनाः एव संसारः इति सर्वाः
विमुञ्च ताः तत्त्यागः वासनात्यागात् स्थि-
तिः अद्य यथा तथा ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
वासनाएव = वासनाही	संसारः = संसार है	ताः सर्वाः = उनसब	वासनाओं
इति = ऐसा			को
ज्ञात्वा = जानकर		विमुञ्च = त्याग दू	

वासना }
त्यागात् } = वासना के
त्याग से

तत्त्यागः = { उसका
याने
संस्कार
का त्या-
ग है

अद्य = ऐसा होने
पर

यथा = { जैसा
कर्म है
याने
प्राप्त्य
है

तथा = उस के
अनुसार

स्थितिः = शरीर की
स्थिति है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ पूर्वोक्तयुक्तिसे जब पुरुष आत्मा को जानभी लेगा तब फिर उसमें उसकी निष्ठा कैसे हो-वेगी ॥ उत्तर ॥ विषयों की जो अनेक वासनाएँ वही संसार है याने बंधन है ॥ योगवासिष्ठ में भी कहा है ॥ लोकवासनयाजंतोः शास्त्रवासनयापिच ॥ देहवासनया ज्ञानं यथावत्तैव जायते ॥ १ ॥ वासना तीन प्रकारकी हैं लोकवासना अर्थात् स्वर्गादि उच्चमल्लोककी प्राप्ति मुक्तको हो ॥ १ ॥ दूसरी शास्त्रवासना याने सब शास्त्रों को पढ़कर मैं ऐसा पण्डित हो जाऊँ कि मेरेतुल्य दु-सरा कोई न हो ॥ २ ॥ तीसरी शरीरकी वासना

याने मेरा शरीर सबसे सुन्दर और पुष्ट सदैव बनारहे ॥ ३ ॥ इन तीनों प्रकारकी वासना के करनेसे पुरुष बन्ध से छूटजाता है और उसका आत्मा में भी स्थिर होजाता है ॥ प्रश्न ॥ स वासना के त्याग करदेने से शरीरकी स्थिति होगी ॥ उत्तर ॥ जैसे दुग्धर्पनेवाले बालकके सन्मत्त याने पागलके शरीरकी स्थिति प्रारब्धक होतीहै तैसे विद्वान् निर्वासनक के शरीरकी स्थिति प्रारब्धकर्म के वशसे रहती है परन्तु यह वासन शरीरकी स्थिति कैसे होगी त्यागही करना उचित प्रश्न ॥ यदि पुरुष समग्रवासनाका त्याग करे तब आत्मज्ञानको भी वह नहीं प्राप्तहोगा क्या मुमुक्षु को आत्मज्ञानकी प्राप्तिकी वासना सर्वदा धनीरहती है और ज्ञानवान् को भी चित्तके नि करने की वासना धनी रहती है फिर जीवन्मु होने की उसको वासना धनीरहती है सर्ववासना त्याग तो किसीसे भी नहीं होसक्ता है ॥ उत्तर ॥ वाग्मीकीयरामायण में ऐसा लिखा है ॥ वास द्विविधाप्रोक्ता शुद्धाचमलिना तथा ॥ मलिनाज हेतुः स्याच्छुद्धाजन्माविनाशिनी ॥ १ ॥ दो प्रकार वासना कही है एक शुद्धवासना दूसरी मलिनवासना

किसीप्रकार से मेरी मुक्तिहो और मैं अपने आत्माको साक्षात्कार करूं उसके लिये जो वृत्तिआदिकोंका निरोध करना है वह शुभवासना है विषयभोगों की प्राप्तिकी जो वासना है सो मलिनवासना है दोनोंमें से मलिनवासना जन्मका हेतु है और शुद्धवासना जन्मका नाशक है जो चतुर्थभूमिकावाला ज्ञानी है और जो मुमुक्षु है उनके लिये शुभवासना का त्याग नहीं है किन्तु अशुभवासना काही त्याग है क्योंकि विदेहमुक्ति में आत्मज्ञान कोही प्रधानता है शुभवासना का नाश उपयोगी नहीं है परन्तु जीवन्मुक्तिके लिये समग्रवासना का त्याग और मनका भी नाश और आत्मज्ञान ये तीनों उपयोगी हैं यहांपर अष्टावक्रजी जीवन्मुक्ति के सुखके लिये जनकजीसे कहते हैं कि समग्रवासना का तू त्यागकर ॥ ८ ॥

इति श्रीवायूजालिमसिंहविरचितायामष्टावक्र-
गीताभाष्यटीकायां निवेदाष्टकं नाम नवमं
प्रकरणम् ॥ ९ ॥

दशवा अध्याय ॥

मूलम् ॥

विहाय वैरिणङ्काममर्थचानर्थसंकुल
म् ॥ धर्ममप्येतयोर्हेतुं सर्वत्रानादरं
कुरु ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

विहाय वैरिणम् कामम् अर्थम् च
अनर्थसंकुलम् धर्मम् अपि एतयोः
हेतुम् सर्वत्र अनादरम् कुरु ॥

अन्वयः शब्दार्थः

वैरिणम् = वैरीरूप

कामम् = कामना
को

च = और

अनर्थसं- = अनर्थ से
कुलम् = भरेहुये

अन्वयः शब्दार्थः

अर्थम् = अर्थ को

विहाय = त्याग कर
के

च = और

एतयोः = उन दोनों
के

हेतुम् = कारणरूप	सर्वत्र =	{ धर्म अर्थ काम के हेतु क- र्मों को
धर्मम् = धर्म को		
अपि = भी		
विहाय = छोड़कर	अनाद { रम्कुरु }	= अनादर कर

भावार्थ ॥

पूर्वले प्रकरण में विषयों के बिना भी संतोषरूप धैराग्य का निरूपण किया है अब इसप्रकरण में विषयों की सृष्णा के त्यागका निरूपण करते हैं ॥ अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! काम शत्रु है यहकामही सम्पूर्ण अनर्थों का मूल है और घड़ादुर्जय है ॥ आत्मपुराण में कहा है ॥ कामेनविजितोऽग्रहा कामेन विजितो हरः ॥ कामेनविजितोविष्णुः शक्रः कामेन निर्जितः १ कामदेवहीने अग्रहाकोजीता विष्णुकोजीता इन्द्रको जीता महादेवको जीता सब अनर्थोंका मूल कारण कामदेवही है धनके संग्रह और रक्षाकरने में जो दुःख होता है और उसके नाश होनेमें जो शोक होता है उसका मूलकारण कामही है हे जनक ! कामका कारण जो धर्म है उसको और सकामकर्मों

को तुम त्यागकरो क्योंकि ये सब जीवन्मुक्तिमें प्रति-
बन्धक हैं ॥ १ ॥

मूलम् ॥

स्वप्नेन्द्रजालवत्पश्य दिनानित्रीणि
पञ्चवा ॥ मित्रक्षेत्रधनागारदारदायादि
सम्पदः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

स्वप्नेन्द्रजालवत् पश्य दिनानि
त्रीणि पञ्च वा मित्रक्षेत्रधनागारदार
दायादिसम्पदः ॥

अन्वयः शब्दार्थः अन्वयः शब्दार्थः

मित्रक्षे त्रधना गारदा दाया दिस म्पदः	=	{ मित्रक्षेत्र धन म- कान स्त्री भाई आ- दि स- म्पत्तियों को	{ स्वप्नेन्द्र जाल वत्	=	{ स्वप्न और इ- न्द्रजाल के स- मान
--	---	--	------------------------------	---	---

त्रीणि = तीन

वा = या दिनानि = दिनों तक
पञ्च = पांच पश्य = देख तू

भावार्थ ॥

प्रदत्त ॥ अनेकप्रकारके सुखों को देनेवाले जो स्त्री पुत्रादिक विषय हैं उनका निरादर करके त्याग कैसे होसकता है ॥ उत्तर ॥ हे शिष्य ! स्त्री पुत्र धन मित्र क्षेत्रादिक जितने कि भोगके साधन हैं इन सबको तुम स्वप्न और इन्द्रजाल की तरह देखो क्योंकि यह सब पाँच या तीनदिनके रहनेवाले हैं और सब दृष्टनष्ट हैं याने देखते देखतेही नष्ट होतेजाते हैं इसवास्ते इन में ममताका त्यागकरनाही उचम है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

यत्र यत्र भवेत्तृष्णा संसारं विद्धित
त्रवे ॥ प्रौढवैराग्यमाश्रित्य वीततृष्णः
सुखी भव ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

यत्र यत्र भवेत् तृष्णा संसारम्
विद्धि तत्र वै प्रौढवैराग्यम् आश्रित्य
वीततृष्णः सुखी भव ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यत्रयत्र = जिस जिस	वस्तु में	प्रौढवे } = असाधार-	राग्यम् } ण वैराग्य
तृष्णा = इच्छा			को
भवेत् = होवे		आश्रित्य = आश्रय	करके
तत्र = उस उस	विषे	वीततृष्णः = तृष्णारहि-	त होता-
संसारम् = संसार को			हुआ
विद्धि = जान तू		सुखीभव = सुखी हो	
वै = निश्चय	पूर्वक		

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहने हैं हे जनक ! त्रिम २ प्रसिद्ध विषय में मनकी तृष्णा उत्पन्न होती है उगी २ विषय को तुम संसारका हेतु जानो क्योंकि विषयों की तृष्णाही कर्मद्वारा संसारका हेतु है ॥ यहीवार्ता योग्यामिष्ट में भी लिखी है ॥ मनोग्थरथारूढं युक्तमिन्द्रियवाजिभिः ॥ आत्मन्येव जगत्कृत्स्नं तृष्णागारधिनोदितम् ॥ १ ॥ मनोग्थरूपी रथ है इन्द्रियरूपी घोड़े उगके आगे बंधे हैं निमी रथपर गाराजगत् आरूढ़ हो रहा है और

तृष्णारूपी सारथि उसको भ्रमारहा है ॥ १ ॥ यथाहि
शृंगगोकालेवर्धमानेनवर्धते ॥ एवंतृष्णापिचित्तेन वर्ध-
मानेन वर्धते ॥ १ ॥ जैसे गौके दोनोंशृंग गौके शरीर
के साथही घरावर बढ़ते हैं वैसेही तृष्णा भी चित्तके
साथही घरावर बढ़ती है ॥ २ ॥ प्राप्तपदार्थ के अधिक
प्राप्तहोने की इच्छा से और अप्राप्तपदार्थ के प्राप्तकी
इच्छा से रहित होकर आत्मा में निष्ठकरने से जीव
सुखी होता है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

तृष्णामात्रात्मकोबन्धस्तन्नाशोमो
क्षउच्यते ॥ भवासंसक्तिमात्रेण प्राप्तिरु
ष्टिर्मुहुर्मुहुः ॥ ४ ॥

पदव्येदः ॥

*तृष्णामात्रात्मकः बन्धः तन्नाशः
मोक्षः उच्यते भवासंसक्तिमात्रेण प्राप्ति
तुष्टिः मुहुः मुहुः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तृष्णा	{ तृष्णामा- मात्रा } = त्र म्वरूप	भवामं	{ संसार में मक्ति } = अमङ्ग हो- मात्रेण } ने से
मात्रा			
त्मकः			
बन्धः	= बन्ध है	मुहुःमुहुः	= बारंबार
तन्नाशः	= उस का नाश	प्राप्तितुष्टिः	= { आत्मा की प्राप्ति और तृ- प्ति होती है
मोक्षः	= मोक्ष		
उच्यते	= कहा जाता है		

भावार्थ ॥

तृष्णामात्रका नामही बन्ध है उसके नाशका नाम मोक्ष है ॥ योगवासिष्ठमें कहा है ॥ व्युत्तादन्ताःमिताःके शादङ्निरोधःपदेपदे ॥ यातमग्जमिमदेह तृष्णामाध्वी नमुच्यति ॥ १ ॥ पुरुष के दांत टूटभीजाते हैं केदाश्चेत भी होजाते हैं नेत्रकी दृष्टि कमभी होजाती कदम २ पर पांव पिसलतेभी हैं पर तबभी यह तृष्णा उस पुरुष से नहीं त्यागी जाती है ॥ १ ॥ तृष्णेन्द्विनमस्तुभ्यंधैर्य विप्रयकारिणी ॥ विष्णुस्त्रैलोक्यपुत्र्योपि यच्चयात्रामनी कृतम् ॥ २ ॥ हे तृष्णे ! हे देवि ! तेमग्रनि मेगनमश्रकार

हो तू पुरुष की धैर्यताकरनाशकरनेवाली है जो विष्णु तीनोंलोकों में पूज्यथा उसको भी तूने वामन याने छोटाबनादिया ॥ २ ॥ हे जनक ! सृष्णाका त्यागही मुक्तिका हेतुहै ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

त्वमेकश्चेतनः शुद्धो जडं विश्वमसत्तथा ॥ अविद्यापि न किञ्चित्सा का बुभुत्सा तत्तथापि ते ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

त्वम् एकः चेतनः शुद्धः जडम् विश्वम् असत् तथा अविद्या अपि न किञ्चित् सा का बुभुत्सा तथा अपि ते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

त्वम् = तू

एकः = एक

शुद्धः = शुद्ध

चेतनः = चेतन्यरूपहै

अन्वयः शब्दार्थ

विश्वम् = संसार

जडम् = जड़

च = और

असत् = असत् है

तथा = वैसेही
 साअवि-) वह अवि
 द्याअपि । = द्याभी
 नकिंचित = अमन है
 तथाअपि = ऐसा होने
 पर

ते = तुम को
 का = क्या
 बुभुत्सा = जानने की
 इच्छा है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ यदि तृणामात्र बन्धनका हेतु मान
 जाय तो आत्मज्ञानकी प्राप्ति का हेतु भी तृणाबन्धन
 का हेतु माना चाहिये ॥ उत्तर ॥ अष्टावक्रजी कहते हैं
 हे जनक ! इस जगत में तीनही पदार्थ हैं एक आत्मा
 दूसरा जगत तीसरी अविद्या ॥ प्रथम आत्माके लक्षण
 को दिखाने हैं ॥ स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरादयस्मिन्
 गिक्तोऽवस्थाप्रयमाशी सच्चिदानन्दस्वरूपायस्मिन्प्रति
 सआत्मा ॥ १ ॥ जो स्थूल सूक्ष्म कारण इनतीनोंशरीरों
 में भिन्न है और जो जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति इनतीनों
 अवस्थाओं का माशी सच्चिदानन्द ही है ॥ आत्मा
 है ॥ आत्मके प्राप्ति के लिये तृणा करना पड़ता है ॥
 अनादिभावस्वरूप निश्चयान्वित समान ॥ २ ॥
 जो अनादिभावस्वरूप और आत्मज्ञान ॥ ३ ॥

गता ॥ ३ ॥ जो सदैवकाल गमनकरतारहै अर्थात् नदी के प्रवाहकी तरह चलतारहै वही जगत् है ॥ ३ ॥ इन तीनों में से हे जनक ! तुम एकही चेतन शुद्धआत्मा हो अपनेआत्माकोही पूर्णरूपकरके निश्चय करो ॥ और जगत्को असत्रूप करके जानो अविद्या सद-सत्से विलक्षण अनिर्वचनीहै उसका कार्य जगत् भी अनिर्वचनी है इसवास्ते इनदोनों में तृष्णा करनी अनुचित है क्योंकि दोनों मिथ्या हैं ॥ मिथ्या वस्तु में मूर्ख अज्ञानी तृष्णाको करता है शानवान् कदापि नहीं करता है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

राज्यंसुताः कलत्राणि शरीराणिसु-
खानि च ॥ संसक्तस्यापि नष्टानितवज-
मनिजन्मनि ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

राज्यम् सुताः कलत्राणि शरीराणि
सुखानि च संसक्तस्य अपि नष्टानि तव
जन्मनि जन्मनि ॥

दोनों जाग्रत् और स्वप्न असत् होते हैं और सुषुप्ति जाग्रत् दोनों स्वप्न में असत् होते हैं क्योंकि एक दूसरे के विरोधी हैं तैसेही जब मनुष्य अज्ञानरूपी स्वप्न अवस्था से जागकर ज्ञानरूपी जाग्रत् अवस्था को प्राप्त होता है तब सारा जगत् मिथ्या उसको प्रतीत होने लगता है ॥ प्रश्न ॥ सांख्यमतवाले जगत् के पदार्थों को नित्य मानते हैं और कहते हैं कि कारण मृत्तिकाभी सत्य है और उसका कार्य घटभी सत्य है अर्थात् कारण कार्य दोनों सत्य हैं यदि घटमृत्तिका में पूर्वसत्य और सूक्ष्मरूपसे स्थित न होवै तो उसकी उत्पत्ति भी न होवै क्योंकि असत्य की उत्पत्ति सतसे नहीं होती है इसवास्ते घट सत्य है इसी तरह और भी संसारके सारे पदार्थ सत्यही हैं असत्य कोई पदार्थ नहीं है कारणसामग्री से घटका प्रादुर्भाव होता है सामग्री के न होने से घटरूपी कार्यका मृत्तिका रूपी कारण में ही तिरोभाव रहता है घट मिथ्या नहीं है ॥ उत्तर ॥ त्रिकालाबाध्यत्वं सत्यत्वम् ॥ तीनों कालों जिसका बाध न हो उसका नाम सत्य है पर संसार ऐसा कोई पदार्थ नहीं है तुमने कहा है कि कार्य अपने कारण में सत्यरूपसे रहता है इसलिये कार्य सत्य है सो ऐसा कथन ठीक नहीं है क्योंकि घटका का-

नाश अवश्य होता है इसी से साधित होता है कि
सब पदार्थ अनिर्वचनी मिथ्या हैं और साखी का
सत्यकार्यवादभी असंगत है ६ ॥

मूलम् ॥

अलमर्थेन कामेन सुकृतेनापि कर्म
णा ॥ एभ्यः संसारकान्तारे न विश्रान्त
मभून्मनः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

अलम् अर्थेन कामेन सुकृतेन अ-
पि कर्मणा एभ्यः संसारकान्तारे न
विश्रान्तम् अभूत् मनः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अर्थेन = अर्थ करके

कामेन = कामना

करके

सुकृतेन }
कर्मणा } = सुकृत क-
अपि } र्म करके
भी

अन्वयः शब्दार्थ

अलम् = बहुत हो-

चुका है

तथा अपि = तौ भी

एभ्यः = इन तीनों

से

दशवा अध्याय ।

मूलम् ॥

कृतन्नकतिजन्मानि कायेन
गिरा ॥ दुःखमायासदंकर्म तदच-
रम्यताम् ॥ = ॥

पदव्येदः ॥

कृतम् न कति जन्मानि का-
मनसा गिरा दुःखम् आयासदम् क-
तत् अद्य अपि उपरम्यताम् ॥

अन्वयः

शब्दार्थ

अन्वयः

शब्दार्थ

कति = कितने

कर्म = कर्म

जन्मानि = जन्मों तक

न कृतम् = क्या किया

कायेन = शरीर करके

नहीं गया

मनसा = मन करके

गिरा = घाँटा करके

+ इति = ऐसा

दुःखम् = दुःख देने-

तव = वह कर्म

वाला

अद्यापि = अब तो

आयासदम् = परिश्रम

उपरम्य

करनेवाला

ताम्

} = उपराम
किया जावे

संसारका } संसाररू-	न विथा } शान्त
न्तारे } पी जङ्गल	न्तम् } नहीं
में	
मनः = चित्त	अभूत् = होताभया

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! धर्म अर्थ काम की इच्छाका त्यागकरनाही जीवनमुक्तिका कारण है और इनमें जो दोष हैं उनको देखो ॥ पृथिवीं धनपूजाचेदिमांसागरमेखलाम् ॥ प्राप्नोति पुनरप्येवस्वर्गमिच्छतिनित्यशः ॥ १ ॥ अगर यह सम्पूर्ण पृथिवी समुद्र पर्यंत धन करके युक्तभी किसी को मिलजावे तोभी वह नित्यही स्वर्ग की इच्छा करता है ॥ १ ॥ नपश्यतिचजन्मांधःकामांधोनैवपश्यति ॥ मदोन्मत्तानपश्यन्तिह्यर्थीदोषंनपश्यति ॥ २ ॥ जन्मके अन्धोंको कामानुरको मदिराकरके उन्मत्तको और धनकेअर्थीको कुछभी नहीं दिखाताहे इसलिये हे जनक ! धनादिकी इच्छाका भी त्यागही करना धिरेकी के लिये उत्तम है क्योंकि संसाररूपी वन में भ्रमण करतेहुये पुरुषका मन धर्म अर्थ कामकरके व्याकुल हुआ २ कभी भी शान्त नहीं होता है ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

कृतन्नकतिजन्मानि कायेनमनसा
गिरा ॥ दुःखमायासदंकर्म तदद्याप्युप
रम्यताम् ॥ = ॥

पदव्येदः ॥

कृतम् न कति जन्मानि कायेन
मनसा गिरा दुःखम् आयासदम् कर्म
तत् अद्य अपि उपरम्यताम् ॥

अन्वयः

शब्दार्थ

अन्वयः

शब्दार्थ

कति = कितने

कर्म = कर्म

जन्मानि = जन्मोंतक

नकृतम् = क्या किया

कायेन = शरीरकरके

नहीं गया

मनसा = मनकरके

+ इति = ऐसा

गिरा =

तत् = वह कर्म

पि = अब तो

= उपराम

कियाजावै

संसारका न्तारे	} संसाररू- पी जङ्गल में	} न विथा न्तम्	} शान्त = नहीं
मनः = चित्त			

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! धर्म अर्थ काम की इच्छाका त्यागकरनाही जीवन्मुक्तिका कारण है और इनमें जो दोष हैं उनको देखो ॥ पृथिवीं घनपूर्णाचेदिमांसागरमेखलाम् ॥ प्राप्नोति पुनरप्येवस्वर्गमिच्छतिनित्यशः ॥ १ ॥ अगर यह सम्पूर्ण पृथिवी समुद्र पर्यंत धन करके युक्तभी किसी को मिलजावे तोभी वह नित्यही स्वर्ग की इच्छा करता है ॥ १ ॥ नपश्यतिचजन्माधःकामांधोनैवपश्यति ॥ मदोन्मत्तानपश्यन्तिह्यर्थीदोषंनपश्यति ॥ २ ॥ जन्मके अर्थोंको कामातुरको मदिराकरके उन्मत्तको और धनकेअर्थों को कुछभी नहीं दिखाताहै इसलिये हे जनक ! धनादिकी इच्छाका भी त्यागही करना विवेकी के लिये उत्तम है क्योंकि संसाररूपी वन में भ्रमण करतेहुये पुरुषका मन धर्म अर्थ कामकरके व्याकुल हुआ २ कभी भी शान्त नहीं होता है ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

कृतन्नकतिजन्मानि कायेनमनसा
गिरा ॥ दुःखमायासदंकर्म तदद्याप्युप
रम्यताम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

कृतम् न कति जन्मानि कायेन
मनसा गिरा दुःखम् आयासदम् कर्म
तत् अद्य अपि उपरम्यताम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
कति = कितने		कर्म = कर्म	
जन्मानि = जन्मोंतक		नकृतम् = क्या किया	
कायेन = शरीरकरके		नहीं गया	
मनसा = मनकरके		+ इति = ऐसा	
गिरा = बाणीकरके		तत् = वह कर्म	
दुःखम् = दुःख देने-		अद्यापि = अब तो	
वाला		उपरम्य { = उपराम	
आयासदम् = परिश्रम		ताम् } = कियाजोवे	
करनेवाला			

संसारका न्तारे	}	संसाररू- पी जङ्गल में	}	न विथा न्तम्	}	शान्त = नहीं
		मनः = चित्त		अभूत् = होताभया		

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! धर्म अर्थ काम की इच्छाका त्यागकरनाही जीवन्मुक्तिका कारण है और इनमें जो दोष हैं उनको देखो ॥ पृथिवीं धनपूर्णाचेदिमांसागरमेखलाम् ॥ प्राप्नोति पुनरप्येवस्वर्गमिच्छतिनित्यशः ॥ १ ॥ अगर यह सम्पूर्ण पृथिवी समुद्र पर्यंत धन करके युक्तभी किसी को मिलजावे तोभी वह नित्यही स्वर्ग की इच्छा करता है ॥ १ ॥ न पश्यतिचजन्मांधःकामांधोनैवपश्यति ॥ मदोन्मत्तानपश्यन्तिह्यर्थीदोषंनपश्यति ॥ २ ॥ जन्मके अन्धोंको कामातुरको मदिराकरके उन्मत्तको और धनकेअर्थीको कुछभी नहीं दिखाताहे इसलिये हे जनक ! धनादिकी इच्छाका भी त्यागही करना धिवेकी के लिये उत्तम है क्योंकि संसाररूपी वन में भ्रमण करतेहुये पुण्यका मन धर्म अर्थ कामकरके व्याकुल हुआ २ कभी भी शान्त नहीं होता है ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

कृतञ्चकतिजन्मानि कायेनमनसा
गिरा ॥ दुःखमायासदंकर्म तदद्याप्युप
रम्यताम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

कृतम् न कति जन्मानि कायेन
मनसा गिरा दुःखम् आयासदम् कर्म
तत् अद्य अपि उपरम्यताम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कति = कितने

जन्मानि = जन्मोंतक

कायेन = शरीरकरके

मनसा = मनकरके

गिरा = वाणीकरके

दुःखम् = दुःख देने-

वाला

आयासदम् = परिश्रम
करनेवाला

अन्वयः शब्दार्थ

कर्म = कर्म

नकृतम् = क्या किया

नहीं गया

+ इति = ऐसा

तत् = वह कर्म

अद्यापि = अब तो

उपरम्य } = उपराम
ताम् } कियाजावै



पदच्छेदः ॥

भावाभावविकारः च स्वभावात् इति
निश्चयी निर्विकारः गतक्लेशः सुखेन
एव उपशाम्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
भावाभा	} = भाव और अभावका	निर्विकारः	= विकार-
वविकारः			रहित
	विकार	गतक्लेशः	= क्लेशरहित
स्वभावात्	= स्वभाव से		पुरुष
	होता है	सुखेनएव	= सुखसेही
इति	= ऐसा	उपशा	} = शान्ति
निश्चयी	= निश्चय	म्यति	
	करनेवाला		को प्राप्त
			होता है

भावार्थ ॥

अयं ज्ञानाष्टकनाम एकादशप्रकरणका आरंभ क-
रते हैं ॥ चित्तकी शान्ति आत्मज्ञानसेही होती है बिना
आत्मज्ञान के किसी उपाय करके नहीं होती है इस
वास्ते प्रथम आत्मज्ञानके साधनों को कहते हैं ॥

भावभाव अर्थात् स्थूल सूक्ष्मरूप करके जितने विकार याने कार्य्य हैं वे सब माया और मायाके संस्कारों से ही उत्पन्न होने हैं निर्विकार आत्मा से कोई भी विकार उत्पन्न नहीं होता है ॥ प्रश्न ॥ माया जड़ है आत्मा चेतन है केवल जड़ मायामें कार्य्य उत्पन्न नहीं होसक्ता है और न केवल चेतन में उत्पन्न होसक्ता है क्योंकि निरवयव आत्मामें मावयवकार्य्य नहीं उत्पन्न होसक्ता है और न केवल जड़ मायामें आपसे आप बिनाचेतनके सम्यन्ध कांई कार्य्य उत्पन्न होसक्ता है यदि होवै तब बिनाही कुलाल के आप से आप मृत्तिका से घट उत्पन्न होजाना चाहिये पर ऐसा तो नहीं होता है तब आपने कैसे कहा कि स्थूल सूक्ष्मरूप कार्य्य सब मायामेही उत्पन्न होते हैं चेतनसे नहीं होते हैं ॥ उत्तर ॥ हे जनक ! जैसे चुम्बक पत्थरकी शक्ति करके लोहे में चेष्टा होती है चुम्बक पत्थर में नहीं होती तैसे चेतनकी सत्ताकरके मायामें कार्य्य उत्पन्न होते हैं चेतनसे नहीं होते हैं जैसे शरीर में जीवात्माकी सत्तासे नख रोमादिक उत्पन्न होते हैं आत्मामें नहीं होते हैं आत्मा असंग है निर्विकार है शरीर विकारी नाशी है आत्मा नित्य है चेतन है शरीर जड़ है अनित्य है ऐसा निश्चयकरनेवाला पुरुष

बिनापरिश्रमके शान्तिको प्राप्त होता है दूसरा नहीं होता है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

ईश्वरः सर्वनिर्माता नेहान्यइतिनि
श्चयी ॥ अन्तर्गलितसर्वाशः शान्तः
कापिनसज्जते ॥ २ ॥

पदव्येदः ॥

ईश्वरः सर्वनिर्माता न इह अन्यः
इति निश्चयी अन्तर्गलितसर्वाशः
शान्तः कश्चापि न सज्जते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सर्वनि } र्माता }	सबका पै- दा करने- वाला	अन्यः = दूसरा कोई न = नहीं है इति = ऐसा	
इह = इस संसार विषे		निश्चयी = निश्चय करनेवाला	
ईश्वरः = ईश्वर है		एरुप	

यस्य = जिसके	शान्तः = शान्त हुआ
अन्तर्ग	अन्तः में
लितस	आहे
वर्षाशः	क अपि = कहीं
	न = नहीं
च = और	सज्जते = आसक्त
यस्य } = जिस का	होता है
आत्मा } = मन	

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ आपने कहा है कि आत्मा की सत्ताकरके भावाभावविकार उत्पन्न होने हैं सो आत्मा दो है एक जीवात्मा है दूसरा ईश्वरगत्मा है दोनोंमें किमकी सत्ताकरके भावाभावविकार उत्पन्न होने हैं ॥ उत्तर ॥ ईश्वरगत्माकी सत्ताकरके जगत् भरक पदार्थ उत्पन्न होने हैं जीवात्माकी सत्ताकरके शरीरके नय गमादिक उत्पन्न होने हैं क्योंकि यह आत्मा अपनी शरीरगत्मासे ही है और इसी कारण परिच्छिन्न है उसकी सत्ताकरके जगत् के पदार्थ उत्पन्न नहीं हो सकते हैं और ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है और सब जगत् में वह है उसी उपाधि भावाभी नहीं है ईश्वरगत्मा

सर्वत्रही ईश्वरकी सत्ताकरके पदार्थ उत्पन्न होते हैं और जीवकी उपाधि जो अंतःकरण है यह अल्प शरीर में स्थित है इसवास्ते उसकी सत्ताकरके शरीरके अवयवादिक बढ़ते हैं अल्पउपाधियाला होने से जीव अल्पज्ञ अल्पशक्तियाला है और बड़ी उपाधियाला होने से ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् है इसी कारण ईश्वरकोही लोक जगत्का कर्त्ता मानते हैं वास्तव से यह कर्त्ता नहीं है वैयल माया उपाधि करके कर्त्तृत्वव्यवहार भी ईश्वर में गौण है मुख्य नहीं है यह वास्तव से अकर्त्ता है और जीव भी वास्तव से अकर्त्ता है ॥प्रश्न॥ आपने पूर्व कहा था कि चेतन एकैह अब आप जीव ईश्वर भेद करके दो चेतन कहते हैं ॥ उत्तर ॥ वास्तव से चेतन एकही है परंतु कल्पित उपाधियों के भेद से चेतन का भेद होजाता है हे राजन् ! अविद्यानत्वमर्प्यरहितः शुद्धः ॥ अविद्या और अविद्या के वार्य्य से रहित जो चेतन है उसीका नाम शुद्धचेतन है उसी को निर्गुणमहत् भी कहते हैं ॥ सर्वनामरूपात्मकमपेक्ष-
 व्याप्ताधिष्ठानत्वंमद्वैतम् ॥ संपूर्ण नामरूपात्मक इ-
 पंचके अप्याप्तवा जो अधिष्ठान होते उसीका नाम
 महत् है उसी शुद्धचेतन में सारा नामरूपात्मक जगत्

अध्यस्त है ॥ मायामे प्रतिविधित चेतनका नाम ईश्वर
 है अतःकृष्ण मे प्रतिविधित चेतन का नाम त्रिवि है
 माया एक है इमवास्मे उममे प्रतिविधित चेतन ईश्वर
 भी एकही कहाजाता है ॥ अविद्याके अश अतःकृष्ण
 नाना हैं उनमें प्रतिविधित चेतनभी नानाहै चे
 तनके तीन भेद है एक विषयचेतन १ प्रमाण चे
 तन २ प्रमातृचेतन ३ ॥ घटावच्छिन्नचेतन्य विषय चैत
 न्यम ॥ घटावच्छिन्नचेतनका नाम विषयचेतन
 है १ ॥ अतःकृष्णवृत्त्यवच्छिन्नचेतनन्य प्रमाणचेतन्य
 म ॥ अतःकृष्ण की वृत्त्य ॥ अतःकृष्णका नाम
 प्रमाणचेतन है २ ॥ अन्त कृष्णा ॥ अतःकृष्ण प्र
 मातृचेतन्यम ॥ अतःकृष्णा ॥ अतःकृष्णका नाम
 प्रमातृचेतन है ३ ॥ घटादिक विषय चेतन १ उम
 न्तिये उनसे सम्बन्ध ॥ अतःकृष्णका नाम १ ॥ अतःकृष्ण
 न्तिये भी अतःकृष्ण ॥ अतःकृष्णका नाम २ ॥ अतःकृष्ण
 इन उपाधियों के भेद १ ॥ अतःकृष्णका नाम ३ ॥ अतःकृष्ण
 होगये हैं वास्तव मे चेतन १ ॥ अतःकृष्णका नाम १ ॥ अतःकृष्ण
 है जैसे महाकाशका धर्मशास्त्र १ ॥ अतःकृष्णका नाम १ ॥ अतःकृष्ण
 वास्तव से कोई भी सम्बन्ध नष्ट १ ॥ अतःकृष्णका नाम १ ॥ अतःकृष्ण
 उपाधियों के साथ अन्त कृष्णा १ ॥ अतःकृष्णका नाम १ ॥ अतःकृष्ण
 सम्बन्ध नहीं है ऐसे निश्चय कर्तव्य १ ॥ अतःकृष्णका नाम १ ॥ अतःकृष्ण

इचलचिसहुआ कहीं भी संसक्त नहीं होता है ॥ २ ॥

मूलम् ॥

आपदःसम्पदःकाले देवादेवेतिनि-
श्चयी ॥ तृप्तःस्वस्थेन्द्रियोनित्यं नवां-
द्यतिनशोचति ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

आपदः सम्पदः काले देवात् एव
इति निश्चयी तृप्तः स्वस्थेन्द्रियः नि-
त्यम् न वांद्यति न शोचति ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
काले = समयपर		आपदः = आपत्तियां	इति नि- श्चयी =
न = और		सम्पदः = सम्पत्तियां	नित्यम्
देवात् एव = देवयोगसे	ही होती है	तृप्तः स्व- स्थेन्द्रियः	=
			प्रेमानि- श्चयक- स्नेहान्ता पुरः नित्य सं- तुष्टस्व- स्थेन्द्रिय हुआ

नवांश्चति =	<div style="border: 1px solid black; padding: 5px; display: inline-block;"> अप्राप्त वस्तुको नहीं इ- च्छा क- स्ता है </div>	न = न	<div style="border: 1px solid black; padding: 5px; display: inline-block;"> नष्ट हुये वस्तुको शोचता है </div>
		शोचति =	

च = और

भावार्थ ॥

प्र० ॥ यदि ईश्वर ही सर्व जगत्का रचनेवाला माना जावेगा तब फिर किसी को दरिद्री किसी को धनी किसी को दुःखी किसीको सुखी न होना चाहिये पर ऐसा प्रत्यक्ष देखते हैं इस लिये ईश्वर में विषम दृष्टिआदिक दोष आते हैं ॥ उ० ॥ हे राजन् । ईश्वर में दोष तब आवै जब ईश्वर किसी कर्मों को रचै सो तो नहीं है क्योंकि गीतामें ही लिखा है ॥ न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकरय सृजति प्रभुः ॥ न कर्मफलसंयोगं स्थमाय स्तु प्रवर्तते ॥ १ ॥ ईश्वर जीवोंके कर्तृत्वपने को और कर्मों को नहीं रचता है और कर्मोंके फलको संयोगको भी नहीं रचता ये सब अनादिकाल के संस्कारों से होते हैं अर्थात् अनादि चले आते हैं इसकारण ईश्वर में कोई दोष नहीं आता है ॥ १ ॥ प्र० ॥ कर्म जड़ है

स्वतः फलको नहीं देसक्ता है और जीव असमर्थ है वह भी अपने आप फलको नहीं भोग सक्ता है तब फिर फलदाता ईश्वर में दोष क्यों नहीं आवेगा ॥ ७० ॥ ईश्वर में दोष तब आवै जय ईश्वर जीवों से शुभ अशुभ कर्म करावै और फिर उनको फल देवै या जीवों को उत्पन्न करके उनसे कर्म करावै ऐसा तो नहीं है क्योंकि प्रवाहरूप करके साराजगत् अनादि चलाआता है कोई भी नई वस्तु जीव या ईश्वर उत्पन्न नहीं करता है जैसे पृथिवी में सद्य वनस्पति के बीज रहते हैं परन्तु बिना सहकारी कारण सामग्री के अंकुरों को उत्पन्न नहीं करसक्ते हैं तैसे माया में सद्य प्रकार के पदार्थों के सूक्ष्मरूप से बीज घने रहते हैं परन्तु बिना सहकारी कारण के उत्पन्न नहीं होते हैं जिसकालमें उसकी उत्पत्ति की सामग्री जुड़जाती है उसी काल में वह उत्पन्न होआते हैं जैसे जुदा खेतों में जुदा २ बीज हर जोतकर किसान बो देता है यानी किसी में चना किसी में गेहूं किसी में मटरादिक बोताहै परन्तु बिना तरीके वे नहीं उत्पन्न होते हैं और पानी बिना बीजके फलको नहीं देसक्ते हैं जय खेत बोयाहो और समय पर वर्षा हो तब जाकर बीजों से आगे फल उत्पन्न होते हैं वर्षा सद्य

हैं उसके दुःख को देखकर राजाको दया उसपर होगी और दयाके बन्ध होकर राजा उसको छोड़देगा तब उसकी न्यायकारिता जाती रहैगी इसी तरह ईश्वर भी यदि पापियों को पापका फल जो दुःख है उसको नहीं देगा दया करके छोड़ देगा तब जगत् में कोई भी दुःखी नहीं रहेगा पर ऐसा तो नहीं देखते हैं क्योंकि संसारमें लाखों पुरुष बड़े २ असाध्यरोगों करके दुःखी हैं रात दिन ईश्वर २ पुकारते २ मरजाते हैं उनका दुःख दूर नहीं होता है लाखों अकाल में अन्न बिना मरजाते हैं और जीवकर्म के फल दुःखोंको भोगकर अष्टे होजाते हैं अनेक प्रकार के कर्म हैं अनेक प्रकार के उनके फल हैं बिना भोग के कर्म नहीं छूटते हैं इन्हीं युक्तियों से साचित होता है कि ईश्वर न्यायकारी है दयालु नहीं है ॥ प्र० ॥ फिर भक्तलोग ईश्वरकी भक्ति करनेके कालमें क्यों कहते हैं कि हे ईश्वर ! आप दयालु हैं कृपालु हैं न्यायकारी हैं ॥ उ० ॥ गुणारोप्य से बिना भक्ति और उपासना नहीं होसक्ती है जैसे मिथ्या बल्पीहुई मूर्तिके ध्यान करने से अर्थात् उस मूर्ति में चित्तके रोकने से चित्त में शांति और आनन्द होता है अर्थात् चित्त के निरोध से नित्य आत्ममुख की प्राप्ति होती है तैसेही मिथ्या.

दयालुतादिक गुणों को ईश्वर में आरोप्य करने से भी ईश्वर में प्रेम उत्पन्न होता है और उस प्रेम से पुरुषको आनन्द होता है उसी प्रेम का नाम भक्ति है दयालुतादिक गुणों का आरोप्य करना निरर्थक नहीं है वास्तव से तो ईश्वर गुणातीत है गुण मायाका कार्य है और माया के सम्बन्ध करके ईश्वर गुणों वाला कहा जाता है संसार में सब जीवों को आपदः और संपदः प्रारब्ध कर्मों के अनुसार ही प्राप्त होती है ऐसे निश्चय करनेवाला जो पुरुष है और भोगों की तृष्णा से जो रहित है और इन्द्रियादिक जिसके धरा हैं और किसी पदार्थ में जिसकी इच्छा नहीं है अर्थात् अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति का जो इच्छा नहीं करता है और प्राप्त वस्तु के नष्ट होने में जो शोक नहीं करता वही नित्य सुखको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

सुखदुःखजन्ममृत्युदेवादेवेति निश्च
यी ॥ साध्यादर्शानिरायामः कुर्वन्नपि न
लिप्यते ॥ पदच्छेदः ॥

सुखदुःखे जन्ममृत्यु देवान एव

इति निश्चयी साध्यादर्शी निरायास
कुर्वन् अपि न लिप्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
सुखदुःखे = सुख और	साध्यादर्शी = साध्यकाम
दुःख	कादेखनेवाला
जन्ममृत्यु = जन्म और	च = और
मरण	निरायासः = थमरहित
दैवात्पू = देवसे ही	कुर्वन् = कर्मको क
होता है	रता हुआ
इति = ऐसा	नलिप्यते = नहीं लि
निश्चयी = निश्चयक-	पायमान
रनेवाला	होता है

भावार्थ ॥

प्र० ॥ पूर्वोक्त निश्चय करनेवाले ज्ञानी भी तो कर्मों को करते हुये दिखाई पड़ते हैं उनको कर्मों का फल होगा या नहीं ॥ उ० ॥ जो यथार्थ बोधवाले हैं उनको कर्म का फल नहीं होगा क्योंकि प्रथम वे फल की कामना रहित होकर कर्मों को करते हैं दूसरे श्रेष्ठाचार के लिये कर्मों को करते हैं तीसरे वे कर्मों को देह इन्द्रियादिव

के धर्म जानने हैं अपने आत्माका धर्म नहीं मानने हैं
 चौथे अहंकारमें रहित होकर वे कर्मों को करने हैं इन्हीं
 चार हेतुओं करने के उनके कर्मोंका फल नहीं होता है ॥
 गीतामें भी कहा है ॥ यम्यनाहकृताभावो बुद्धिर्यस्य
 न लिप्यते । इत्यादि उद्धर्मा लोकाक्षरानिननिवर्ज्यते ।
 जिसका देह इन्द्रियादिकां में अहकृत भाव नहीं है
 याने मैं देह हूं या मेरा यह देह है इसप्रकार की जि-
 सकी भावना नहीं है और कर्तृत्व भांक्तृत्व बुद्धिभी
 जिसके लिपायमान नहीं होमन्ती है सो विद्वान् यदि
 प्राग्बधकर्म के बदय में शरीरादिकोंकरके नीनॉलो-
 कोंका बध भी करदेवे तौ भी उसके ऐसा करने का
 फल लिपायमान नहीं होता है जो इसप्रकार निश्चय
 करता है कि सुख दुःखादिक ये सब प्राग्बधकर्म के
 श से जीवों को होते हैं वह विद्वान् परिश्रममें रहित
 प्राग्बधवश से कर्मोंको करता हुआ उनके फलके साथ
 लिपायमान नहीं होता है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

चिन्तयाजायतेदुःखं नान्यथेहेतिनि
 ययी ॥ तथाहीनःसुखीशान्तः सर्वत्रग
 तस्त्वहः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

चिन्तया जायते दुःखम् न अन्यथा
इह इति निश्चयी तथा हीनः सुखी शान्तः
सर्वत्रगलितस्पृहः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
इह = इस संसार विषे
चिन्तया = चिन्तासे
दुःखम् = दुःख
जायते = उत्पन्नहो-
ताहै
अन्यथा = औरभकार से
न = नहीं
इति = ऐसा
निश्चयी = निश्चयकर-
ने वाला

अन्वयः शब्दार्थ
सुखी = सुखी और
शान्तः = शांत है
सर्वत्रग } सर्वत्र उ
लित } = की इच्छा
स्पृहः } गलित है
+ च = और
तथा = उससे याने
चिन्तासे
हीनः = रहिन है

भावार्थ ॥

प्र० ॥ यमोंको बतलाहुआ पुरुष उनके फलके ना

मे = मेरा	संप्राप्तः = प्राप्त होता हुआ
न = नहीं है	निश्चयी = निश्चयकरने वाला पुरुष
बोधोऽहम् = मैं ज्ञान स्वरूप हूँ	अकृतं } अकृत और कृतम् } = कृतकर्म को
इति = इसप्रकार	नस्मरति = नहीं स्मरण करता है
कैवल्यम् = विदेहमुक्ति को	

भावार्थ ॥

पूरोक्त साधनोंकरके युक्त जो ज्ञानी हैं उनकी दशाको दिखाते हैं ॥ ज्ञानवान् का ऐसा निश्चय होता है “ नाहं देहः ” मैं देह नहीं हूँ और “ न मे देहः ” मेरा यह देह नहीं है मैं नित्य बोधस्वरूप हूँ ॥ आत्मज्ञानपरके देहादिकों में दूर हो गया है अहं और मम अभिमान जिसका कर्तव्य अकर्तव्य जिस का बाकी नहीं रहा है और कृत अकृतका स्मरण भी जिसको नहीं है वही ज्ञानवान् जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ इस में एक दृष्टान्तको कहते हैं ॥ एक मंदिर में एक महात्मा रहते थे आत्मविद्याका अभ्यास करते २ उनकी अवस्था चंद्रगर्दधी और सर्वक्रिया शरीर

की उनकी छूटगईथीं कोई उनके मुख में डालता तब खाते कोई पानी पिलाता तब पीते एकस्थान में बैठे रहते न किसी से बोलते न चालते अपने आत्मानंद में ही मग्न रहते एकदिन दोपहर के समय उसी मंदिर में लड़के खेलते थे एक लड़केने कहा इन महात्माके पटपर याने स्थलपर चौपट बनाकर खेलें दूसरा लड़का चाकू ले आया और जब चाकूसे पटपर लकीरें खींचा तब उसमेंसे रुधिर बहने लगा महात्मा ज्यों के त्यों पड़ेरहे लड़के डर के मारे भागगये कोई एक पुरुष मंदिर में आया और उसने महात्मा के पटमें रुधिर बहने देखा तब उसने इधर उधरसे पूछा तो उसको मालूमहुआ कि यह लड़कोंने किया है तब दोचार आदमी मिलकर जर्जरहको बुलालाये जब जर्जरह आकर जखम को हाथ लगाकर मीनेलगा तब महात्माने न सीनेदिया जब थोड़े दिनों के बाद जखममें कीड़े पड़गये तब भी महात्माका चेहरा मिला न हुआ उसी नगरमें थोड़ीदूरपर एक मंदिर में एक और महात्मा रहते थे उन्होंने जब उनका हाल सुना तब एक आदमी की जवानी उन महात्मा को कहला भेजा कि भाई जिस मकान में आदमी रहता है उस मकानमें उसको शाद्व बुझाई देना अवश्य होना है

जब ऐसा संदेश उनको पहुंचा तब उन्होंने जवाब दिया महात्माजी से कहना कि जब आप तीर्थोंमें गये थे राह में बीसों धर्मशालों में आप रात्रीभर रहतेगये थे धर्मशाले अब गिरपड़े हैं अब जाकर उनकी मरम्मत करिये हमकोतो शरीररूपी धर्मशाला में आयु रूपी रात्री भर रहनाहै वह रात्री भी घ्यतीत होगई है अब इस शरीररूपी धर्मशाला की कौन मरम्मत करे इतना कहकर फिर चुप होगये थोड़ेदिनों के बाद उन्होंने शरीर का त्याग करदिया ऐसी दशा जीवन्मुक्तों की होती है ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तमहमेवेति निश्चयी ॥ निर्विकल्पः शुचिः शान्तः प्राप्ताप्राप्तविनिर्मुक्तः ॥ ७ ॥

पदव्येदः ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तम् अहम् एव इति निश्चयी निर्विकल्पः शुचिः शान्तः प्राप्ताप्राप्तविनिर्मुक्तः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्द
आवृत्त	ब्रह्मामे = लेखन पर्यन्त	शुचिः = शुद्ध	
स्वप्न		च = और	
दर्शनम्		शान्तः = शान्त	
अहम् एव = मेहीहूं		च = और	
इति = इसप्रकार		प्राप्ताप्ता	लाभा
निश्चयी = निश्चय		मन्त्रिनि	= लाभ र
	करनेवाला	वृत्तः	तपुरुष
निर्दिष्ट	= संकल्प	+ सुखी	सुखी होना
कल्पः	= गहन	भयति	

भा-नार्थ ॥

जीवन्मुक्तों के और लक्षणों को दिख रहा है प्र
मे लेकर सर्वव्यापी संपूर्ण जगत् मेमारी रूप में अर्थात्
मेही सर्वव्यापी ऐसा निश्चय करनेवाला जो प्रप
वही निर्विकल्प समाधीवाला जीवन्मुक्त २ १२ ।
अद्वैती मूल के सत्यत्व में भी रहित है १३ ।
चित्तवाला है और वही आत्मा आन विषय म ३५ ।
रहित है वही आनमेतत्त्ववाला है वही १४ । १५ ।
नेह करेही पूर्ण है ॥ ० ॥

मूलम् ॥

नानाश्चर्यमिदंविश्वं नकिञ्चिदि
तिनिश्चयी ॥ निर्वासनःस्फूर्तिमात्रोन
किञ्चिदिवशाम्यति ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

नानाश्चर्यम् इदम् विश्वम् न
किञ्चित् इति निश्चयी निर्वासनः स्फूर्-
तिमात्रः न किञ्चित् इव शाम्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थः

अन्वयः शब्दार्थः

इदम् = यह

निश्चयी = निश्चय

विश्वम् = संसार

करनेवाला

नाना } अनेक आ-
श्चर्य } = श्चर्य-
म् } वाला

निर्वासनः = वासना-
रहित

स्फूर्ति }
मात्रः } = बोधस्व-
रूपपुरुष

न किं }
चित् } = { कुछ नहीं
है याने
मिथ्या है

न किं }
चिदिव } = व्यवहार
रहित

शाम्यति = शान्तिको
प्राप्त होताहै

इति = इसप्रकार

बाध होजाताहै परन्तु बाधिता अनुवृत्ति करके घना रहता है और स्वप्न प्रपञ्च की निवृत्तिरूप बाध जाग्रत में होजाताहै क्योंकि उसका उपादानकारण जो अविद्याहै वह बनी रहतीहै कारणरूपी अविद्याके विद्यमान होने पर स्वप्नरूपी कार्यका नाश होजाता है इसीसे वह निवृत्तिरूप बाध है ॥ अज्ञान के अनेक अंशहैं जिस वेदान् के अंतःकरणरूपी अंश का जो अज्ञानका कार्य है नाश होजाता है उसी को अपने आत्माका माहात्कार होजाता है और बाकी के जीवोंको नहीं होताहै उन का जगत् भी घना रहताहै जैसे दश पुरुष सोये हुये अपने २ स्वप्नोंको देखते हैं उनमें से जिन की निद्रा दूरहोगई है उसी का स्वप्नप्रपञ्च नाश होताहै बाकी के पुरुषों का घना रहता है जिनपुरुष को ऐसा निश्चयहोगया है कि जगत् अपनी सत्ता में पून्य है ब्रह्मकी सत्ता परके सत्यवत भान होना है वास्तव से मिथ्या है वही पुरुष शान्ति को प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

इति श्रीवायूजालिमसिंहविरचिनायामष्टावस्त्रमीना
भाषाटीकार्याज्ञानाष्टकं नामैकादशोऽध्यायः

समाप्तम् ॥ ११ ॥

चिन्ता } सहः	चिन्ता के व्यापार को न सहारने वाला भया याने मान- सिक कर्म का त्याग करनेवाला हुआ	तस्मात् } = इसी का- एवम् } रण
		अहमेव = मैं ही आस्थितः = स्थित हूँ

क्ष।
तौ।
सो

भावार्थ ॥

व अथ द्वादशाष्टकप्रकरणका आरम्भ करते हैं पृथ्वी
: जो गुरुने शिष्य के प्रति ज्ञानाष्टक कहा है उसी को
अथ शिष्य अपने में दिखाता है ॥ शिष्य कहता है
हे गुरो ! प्रथम जो शरीरके कर्म यज्ञादि हैं उनका मैं
असहन करनेवाला हुआ याने शारीरिककर्म मेरे से
सहारे नहीं गये हैं फिर वाणी के कर्म जो निन्दा स्तुति
आदिक हैं उनका मैं असहन किया फिर मनके कर्म
जो जपादिक हैं उनका मैंने असहन किया अर्थात्
कायिक वाचिक मानसिक संपूर्ण कर्मोंको त्याग करके
मैं स्थित होताभया ॥ १ ॥

वारहवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

कायकृत्यासहःपूर्वं ततोवाग्विस्तर
सहः ॥ अथचिन्तासहस्तस्मादेवमेवाह
मास्थितः ॥१॥ पदच्छेदः ॥

कायकृत्यासहः पूर्वम् ततः वा
ग्विस्तरासहः अथ चिन्तासहः तस्मिन्
त एवम् एव अहम् आस्थितः ॥सी

अन्वयः शब्दार्थ

पूर्वम् = पहले

काय } शारीरिककर्म
कृत्या } का न सहार-
सहः } ने वालाभया
याने कायिक
कर्म का त्या-
गने वाला
हुआ

ततः = निमके पीछे

अन्वयः शब्दार्थ

वाणीके ज
प्यरूप कर्म
का न सहा-
रने वाला
भया याने
वाचिककर्म
का त्यागने
वालाहुआ

अथ = निमके पीछे

चिन्ता सहः } =	चिन्ता के व्यापार को न सहारने वाला भया जाने मानसिक कर्म का त्याग करनेवाला हुआ	तस्मात् } = इसी कारण एवम् }
		अहमएव = मैं ही आस्थितः = स्थित हूँ

दा।
ता।
सो

भावार्थ ॥

अथ द्वादशाष्टकप्रकरणका आरम्भ करते हैं पृथक् : जो गुरुने शिष्य के प्रति ज्ञानाष्टक कहा है उसी को अथ शिष्य अपने में दिखाता है ॥ शिष्य कहता है हे गुरो ! प्रथम जो शरीरके कर्म यज्ञादि हैं उनका मैं असहन करनेवाला हुआ जाने शारीरिककर्म मेरे से सहारे नहीं गये हैं फिर वाणी के कर्म जो निन्दा स्तुति आदिक हैं उनका मैं असहन किया फिर मनके कर्म जो जप्तादिक हैं उनका मैंने असहन किया अर्थात् वायिक वाचिक मानसिक सम्पूर्ण कर्मोंको त्याग करके मैं स्थित होताभया ॥ १ ॥

मृत्तम ॥

प्रीत्यभावेन शब्दादेर्दृश्यत्वेन च
 आत्मनः ॥ विज्ञेयैकाग्रहृदय एवमेवाहमा
 स्थितः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

प्रीत्यभावेन शब्दादेः अदृश्यत्वेन
 च आत्मनः विज्ञेयैकाग्रहृदय एवम्
 एव अहम आस्थितः ॥

अन्यथा शब्दायि अन्यथा शब्दायि

भावार्थ ॥

अब तीनप्रकार के कर्मोंके त्यागके हेतुको कहते हैं ॥ कायिक वाचिक मानसिक ये तीनोंकर्म मनकी एकाग्रता बिधे विक्षेपके करनेवाले हैं ॥ लोकांतर की प्राप्ति करनेवाले जो यज्ञादिक कर्म हैं उनसे शरीर में विक्षेप होता है शरीरमें विक्षेप होने से मनका निरोध नहीं होसकता है वाणीके कर्म जो निन्दा स्तुति आदिकहैं उनसे भी मनका निरोध नहीं होसकता है और मन के जो जपादिक कर्म हैं वेभी मनके विक्षेप करनेवाले हैं तीनों कर्मों में जो प्रीति है उसका त्यागकरना अवश्य है आत्मा अदृश्य है याने ध्यानादिकों का अविषय है आत्मा चेतन है मन बुद्धि आदिक सब अचेतन हैं याने जड़ हैं जड़ चेतनको विषय नहीं करसकता है इसवास्ते आत्मा के ध्यान करने की चिन्तारूपी विक्षेप भी मेरेको नहीं है संपूर्ण विक्षेपों से मैं रहित होकर अपने स्वरूप में ही स्थितहूँ ॥ २ ॥

मूलम् ॥

समाध्यासादिविच्छिप्तौ व्यवहारः समाधये ॥ एवं विलोक्य नियममेवमेवाहमास्थितः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

समाध्यासादिविशिष्टौ व्यवहारः
समाधये एवम् विलोक्य नियमम् ए-
वम् एव अहम् आस्थितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
समाध्यासादिवि- शिष्टौ	सम्यक्- ध्यासआ- दि करके विशेषहोने पर	एवम्नि- यमम्	ऐसे नियम को
समाधये	= समाधि के लिये	विलोक्य	= देखकरके
व्यवहारः	= व्यवहार है	एवम् एव	= समाधि रहित
		अहम्	= मैं
		आस्थितः	= स्थित है

भावार्थ ॥

प्र० ॥ किसी प्रकारके विशेष के न होनेपर भी
समाधिके नियमों कुछ मनआदिकों को व्यापार करना
पड़ता ॥ उ० ॥ कर्तृत्व भोक्तृत्वादि अनर्थों का
उत्पत्ति अव्यय है उसी प्रकारके विशेष होना है निग
मों के दूर करने के लिये समाधि ॥ समाधि-

दिकों का व्यापार होता है अन्यथा नहीं होता है ऐसे नियम को देखकरके प्रथम मैंने अध्यास को दूर करदिया है इसवास्ते समाधि के लिये भी मनादिकों के व्यापारकी कोई आवश्यकता नहीं है किंतु समाधि से रहित अपने आत्मानंद में मैंस्थित हूं ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

हेयोपादेयविरहादेवंहर्षविपादयोः ॥
अभावादद्यहेब्रह्मन्नेवमेवाहमास्थितः ४
पदच्छेदः ॥

हेयोपादेय विरहात् एवम् हर्षविपा-
दयोः अभावात् अद्य हे ब्रह्मन् एवम्
एव अहम् आस्थितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
हे ब्रह्मन्	= हे प्रभो	अभावात्	= अभाव से
हेयोपा	} त्याज्य और = ग्राह्यवस्तुके वियोगसे	अद्य	= अब
देयवि		अहम्	= मैं
रहात्		एवमेव	= जैसाहूं वै- साही
एवम्	= वैसेही	आस्थितः	= स्थित हूं
हर्षविपा	} हर्ष विपाद = के		
दयोः			

भावार्थ ॥

जनकजी फिर अपने अनुभवकों कहते हैं हे प्र
त्यागनेयोग्य और ग्रहण करनेयोग्य वस्तुका अ
होनेमें अर्थात् आत्मज्ञानकी प्राप्ति होनेमें न तो
को कुछत्याग करनेयोग्य रहाहै और न कुछ प्र
कने के योग्य रहाहै इसीवास्ते हर्ष विषादादिक
मेरेको नहींहैं क्योंकि हर्ष विषादादिक भी ग्रहण
त्याग करने सेही होने हैं इस वास्ते अथ मैं अ
स्वरूपमेंही स्थित हुआहू ॥ ४ ॥

मुत्तमम् ॥

आश्रमानाश्रमं ध्यानं चित्तमवीकृ
तवर्जनम् ॥ विकल्पं सममवीक्ष्य तं ग
वाहमास्थितः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

आश्रमानाश्रमम् ध्यानम् चित्तमवीकृ
तवर्जनम् विकल्पम् सममवीक्ष्य तं ग
वाहम् एव एव एवमास्थितः ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
+यत् = जो	एतैः = तिन सबसे
आश्रमा } आश्रम	उत्पन्नः = उत्पन्नहुये
नाथमम् } = और अ-	मम = अपने
नाथम है	विकल्पम् = विकल्पको
प्यानम् = प्यान है	वीक्ष्य = देखकरके
च = और	अदम् = में
चित्तस्वी } चित्तसेस्वी-	एवम् = इन तीनों
कृतवर्ज } = कारकियेव-	से रहित
नम् } स्तुकात्याग	आस्थितः = स्थितभया
है	है

भारार्थ ॥

शिष्य कहता है हे गुरु ! आश्रमोंके धर्मोंसे और उनके फलों के सम्बन्ध से भी मैं रहित हूँ अनाश्रमी जो त्यागी संन्यासी हूँ उनके धर्म जो दण्डादिकों का धारण करना है उनके सम्बन्धसे भी मैं रहित हूँ और योगियों के धर्म जो धारणा प्यानादिक हैं उनसे भी मैं रहित हूँ क्योंकि ये सब अज्ञानियों के लिये घने हैं मैं इन सबका साक्षी चिद्रूप हूँ ॥ यः शरीरेन्द्रियादिभ्यो विभक्तं सर्वसाक्षिणम् । परमार्थिकविज्ञानं मुखात्मानं च

स्वप्रभम् १ परंतत्त्वं विजानाति सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत् २
जो पुरुष शरीर इन्द्रियादिकों से भिन्न और शरीरादिकों
के साक्षी विज्ञानस्वरूप सुखस्वरूप स्वयंप्रकाश पर-
मतत्त्व अपने आत्मा को जान लेता है सो अतिव-
र्णाश्रमी कहलाता है ॥ सो मैं वर्णाश्रमी से अतीत सब
का साक्षी चिद्रूप हूं ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

कर्माऽनुष्ठानमज्ञानाद्यथैवोपरमस्त-
था ॥ बुध्वासम्यगिदंतत्त्वमेवमेवाहमा-
स्थितः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

कर्मानुष्ठानम् अज्ञानात् यथा एव
उपरमः तथा बुध्वा सम्यक् इदम्
तत्त्वम् एवमेव अहम् आस्थितः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यथा = जैसे

कर्मानु- कर्मका अ-
ष्ठानम् / = नुष्ठान

अज्ञानात् = अज्ञानमे है

अन्वयः शब्दार्थ

तथा = वैसेही

उपरमः = कर्मकात्या-
ग

एव = भी है

इदम् = इस तत्त्वको	एवमएव = कर्म करने
सम्यक् = भलीप्रकार	और कर्म न
बुद्ध्या = जानकरके	करने की इ-
अहम् = मैं	च्छाकोत्या-
	गके
	आस्थितः = स्थितहूँ

भावार्थ ॥

जनकजी कहते हैं कर्मोंका अनुष्ठान अज्ञानतासे होता है अर्थात् जिसको आत्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं है वही कर्मों का अनुष्ठान स्वर्गादि फल की प्राप्ति के लिये करता है और आत्मा के अज्ञान से ही पुरुष कर्म करने से उपराम भी होजाता है जिस को आत्मा का साक्षात्कार होगया है वह न कर्म करता है और न उनसे उपराम होता है प्रारब्धवशसे शरीरादिक कर्मोंको करता है वा नहीं करता है ऐसा जानकर ज्ञानी अपने नित्यानन्द स्वरूप में स्थित रहता है ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

अचिंत्यंचिन्त्यमानोपिचिन्तारूपं

भजत्यसौ ॥ त्यक्त्वा तद्भाव न तस्मादेवमे
वाहमास्थितः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

अचिंत्यम् चिन्त्यमानः अपि चिन्ता
रूपम् भजति असौ त्यक्त्वा तद्भावनम्
तस्मात् एवमएव अहम् आस्थितः ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
अचिंत्यम् = ब्रह्मको	तस्मात् = ताते
चिन्त्य } = चिंतन	तद्भाव } = उस चिन्ता
मानः } = करता हुआ	नम् } = की भावना
अपि = भी	को
असौ = यह पुरुष	त्यक्त्वा = त्याग करके
चिन्ता } = चिन्ताको	अहम् = मैं
रूपम् } = चिन्ताको	एवमएव = भावना
भजति = भावना क-	रहित
रता है	आस्थितः = स्थित हूं

भावार्थ ॥

• मक्ष अचिंत्य है याने मन घाणीकरके चिन्तन नहीं

किया जा सत्ता है पर जो आत्मावर्ग अचिन्त्यरूप चितवन का करना है उस चितवनकी चिताको भी त्याग करके मैं भावनारूपी चितवन से रहित अपने आत्मा में ही स्थित हूँ ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

एवमेवकृतं येन सकृतात्थोभवेद
सौ ॥ एवमेवस्वभावो यः सकृतात्थो
भवेदसौ ॥ = ॥

पदच्छेदः ॥

एवमूएव कृतम् येन सः कृतार्थः
भवेत् असौ एवमूएव स्वभावः यः सः
कृतार्थः भवेत् असौ ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
येन = जिस पुरुष		कृतम् = किया गया	
करके		है	
एवमूएव = क्रियासहित		सः असौ = वह पुरुष	
स्वरूपम् = स्वरूप		भी	
साधन } = साधनों के		कृतार्थः = कृतकृत्य	
वशात् } = वशसे		भवेत् = होता	

यः = जो	सः असौ = सो वह
एवमएव = { ऐसाही यानेस्व- तही	कृतार्थः = कृतकृत्य भवेत् = होता है किञ्च } = इस में व्यम् } = कहनाही क्या है
स्वभावः = स्वभाव वाला है	भावार्थ ॥

जिस पुरुष ने इसप्रकार संपूर्ण कियाओं से रहित अपने स्वरूपको जानलिया है वही कृतार्थ याने जीवन्मुक्त होता है ॥ प्र० ॥ जीवन्मुक्तका लक्षण क्या है ॥ उ० ॥ ब्रह्मैवाहमस्मीत्यपरोक्षज्ञानेन तिखिलकर्मबन्धविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तः ॥ मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकारके अपरोक्ष ज्ञान करके जो संपूर्ण कर्मों के बंधनों से छूट गया है वही जीवन्मुक्त है ॥ देहपातानंतरं मुक्तिः विदेहमुक्तिः ॥ शरीरके पात होने से अनंतर जो मुक्ति है उसका नाम विदेहमुक्ति है ॥ तात्पर्य यह है कि साधनों करके कम से जिसने संपूर्ण शरीर और इन्द्रियादिकों की किया का त्याग किया है और आत्मानंद को अनुभव किया है वही जीवन्मुक्त है ॥ ८ ॥

इति द्वादशप्रकरणसमाप्तम् १२ ॥

तेरहवा अध्याय ॥

मूलम् ॥

अकिंचनभवंस्वास्थ्यं कौपीनत्वेपि
दुर्लभम् ॥ त्यागादाने विहायास्मादहमा
सेयथासुखम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

अकिंचनभवम् स्वास्थ्यम् कौपीनत्वे
अपि दुर्लभम् त्यागादाने विहाय अस्मात्
अहम् आसे यथासुखम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अकिंचनभवम् } = { नहीं है
कुछपे-
से वि-
चारसे
पेदाहुई

स्वास्थ्यम् = जोचित्तकी
स्थिति है सो

अन्वयः शब्दार्थ

कौपीन
के धार
ण कर
ने पर

अपि = भी

दुर्लभम् = दुर्लभ है

अस्मात् = इस कार-	विहाय = छोड़ करके
ण से	अहम् = मैं
त्यागा } = त्याग और	यथासु { = सुखपूर्वक
दाने } = ग्रहणको	सम् {
	आसे = स्थित हूं

भावार्थ ॥

इस त्रयोदश प्रकरण में जीवन्मुक्त के फल को निरूपण करते हैं ॥ संपूर्ण विषयों में जो आसक्ति है उस आसक्ति के त्याग करने से जो निश्चयी स्थिरता छुड़ है वह स्थिरता कीर्पीनमात्र में भी आसक्ति करने में नहीं होती है ऐसी स्थिरता अतिदुर्लभ है इसी कारण से शिष्य कहता है कि पदार्थों के त्याग करने में और ग्रहण करने में जो आसक्ति है उससे भी त्यागकरके आत्मानन्द में स्थित हूं ॥ १ ॥

मूलम् ॥

कुत्रापि खेदः कायस्य जिह्वा कुत्रापि
मिवते ॥ मनः कुत्रापि त्यक्त्वा पुरुषार्थं
मन्यतः सुखम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

कुत्र अपि खेदः कायस्य जिह्वा
कुत्र अपि विद्यते मनः कुत्र अपि तत्
त्यक्त्वा पुरुषार्थे स्थितः सुखम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
कुत्रअपि = कहींतो		मनः = मन	
कायस्य = शरीरका		विद्यते = खेदकरताहै	
खेदः = दुःखहै		अतः = याते	
कुत्रअपि = कहीं		तत् = तीनोंको	
जिह्वा = वाणी		त्यक्त्वा = त्यागके	
विद्यते = दुःखी है		सुखम् = सुखपूर्वक	
कुत्रअपि = कहीं		स्थितः = स्थितहूँ	

भावार्थः ॥

शारीरक कर्मों में शरीर को खेद होता है अर्थात् शरीरके कर्म जो चलना फिरना सोना जागना लेना देना ग्रहण त्यागादिक हैं उनके करने में शरीर को ही खेद होता है और वाणी के कर्म जो सत्य मिथ्या भाषणादिक हैं उनके करने में जिह्वाको खेद होता है और मनके कर्म जो संकल्प विकल्पनादिक या

ध्यान धारणादिक हैं उनके करने में मन को संतुष्ट होता है इसलिये शिष्य कहता है उन तीनों के कर्मों को त्यागकरके मैं अपने आत्मानन्द में स्थित हूँ ॥ २ ॥

मूलम् ॥

कृतं किमपिनैवस्यादितिसंञ्चित्य
तत्त्वतः ॥ यदायत्कर्तुमायाति तत्कृ-
त्वासेयथासुखम् ॥ ३ ॥

पदञ्छेदः ॥

कृतम् किम् अपि न एव स्यात्
इति संञ्चित्य तत्त्वतः यदा यत्र
कर्तुम् आयाति तत् कृत्वा आसे यथा
सुखम् ॥

अन्यः	शब्दार्थ	अन्यः	शब्दार्थ
कृतम्	शरीरा- दि कर्म- क्रियादृ- शकम्	न आत्म- कृतम्	एव = वास्तवमे- वात्मा कर्म न- ही क्रिया दृश
किमपि = कुदृश			

स्यात् = होयहे

इति = ऐसा

तत्त्वतः = यथार्थ

संचिंत्य = विचारकर
के

यदा = जब

यत् = जो कुछ

कर्म

कर्तुम् = करनेको

आयानि = आपड़ता

हे

तत् = उसको

कृत्वा = करके

यथामुत्तम् = सुखपूर्वक

जासे = मेंस्थितहूँ

भावार्थ ॥

प्र० ॥ कायिक याचिक मानसिक कर्मों के त्याग होने से शरीरका भी त्याग होजायेगा क्योंकि बिना कर्मों के भोजनादिक क्रिया का त्याग होगा और बिना भोजन के शरीर रहेगा नहीं ॥ उ० ॥ शरीर और इन्द्रियादिकोंकरके कियाहुआ जो कर्म है वह वास्तव में आत्माकरके कियाहुआ नहीं होता है ॥ ऐसे चिंतन करके विद्वान् को जब शरीरादिकों के खान पानादिक कर्म करना पड़ता है तब वह अहंकार से रहित होकर उनकर्मों को करताहुआभी अपने मुख पर रूप में ही स्थित रहता है ॥ ३ ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
मे = मुझको	अहम् = मैं
स्थित्या = स्थितिसे	तिष्ठन् = स्थितहो-
गत्या = चलने से	ताहुआ
वा = या	गच्छन् = जाताहु-
शयनेन = शयन से	आ
अर्थानर्थो = अर्थअन-	स्वप्न = सोताहु-
र्थ	आ
न = कुछनहींहै	यथासुखम् = सुखपूर्वक
तस्मात् = इसकारण	आसे = स्थितहूं

भावार्थ ॥

शिष्य कहता है हे गुरो ! लौकिकव्यवहार जो चलना फिरना बैठना उठना आदिक है इसमें भी मेरी हानि लाभ कुछभी नहीं है क्योंकि लौकिकव्यवहार में भी मैं अभिमान से रहित हूं चाहे मैं सोया रहूं वा घैठा रहूं अथवा चलता फिरता रहूं इन सब क्रियाओं में भी मैं अपने आत्मानन्द में एकरस ज्योंका त्यों स्थित रहता हूं ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

स्वपतोनास्तिमेहानिः सिद्धिर्यत्नव
तो न वा ॥ नाशोऽह्नासौ विहायस्मादह
मासेयथासुखम् ॥ ६ ॥

पदञ्चेदः ॥

स्वपतः न अस्ति मे हानिः सिद्धिः
यत्नवतः न वा नाशोऽह्नासौ विहाय
अस्मात् अहम् आसे यथासुखम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मे = मुझ

स्वपतः = सोतेहुये

की

हानिः = हानि

न अस्ति = नहीं है

वा = और

न = न

मे = मुझ

यत्नवतः = यत्नकरते

हुये की

अन्वयः शब्दार्थ

सिद्धिः = सिद्धि है

अस्मात् = इसकारण

अहम् = मैं

नाशोऽह्नासौ } - हानि
सौ } - लाभको

विहाय = छोड़

करके

यथासुखम् - सुखपूर्वक

आसे = स्थित हूँ

अन्वय.	गच्छामि	अन्वय	गच्छामि
मं = मुक्तको		अहम = मैं	
स्थित्या = स्थितिमें		निष्ठन = स्थित	
गत्या = चलने में		तादृश	
वा = या		गच्छन = जाना	
शयनेन = शयन में		आ	
अर्थानर्थो = अर्थअन-		स्वप्न = सोना	
र्थ		आ	
न = कुल्लनहीने		यथामुचम = मुक्त	
तस्मान् = इसकागण		आमं = स्थित	

भावार्थ ॥

शिष्य कहता है हे गुरु ! लौकिकव्यवहार जो
लना फिना बैठना उठना आदिक है इसमें मैं
हानि लाभ कुलभी नहीं है क्योंकि लौकिकव्यवहार
भी मैं अभिमान में रहित हूँ चाहें मैं सोया रहूँ
बैठा रहूँ अथवा चलता फिरता रहूँ उन सब क्रिया
ओंमें भी मैं अपने आत्मानन्द में एकरस व्योका त
स्थित रहता हूँ ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

स्वपतोनास्तिमेहानिः सिद्धिर्यन्नव
तो न वा ॥ नाशोऽस्मासौ विहायास्मादह
मासेयथासुखम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

स्वपतः न अस्ति मे हानिः सिद्धिः
यन्नवतः न वा नाशोऽस्मासौ विहाय
अस्मात् अहम् आसे यथासुखम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मे = मुझ

स्वपतः = सोतेहुये

की

हानिः = हानि

नअस्ति = नहीं है

वा = और

न = न

मे = मुझ

यन्नवतः = यन्नकरते

हुये की

अन्वयः शब्दार्थ

सिद्धिः = सिद्धि है

अस्मात् = इसकारण

अहम् = मैं

नाशोऽस्मासौ } हानि
सौ } लाभको

विहाय = छोड़

करके

यथासुखम् = सुसुखपूर्वक

जाने = स्थिति

अन्वयः शब्दार्थ अन्वयः शब्दार्थ

मे = मुभक्तं

अश्म = मे

स्थित्या = स्थितिमे

निष्ठन = स्थितौ

गत्या = चलने मे

नादुःखा

वा = या

मन्दन = ज्ञानदुः

शयनेन = शयन मे

आ

अर्थानर्थो = अर्थअन-

स्वप्न = मे तद्

र्थ

आ

न = कुञ्चनहीने यस्य मुत्तम = मुत्तमं

तस्मात् = इमकागण

अमे = स्थित

भावा इति ॥

शिष्य कृता हे हे मुने ! शिष्याः यथा ॥ क-
 लना किम्ना वैटना उटना आदि कृताः शिष्याः यथा
 हानि लाभ कुटुम्बी नर्तक इति हे हे मुने !
 भी मे अनिमान मे गतिन च मे गतिन मे गति
 वेदा गृह अथवा चलता स्थित मे गतिन मे गति
 आम भी मे अपन आ-मानन मे गतिन मे गति
 स्थित रहताह ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

स्वपतोनास्तिमेहानिः सिद्धिर्यत्नव
तो न वा ॥ नाशोऽप्यसौ विहायास्मादह
मासे यथासुखम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

स्वपतः न अस्ति मे हानिः सिद्धिः
यत्नवतः न वा नाशोऽप्यसौ विहाय
अस्मात् अहम् आसे यथासुखम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मे = मुझ

स्वपतः = सोतेहुये
की

हानिः = हानि

न अस्ति = नहीं है

वा = और

न = न

मे = मुझ

यत्नवतः = यत्नकरते
हुये की

अन्वयः शब्दार्थ

सिद्धिः = सिद्धि है

अस्मात् = इसकारण

अहम् = मैं

नाशोऽप्यसौ } हानि
सौ } लाभको

विहाय = छोड़

करके

यथासुखम् = सुखपूर्वक

आसे = स्थित हूँ

मूलम् ॥

स्वपतोनास्तिमेहानिः सिद्धिर्यत्नव
तो न वा ॥ नाशोऽप्यसौ विहायास्मादह
मासेयथासुखम् ॥ ६ ॥

पदञ्चेदः ॥

स्वपतः न अस्ति मे हानिः सिद्धिः
यत्नवतः न वा नाशोऽप्यसौ विहाय
अस्मात् अहम् आसे यथासुखम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मे = मुझ

स्वपतः = सोतेहुये
की

हानिः = हानि

न अस्ति = नहीं है

वा = और

न = न

मे = मुझ

यत्नवतः = यत्नकरते
हुये की

अन्वयः शब्दार्थ

सिद्धिः = सिद्धि है

अस्मात् = इसकारण

अहम् = मैं

नाशोऽप्यसौ } हानि
सौ } लाभको

विहाय = छोड़
करके

यथासुखम् = सुखपूर्वक
आसे = स्थित हूँ

भावार्थ ॥

जनकजी कहते हैं यत्न से रहित होकर यदि मैं सोयाही रहूं तब भी मेरी कोई हानि नहीं है और यत्न विशेष करने से मेरेको किसी फल विशेष की सिद्धिभी नहीं होती है इस वास्ते मैं यत्न अयत्न में भी हर्ष शोक को त्याग करके सुखपूर्वक स्थित हूं क्योंकि यत्न अयत्नादिक सब देह इन्द्रियों के धर्म हैं मुझ आत्मा के नहीं हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

सुखादिरूपानियमं भावेष्वालोक्य
भूरिशः ॥ शुभाशुभेविहायास्मादह
मासेयथासुखम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

सुखादिरूपानियमम् भावेषु आलो-
क्य भूरिशः शुभाशुभे विहाय अस्मा-
त् अहम् आसे यथासुखम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
अस्मात् = इसलिये	आलोक्य = देखकरके
भावेपु = बहुतजन्मों	च = और
विषे	शुभागुमे = शुभ और
सुखादि { सुखादिरूप	अशुभको
रूपा = { के अनि-	विहाय = छोड़करके
नियमम् { त्यनाको	यथामुसम् = सुखपूर्वक
भूरिशः = बारंबार	आसे = स्थिरहं
भाषार्थ ॥	

जनकजी कहते हैं अनेक जन्मों में मनुष्य पशु आदिकों के जितने भाव याने जन्म होने हैं उन को जो सुख दुःखादिक प्राप्त होते हैं वे गद्य अनित्य हैं ऐसा बहुत स्थलोंमें देखा जाता है क्योंकि संसारमें गद्य देहधारियों को दुःख सुख बराबर देने रहते हैं कोई भी ऐसा देहधारी संसार में नहीं है जो म-
दैव बाल सुखी रहे किन्तु यत्किञ्चित् बाल सुख और बहुत बाल दुःख रहता है प्रथम तो जन्म-
काल या दुःख फिर दान्धादण्या में अनेक प्रकार के रोगादिकों करके अन्य दुःख होता है दुष्टारम्या में भोगों से अन्य रोगादिकों करके दुःख होता है

फिर स्त्री पुत्रादिकों में मोह से दुःखों के समूह उत्पन्न होते हैं फिर वृद्धावस्था तो दुःखों की खानिही है अनेक प्रकार के विषयजन्य सुखदुःखादिकों को अनित्य जानकर और उनके हेतु जो शुभाशुभ-कर्म हैं उनको त्याग करके अपने आत्मानन्द में स्थित हूं ॥ ७ ॥

इति श्री० त्रयोदशप्रकरणं समाप्तम् ॥ १३ ॥

चौदहवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

प्रकृत्या शून्यचित्तो यः प्रमादाद्भा-
वभावनः ॥ निद्रितो बोधित इव क्षी-
णसंसरणो हि सः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

प्रकृत्या शून्यचित्तः यः प्रमादात्
भावभावनः निद्रितः बोधितः इव क्षी-
णसंसरणः हि सः ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
यः = जो पुरुष	च = और
प्रकृत्या = स्वभाव से	निद्रितः = सोता हुआ
शून्यचित्तः = शून्यचि त्तवाला है	बोधितः = { जागते हुये इव = { के तुल्य है { ऐसा
च = पर	सः = वह पुरुष
प्रमादात् = प्रमादसे	क्षीणसं = { संसार से { रहित है
भावः = { विषयों का { सेवन करने { वाला है	
भावार्थ ॥	

इस प्रकरण में जनकजी अपनी शान्तिचतुष्टय को कहते हैं॥ जो पुरुष स्वभाव से विषयों में शून्य-चित्तवाला है अर्थात् अपने स्वभाव से चित्त के धर्म जो विषयों में राग द्वेष हैं उन से जो रहित है और प्रारब्धकर्मों के घसीभूत होकर विषयों का चिन्तन भी करता है और भोगता भी है उस को हानि लाभ कुछ नहीं है इसी में रथान्त को कहते हैं जैसे निद्रा के दशा जो पुरुष शून्यचित्त होकर सो रहा है उसको किसी पुरुष ने जगाकर उमसे कहा कि तू इन वान

पदच्छेदः ॥

क्व धनानि क्व मित्राणि क्व मे विषय-
दस्यवः क्व शास्त्रम् क्व च विज्ञानम्
यदा मे गलिता स्पृहा ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
यदा = जब		मित्राणि = मित्र हैं	
मे = मेरी		क्व = कहां	
स्पृहा = इच्छा		विषयदस्यवः = विषय-	
गलिता = गलित हो-		रूपी चोर हैं	
गई है		क्व = कहां	
तदा = तब		शास्त्रम् = शास्त्र है	
मे = मेरे को		च = और	
क्व = कहां		क्व = कहां	
धनानि = धन हैं		विज्ञानम् = ज्ञान है	
क्व = कहां			

भावार्थः ॥

जनकजी कहते हैं विषयों की भावना से शून्य-
चित्तवाला मैं हूँ मुझ पूर्णात्मदर्शी को जब विषय
भोगों की इच्छा नष्ट होगई है तब मेरा धन कहां है

नैराश्ये = आशारहित	मुक्तये = मुक्ति के
बन्धमोक्षे - बन्धके मोक्ष	लिये
होने पर	चिन्ता = चिन्ता
मम = मुझको	न = नहीं है

भावार्थ ॥

देह और इन्द्रियों का साक्षी पुरुष जो त्वंपदका अर्थ है और तत्पदका अर्थ जो परमात्मा ईश्वर है इन दोनोंके लक्ष्यार्थचेतनको तत्त्वमसि महावाक्य और भागत्यागलक्षणा करके साक्षात्कार करने से और बंध और मोक्षमें भी इच्छाके अभाव होनेसे मुक्तिके निमित्तभी विद्वान्को कोई चिन्ता बाकी नहीं रहती है ॥ प्र० ॥ महावाक्यका लक्षण क्या है और लक्षणाका अर्थ क्या है ॥ उ० ॥ वेदमें दो प्रकारके वाक्य हैं एक अवान्तर्वाक्य हैं दूसरे महावाक्य हैं दोनों के लक्षण को दिखाते हैं ॥ स्वरूपबोधकं वाक्यमवान्तर्वाक्यम् ॥ आत्माके स्वरूपका बोधक जो वाक्य है उसका नाम अवान्तर्वाक्य है जैसे "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" ॥ आत्मा ब्रह्मसद्रूप है ज्ञानस्वरूप है अनंतस्वरूप है ॥ यह वाक्य तो केवल आत्माके स्वरूपको ही बोधन करता है इसीवास्ते इसका नाम

ने एक गुवाल्से पूछा तेरा मकान कहाँ है उसने कहा ॥
 गङ्गायां घोषः ॥ मेरा मकान गङ्गामें है ॥ अब यहाँ
 पर शक्तिवृत्ति करके तो अर्थ नहीं बनता है क्यों
 कि गंगापदकी शक्ति प्रवाह में है याने गङ्गापद-
 का अर्थ जलका प्रवाह है उस प्रवाह में मकानका
 होना असंभव है इसवास्ते यहाँपर जो लक्षणा फर-
 के अर्थका घोष होता है उसको दिखाते हैं ॥ गङ्गा
 पदका शक्य प्रवाह है उसका सम्बन्ध तीरके साथ है
 इसवास्ते गङ्गा के तीरपर इसका ग्राम है गङ्गायां घोषः
 इसपदसे ऐसा घोष होता है और तात्पर्यानुपपत्ति
 लक्षणामें धीज है जिस अर्थ में वक्ताके तात्पर्य की
 असिद्धि हो यहाँपरही लक्षणा होती है गंगायां घोषः
 यहाँपर गङ्गा के प्रवाह में मेरा ग्राम है ऐसा वक्ताका
 तात्पर्य नहीं है क्योंकि ऐसा हो नहीं सक्त है इसीवास्ते ॥
 गङ्गायां घोषः ॥ में लक्षणा होती है ॥ अब लक्षणा
 के भेदको दिखलाते हैं ॥ लक्षणा तीनप्रकार की है ॥
 एक जहल्लक्षणा दूसरी अजहल्लक्षणा तीसरी ज-
 हवजहल्लक्षणा ॥ वष्यार्थमशेषतयापरित्यज्य तत्सम्ब-
 धिन्यर्थोत्तरेवृत्तिर्जहल्लक्षणा ॥ जहाँपर वाष्यार्थका म-
 मप्ररूपसे त्यागकरके तत्सम्बन्धी अर्थानरमें वृत्ति हो
 यहाँपर जहल्लक्षणा होती है जैसे ॥ गङ्गायां घोषः ॥

यहांपर गङ्गापदका वाच्यार्थ जो प्रवाह है उसका स
 मग्ररूपसे त्यागकरके तिसके साथ सम्बन्धवाला जो
 तीर है तिस तीरमें गङ्गापदकी लक्षणा होती है या
 गङ्गा के तीरपर इसका ग्राम है ॥ घोषनाम अहीरोंके
 ग्रामका है ॥ वाच्यार्थपरित्यागेन तत्सम्बन्धिन्यर्थो त
 वृत्तिरजहल्लक्षणा ॥ जहांपर वाच्यार्थका त्याग न क
 रके तिसके सम्बन्धवालेकाभी ग्रहणहो वहांपर अज
 हल्लक्षणा होती है ॥ किसी के गृहमें दण्डी संन्या
 सियोंका निमन्त्रण था वहांपर जाकर दण्डी लोग
 बाहर बैठे जब भोजन तैयारहुवा तब मालिक ने
 अपने नौकरसे कहा ॥ यष्टीप्रवेशय ॥ लाठीका भी
 तर प्रवेश कराओ ॥ अब यहांपर लाठी का भीतर
 प्रवेश तो बनसक्ता है परन्तु तिसमें वक्ताका तात्पर्य
 नहीं है किन्तु यष्टिधर के प्रवेश कराने में वक्ताका
 तात्पर्य है इसवास्ते यष्टीपदका वाच्यार्थ यष्टि है
 तिसका त्याग न करके तिसके साथ सम्बन्धवाला
 जो पुरुष है तिस पुरुष में जो लक्षणा करनी है इसी
 का नाम अजहल्लक्षणा है ॥ वाच्यार्थकदेशपरित्यागे
 नैकदेशवृत्तिर्जहदजहल्लक्षणा ॥ वाच्यार्थ के एकदेश
 को त्याग करके एकदेशका ग्रहणकरना जो है इसी
 का नाम जहत् अजहत् लक्षणा है जैसे ॥ तत्त्वमासि ॥

यहाँपर तत्पदका वाच्यार्थ सर्वज्ञत्वादिक गुणोंकरके युक्त ईश्वर चेतन है और त्वंपदका वाच्यार्थ अल्पज्ञत्वादिक गुणों करके युक्त जीव चेतन है तत् वह सर्वज्ञत्वादि गुणवाला ईश्वर त्वं तू अल्पज्ञत्वादि गुणवाला जीव ये जो दोनोंपदों के वाच्यार्थ हैं इनका अभेद नहीं होसکتा है पर दोनों का लक्ष्यार्थ जो गुणों से रहित केवल चेतन है उसी का अभेद होसکتा है सो अभेद जहद् अजहद् याने भागत्यागलक्षणा करकेही होता है तत्पद के वाच्यार्थ का जो एकदेश सर्वज्ञत्वादिक गुण हैं उनके त्याग करने से और त्वंपद के वाच्यार्थका जो एकदेश अल्पज्ञत्वादिक गुण हैं उनके भी त्याग करने से दोनों पदोंविषे एक जो लक्ष्यार्थचेतन स्थित है उसके ग्रहण करने से दोनों का याने ईश्वर और जीवका अभेद केवल चेतन में होता है सो जिस विद्वान् ने महावाक्यों करके और भागत्यागलक्षणा करके जीव ईश्वरकी अभेदता को जानलिया है वही मुक्त है उसको मुक्ति की कोई चिन्ता नहीं है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

अन्तर्विकल्पशून्यस्य वहिःस्वच्छ

मान् आजीवम् अपि जिज्ञासुः परः तत्र विमुह्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सत्त्व बुद्धिमान्	सत्त्वबुद्धि वाला पुरुष	परः	= असत्त्वबुद्धि वाला पुरुष
यथा तथोपदेशेन	{ जैसे तैसे याने थोड़े ही उपदेश से	आजीवम्	= जीवनपर्यन्त
कृतार्थः	= कृतार्थ	जिज्ञासुः	{ जिज्ञासुहो
भवति	= होता है	अपि	= { ताहुआभी
		तत्र	= निसविषे
		विमुह्यति	= मोहको प्राप्त होता है

भावार्थ ॥

अब तत्त्वोपदेशाविंशतिकं नाम पंचदशप्रकरण का आरम्भ करते हैं ॥ अष्टावक्रजी जनकजी की ज्ञानरियतिके लिये पुनः २ उपदेश करते हैं क्योंकि छांदोग्योपनिषद् में श्वेतकेतुके प्रति श्वेतकेतु के पिता ने नवभार आत्मतत्त्व का उपदेश किया है प्रथम ज्ञान के अधिकारी अनधिकारी को दिग्याते हैं ॥

उत्तम बुद्धिमान् शिष्य सामान्य उपदेश करके आत्मबोध को प्राप्त होजाता है याने कृतार्थ होजाता है मतयुग में केवल आँकार के उपदेश से उत्तम शिष्य कृतार्थ होगये हैं और निकृष्टबुद्धिवाला शिष्य मरणपर्यन्त उपदेश को सुनता रहता है पर उसको यथार्थबोध नहीं होता है जैसे विरोचन को ब्रह्मा ने अनेक बार उपदेश किया तो भी वह बोधको प्राप्त न हुआ संसार में तीनप्रकारके अधिकारी हैं एक तो उत्तम अधिकारी है जिसको एकबार गुरुके मुख से महावाक्य के श्रवण करने से बोध होजाता है दूसरा मध्यम अधिकारी है जिसको बारबार श्रवण मननादिकोंके करनेसे बोध होता है तीसरा निकृष्ट अधिकारी है जो चिरकालतक शास्त्रों को श्रवण और उपासना आदिकों को करके बोधको प्राप्त होता है मोक्षके अधिकारियों को दिखलाते हैं ॥ शान्तोदान्तः क्षमीशूरः सर्वेन्द्रियसमन्वितः ॥ असत्तत्रैव ब्रह्मज्ञानेच्छुः सदासाधुसमागमः ॥ १ ॥ साधुबुद्धिः सदाचारीयोभेदः सर्वदैवते ॥ आशापाशविनिर्मुक्तस्त्वेते मोक्षाधिकारिणः ॥ २ ॥ जो शान्त चित्त है जो इन्द्रियों को दमन करनेवाला है परंतु संपूर्ण इन्द्रियों करके युक्त है जो पदार्थों में आसक्तिसे रहित है जो ब्रह्मज्ञानकी इच्छावाला होकर

मान आर्जीवम् अपि जिज्ञासुः परः तत्र
विमुह्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मत्त्व	मन्वबुद्धि	परः	= असतबुद्धि
बुद्धिमान्	बाला पु- रुष		बाला पुरुष
यथा	जैमे तैम	आर्जीवम्	= जीवनप- र्यन्त
तथोप =	याने थोड़े	जिज्ञासुः	जिज्ञासुहो
देशेन	ही उपदेश	अपि =	ताहुआभी
	मे	तत्र	= निसन्निपे
कृतार्थः	= कृतार्थ	विमुह्यति	= मोहकोप्रा-
भवति	= होता है		सहोता है
भावार्थ ॥			

अब तत्त्वोपदेशत्रिंशतिकं नाम पंचदशप्रकरण
का आरम्भ करते हैं ॥ अष्टावक्रजी जनकजी की
ज्ञानस्थितिके लिये पुनः २ उपदेश करते हैं क्योंकि
छांदोग्योपनिषद् में श्वेतकेतुके प्रति श्वेतकेतु के पिता
ने नववार आत्मतत्त्व का उपदेश किया है प्र-
थम ज्ञान के अधिकारी अनधिकारी को दिखाते हैं ॥

भावार्थ ॥

हे प्रियदर्शन ! तत्त्वज्ञानके सिवाय किसी अन्य उपाय से विषयासक्ति वर नाश नहीं होता है ॥ यह जो आत्मबोध है यह बहुत घोलचालवाले चतुर को मूक करदेता है और जो बड़ा बुद्धिमान् अनेक प्रकार के ज्ञानकरके युक्त हो उसको जड़ बनादेता है और बड़े उद्योगी को क्रियासे रहित आलसी बना देता है मन पर अंतर आत्माकी तरफ प्रवाह होनेमे सब इन्द्रियाँ ढीली होजाती हैं याने अपने २ विषयों के ग्रहण करने में असमर्थ होजाती हैं यह तत्त्वबोधवाक्यादिक संपूर्ण इन्द्रियोंको बेकाम करदेता है इसीवास्ते विषयभोगों की कामनावाला पुरुष इसका आदर नहीं करता है यह आत्मज्ञान के साधनों से हजारों बोल भागता है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

नत्वंदेहोनतेदेहो भोक्ताकर्तान्वाम
वान् ॥ चिद्रूपोसिसदासाक्षीनिरपेक्षः
सुखंचर ॥ ४ ॥

लसम् ॥ करोति तत्त्वबोधोऽय
स्त्यक्तोबुभुक्षुभिः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

वाग्मिप्राज्ञमहोद्योगम् जनम् म
जडालसम् करोति तत्त्वबोधः अ
अतः त्यक्तः बुभुक्षुभिः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अयम् = यह

तत्त्वबोधः = तत्त्वज्ञान

वाग्मिप्रा
ज्ञमहोद्यां- = { अत्यन्त
बोलने
वालेप-
रिद्धतम-
हाउद्यो-
गी

जनम् = पुरुषको

मूकजडा = { गूंगाजड़
लसम् = { और आ-
लसी

अन्वयः शब्द

करोति = करता

अतः = इसीक

बुभुक्षुभिः = { भोगा
लापी
पों कर

अयम् = यह

त्यक्तः = { त्यागा
या ग
ह

भावार्थ ॥

हे प्रियदर्शन ! तत्त्वज्ञानके सिवाय किसी अन्य उपाय से विषयासक्ति का नाश नहीं होता है ॥ यह जो आत्मबोध है वह बहुत चोलचालवाले चतुर को झूक करदेता है और जो बड़ा बुद्धिमान् अनेक प्रकार के ज्ञानकरके युक्त हो उसको जड़ बनादेता है और बड़े उद्योगी को क्रियासे रहित आलसी बना देता है मनुष्य अंतर आत्माकी तरफ प्रवाह होनेसे सब इन्द्रियाँ ढीली होजाती हैं याने अपने २ विषयों के ग्रहण करने में असमर्थ होजाती हैं यह तत्त्वबोधवाक्यादिक संपूर्ण इन्द्रियोंको बेकाम करदेता है इसीवास्ते विषयभोगों की कामनावाला पुरुष इसका आदर नहीं करता है वह आत्मज्ञान के साधनों से हजारों कोस भागता है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

न त्वं देहो न ते देहो भोक्ता कर्तानवाभवान् ॥
चिद्रूपोसि सदा सार्त्तानिरपेक्षः
सुखंचर ॥ ४ ॥

अहंकारादिक है उनका तू अपनाका साक्षी मानकर
सुखपूर्वक विचर ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

रागद्वेषौ मनोधर्मौ न मनस्ते कदाच
न ॥ निर्विकल्पोसिवोधात्मानिर्विकारः
सुखं चर ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

रागद्वेषौ मनोधर्मौ न मनः ते
कदाचन निर्विकल्पः असि बोधात्मा
निर्विकारः सुखम् चर ॥

अन्वयः शब्दार्थः । अन्वयः शब्दार्थः

रागद्वेषौ = राग और
द्वेष । मनः = मन

मनोधर्मौ = मनके धर्म
हैं । कदाचन = कभी

न ते = तेरे नहीं हैं । न = नहीं
ते = तेरा है

त्वम् = तू

निर्विकल्पः	} = विकल्प-रहित	बोधात्मा = बोधस्वरूप
निर्विकारः = विकार-रहित		
		असि = है
भावार्थ ॥		

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! रागद्वेषादिक सद्य मनके धर्म हैं तुझ आत्माके धर्म नहीं हैं अन्यत्र भी कहा है ॥ शत्रुमित्रमुदासीनो भेदाः सर्वमनोगताः ॥ एकात्मत्वे कथं भेदः संभवेद्द्वैतदर्शनात् ॥ १ ॥ यह शत्रु है यह मित्र है शत्रुसे द्वेष मित्रसे राग और उदासीनता ये सद्य मनके ही धर्म हैं अद्वैतदर्शी की दृष्टि में भेद कहाँ होसکتा है द्वैतदर्शनसे ही भेद होता है ॥ १ ॥ हे जनक ! मनका संबंध कदापि तेरे साथ नहीं है मनके अभ्यास से तुम रागादिकों में अभ्यास मत करो ॥ प्र० ॥ राग द्वेष भी मुझ आत्माही का धर्म क्यों न हों ॥ उ० ॥ राग द्वेषादिक तुम्हारे धर्म नहीं होसक्ते हैं क्योंकि तुम ज्ञानस्वरूप हो यदि यह कहा जाय कि रागद्वेषादिक आत्माके ही धर्म हैं तो वे आत्मा के स्वाभाविक धर्म हैं या आगतुक धर्म हैं या आध्यासिक धर्म हैं ॥ वे स्वाभाविक धर्म तो हो नहीं सक्ते क्योंकि श्रुतियों में और स्मृतियों में आत्माको निर्धर्मक लिखा है ॥

लालरंग जो कि पुष्पका धर्म है प्रतीत होने लगता है और जब पुष्प दूर कर दिया जाता है तो लालरंग जो उस पत्थर में दिखाई देता था लोप हो जाता है आत्मा में अन्तःकरण के धर्म राग द्वेषादिक आध्यात्मिक हैं स्वाभाविक नहीं हैं इसलिये ये दूर हो सकते हैं ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥ विज्ञाय निरहंकारो निर्ममस्त्वमुखी भव ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

सर्वभूतेषु च आत्मानम् सर्वभूतानि च आत्मनि विज्ञाय निरहंकारः निर्ममः त्वम् सुखी भव ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सर्वभूतेषु = सर्वभूतोंमें		सर्वभूतानि = सर्वभूतों	
आत्मानम् = आत्मा		को	
को		आत्मनि = आत्मामें	
च = और		विज्ञाय = जानकरके	

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यत्र = जिसस्था-	नविषे	त्वमेव = तूहीहै	
इदम् = यह		नसंदेहः = इसमेंसंदेह	नहीं
विश्वम् = संसार		चिन्मूर्ते = हे चैतन्य-	रूप
तरंगाश्च = { समुद्रविषे	तरंगोंकी	विज्वरः = संताप-	रहित
सागरे	तरह	भव = हो	
स्फुरति = स्फुटताहै			
तत् = सो			

भावार्थ ॥

हे जनक ! जिस अधिष्ठान चेतन में यह सारा जगत् समुद्र में तरंगकी तरह अभिस स्फुरण हो रहा है वही चेतन तुम्हारा आत्मा है इसवास्ते हे जनक ! तुम विगतज्वर होकर ऐसा अनुभव करो मैं चैतन्यस्वरूप हूं संतापों से रहित हूं ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

श्रद्धत्स्वतातश्रद्धत्स्वनानमोहंकुरु

मोहोः ॥ ज्ञानस्वरूपो भगवान् आत्मा
त्वं प्रकृतेः परः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

अहम् नान् अहम् न अत्र
मोहम् कुरुष्व मोः ज्ञानम् आत्मा
भगवान् आत्मा त्वम् प्रकृतिः परः ॥

अन्वयः गन्धार्थं अन्वयः गन्धार्थं
तात = हे मोह्य त्वम् = त

मोः = हे प्रिय ज्ञानम् ज्ञानरूप
श्रद्धात्स्व । = श्रद्धाकर
श्रद्धात्स्व । भगवान् = देव

अत्र = इमविषे आत्मा = परमात्मा
मोहम् = मोह प्रकृतेः = प्रकृति

न कुरुष्व = मतकर परः = परं हे

भावार्थः ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे तात ! आत्मा ही । चद्रत्ना
में असंभावना और विपरीत भावनारूपी माहका न

प्राप्त हो क्योंकि आत्माज्ञानस्वरूप है और प्रकृति से भी परे है ॥ प्र० ॥ चित्पद का क्या अर्थ है और ज्ञानपद का क्या अर्थ है ॥ उ० ॥ साधनान्तरनैरपेक्षेण स्वयंप्रकाशमानतया इतरपदार्थावभासकं यत्तत्तत् ॥ जो अपने से भिन्न किसी और साधन की न अपेक्षा करके अपने प्रकाश से इतरपदार्थों को प्रकाश करे उसी का नाम चित् है ॥ अज्ञाननाशकत्वे सति स्वात्मबोधकत्वं ज्ञानम् ॥ जो अज्ञान को नाश करके अपने आत्मा के स्वरूप को प्रकाश उ-सका नाम आत्मज्ञान है ॥ अर्धप्रकाशो हि ज्ञानम् ॥ जो पदार्थ को प्रकाश करे उसी का नाम ज्ञान है सोई आत्मा चेतनरूप ज्ञानस्वरूप है ॥ अब जड़ चेतन के भेद को सुगमरीति से दिखलाते हैं ॥ जो अपने को जानै और अपने से भिन्न भी सव पदार्थों को जानै वही चेतन कहलाता है और जो अपने को न जानै और अपने से भिन्न भी किसी पदार्थ को न जानै वह जड़ कहलाता है सो आत्मा चेतन है क्योंकि अपने को जानता है और अपने से भिन्न सम्पूर्ण घटपटादिक जड़पदार्थों को भी जानता है इसी से आत्मा चेतन है और आत्मा से भिन्न सम्पूर्ण घटपटादिक पदार्थ जड़ हैं ॥ घटपटादिक अपने को नहीं

न = न	किम् = किसबा-
गन्ता = जाने	स्ते
वाला है	एनम् = इसके नि-
न = न	मित्त
आगन्ता = आनेवा-	अनुशो } तूशोचता
ला है	वसि } है

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! इन्द्रियादिकों करके संवेष्टित हुआ २ यह लिङ्गशरीर इस लोक में स्थित रहता है फिर कुछकाल पीछे लोकान्तरको चला जाता है फिर वहाँमें चला आता है आत्मा न लोकान्तरको न देशान्तर को जाता है न वहाँ से आता है और स्थूल शरीर जन्मता मरता है उसके धर्मोंको आत्मा में मानकर तू शोचकरनेके योग्य नहीं है क्योंकि वह तेरेविये अप्यस्त है अप्यस्त वस्तु के नाशहोने में तुम अधिष्ठान का नाश नहीं होसकता है ॥ प्र० ॥ आपने कहा है आत्मा लोकान्तरको नहीं जाना किन्तु लिङ्गशरीरही लोकान्तरको और देशान्तरको जाता है तो बिना आत्मा के लिङ्गशरीरका गमनागमन नहीं बनसकता है लिङ्गशरीर

जड़ है उसमें सुख दुःखका भोगना भी नहीं होसक्त॥
 उ० ॥ गमनागमन परिच्छिन्न वस्तु में होता है व्यापक
 में नहीं होता है लिंग शरीर परिच्छिन्न है इसवास्ते इसी
 का गमनागमन होता है आत्मा व्यापक है उसका
 गमनागमन नहीं होसक्त है जैसे जलसे भरे हुये
 घटका देशान्तर में लेजाना होसक्त है व्यापक आ-
 काशका नहीं क्योंकि आकाश तो सब जगह मौजूद है
 जहाँपर घट जावेगा वहाँपर आकाशका प्रतिबिम्ब उ-
 समें पड़ेगा तैसेही जहाँ जहाँ लिंगशरीर जाता है
 वहाँ वहाँ उसमें आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है
 उस चेतन के प्रतिबिम्बकरके युक्त अन्तःकरण सुख
 दुःखादिकों का भोक्ता कर्ता भी कहा जाता है उसमें
 शानशक्ति इच्छाशक्ति भी होजाती है उसी अन्तः-
 करण प्रतिबिम्बित चेतनका नामही जीव होजाता है
 जीवका लक्षण पञ्चदशीकार ने ऐसा किया है कि
 लिंगशरीर तिस में चेतनका प्रतिबिम्ब और तिसका
 आश्रय अधिष्ठान चेतन तीनों का नाम जीव है
 माया और माया में प्रतिबिम्ब और मायाका अ-
 धिष्ठान चेतन तीनोंका नाम ईश्वर है जीव ईश्वरका
 भेद उपाधियों करके है वास्तव में भेद नहीं है जैसे
 घटाकाश मट्टाकाशका उपाधिवृत्त भेद है तैसे जीव

ईश्वर काभी उपाधिकृत भेद है वास्तव से भेद नहीं
उपाधियाँ कल्पित हैं याने मिथ्या हैं चेतन नित्य है
सोई चेतन तुम्हारारूप आप है ऐसा जानकर तुम
शोक करने के योग्य नहींहो ॥ ९ ॥

मूलम् ॥

देहस्तिष्ठतुकल्पान्तंगच्छत्वद्यैववा
पुनः ॥ कवृद्धिःकचवाहानिस्तवचि
न्मात्ररूपिणः ॥ १० ॥

पदच्छेदः ॥

देहः तिष्ठतु कल्पान्तम् गच्छतु
अद्य एव वा पुनः क वृद्धिः क च
वा हानिः तव चिन्मात्ररूपिणः ॥

अन्वयः शब्दार्थ | अन्वयः शब्दार्थ

पुनः = चाहै

वा = चाहै

देहः = शरीर

अद्यएव = अभी

कल्पान्तम् = कल्प के
अन्ततक

गच्छतु = नाराहो

तिष्ठतु = स्थिर रहै

तव = तुम्ह

चिन्मात्र } चैतन्यरूप
 रूपिणः } = वालेका
 क = कहां
 वृद्धिः = वृद्धि है

च = और
 क = कहां
 हानिः = हानि है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! द्रष्टा द्रव्यसे पृथक् होता है यह नियम है देह द्रव्य है तुम द्रष्टा हो देह के साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है चहै यह स्थूलदेह तुम्हारा कल्पपर्यंत स्थिर रहे चहै अभी गिर जाय देह के स्थिर रहने से तुम्हारी स्थिति नहीं है और देह के गिर जाने से तुम्हारा नाश नहीं है देह की वृद्धि से तुम्हारी वृद्धि नहीं क्योंकि देह से तुम परे हो देह मिथ्या है तुम सत्य हो देह को भी तुम सत्ता स्फूर्ति देने वाले हो देह के भी तुम साक्षी हो ऐसा निश्चय करके तुम जीवन्मुक्त होकर के विचरो ॥ १० ॥

मूलम् ॥

त्वय्यतन्तमहांसो धौ विश्ववीचिः स्व
 भावतः ॥ उदेतु वास्तमाया तु न ते वृद्धि
 न वा क्षतिः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ॥

त्वयि अनन्तमहाम्भोधौ विश्वशीचिः
स्वभावतः उदेतु वा अस्तम् आयातु
न ते वृद्धिः न वा क्षतिः ॥

अन्वयः शब्दार्थः | अन्वयः शब्दार्थः
त्वयि=तुम्हें | वा = और

अनन्तमहाम्भोधौ = { अपार
महासमु-
द्रविषे } अस्तम् = अस्तमो
आयातु = आसहतेहें
परन्तु = परन्तु

विश्वशीचिः } विश्वरूप-
तरंग } ते = तेरी
वृद्धिः-न = न वृद्धिहै
स्वभावतः = स्वभावसे वा = और

उदेतु = उदयहोतेहैं । नक्षतिः = न नाशहै

भावार्थः ॥

हे जनक ! तुम्हारा स्वरूप अनन्त चिन्मात्ररूप
समुद्र है उसमें अविनाश और कलकल करने में यह
विश्वरूपी लहरी उत्पन्न नहीं है तुम्हारे स्वरूप में यह
विराटरूपी लहरी उदय हो अथवा अस्त हो तुम्हारी

कोई हानि लाभ नहीं है क्योंकि तुम अधिष्ठान चेतन हो अधिष्ठान को उसीविषे कल्पित वस्तु हानि नहीं करसक्ती है जो कभी हुई ही नहीं है वह दूसरे को क्या नुकसान करसक्ती है ॥ ११ ॥

मूलम् ॥

तातचिन्मात्ररूपोसि नतेभिन्नमिदं
जगत् ॥ अतःकस्यकथं कुत्र हेयोपादे-
यकल्पना ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ॥

तात चिन्मात्ररूपः असि न ते भि-
न्नम् इदम् जगत् अतः कस्य कथम्
कुत्र हेयोपादेयकल्पना ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
तात = हे तात		इदम् = यह	
चिन्मात्ररूपः = चैतन्य- रूप		जगत् = जगत्	
असि = तू है		भिन्नम् = तुझसेभिन्न	
ते = तेरा		न = नहीं है	
		अतः = इसलिये	

कस्य = किसकी	हेयो	त्याज्य और
कथम् = क्योंकर	पादेय =	ग्राह्य की
च = और	कल्पना	कल्पना है
कुत्र = कहां		

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे तात ! तुम चैतन्य स्वरूप हो तुम्हारे में हेय उपादेय याने त्याग और ग्रहण किसी वस्तुका भी नहीं घनता है क्योंकि तुम्हारे से भिन्न यह जगत् नहीं है कल्पित वस्तु अधिष्ठान से भिन्न नहीं होती है उसका हेय उपादेय कैसे हो सत्ता है १२ ॥ मूलम् ॥

एकस्मिन्नव्ययेशान्ते चिदाकाशेऽमलेत्वयि ॥ कुतोऽजन्मकुतःकर्म कुतो हंकारएवच ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ॥

एकस्मिन् अव्यये शान्ते चिदाकाशे
अमले त्वयि कुतः जन्म कुतः कर्म
कुतः अहंकारः एव च ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
एकस्मिन् = तुम्ह एक	जन्मकुतः = जन्म कहाँ है
अमले = निर्मल	कर्मकुतः = कर्म कहाँ है
अव्यये = अविनाशी	चएव = और
शान्ते = शान्त	
चिदाकाशो = चैतन्यरूप	अहंकारः (अहंकार
आकाशमें	कुतः =) कहाँ से है

भावार्थ ॥

हे जनक ! सजातीय विजातीय स्वगतभेद से शून्य नाशसे और विकार से रहित चिदाकाश निर्मल तुम्हारे स्वरूप में न जन्म है न मरण है न कोई कर्म है न अहंकार है ये सब द्वैत मंही होते हैं द्वैत तुम्हारा रूप तीनों काल में नहीं है इसीसे तुम्हारे जन्म और विकारके अभाव होनेसे कर्तृत्वादि-काँकाभी अभाव है शुद्धहोने से तुम्हारेमें अहंकार काभी अभाव है तुम्हारा स्वरूप ज्योंका त्यों एक रस है ॥ १३ ॥

मूलम् ॥

यस्त्वं पश्यसि तत्रैकस्त्वमेव प्रतिभा-

ससे ॥ किं एथ गभासते स्वर्णात्कटकां
गदनूपुरम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ॥

यत् त्वम् पश्यसि तत्र एकः त्वम्
एव प्रतिभासते किम् एथक् भासते
स्वर्णात् कटकांगदनूपुरम् ॥

अन्वयः शब्दार्थः

यत्=जिसको

त्वम्=तू

पश्यसि=देखताहै

तत्र=उसविषे

एकः=एक

त्वमेव=तूही

प्रतिभासते=भासताहै

अन्वयः शब्दार्थः

किम्=क्या

कटकांगद-
नूपुरम् } कंगनवा-
लु और
ध्वज

स्वर्णात्=सुवर्ण से

एथक्=एथक्

भासते=भासताहै

भारार्थः ॥

अष्टावकजी रहते हैं हे जनक ! जो २ कदर
तुम देखतेहो सो २ बारणरूपही है लादेन्य के

अष्टावक्र सटीक ।

प्रपाठक में अरुण ऋषिने अपने श्वेत-
 पुत्र के प्रति कहा है ॥ जब श्वेतकेतु वारह
 हुआ तब उद्दालक ने कहा हे श्वेतकेतो ! तू
 कुल में निवास करके सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन
 क्योंकि हमारे कुल में ऐसा कोई भी नहीं हुआ
 उसने ब्रह्मचर्य्य को धारण करके वेदोंका अ-
 न कियाहो ॥ पिताकी आज्ञाको पाकर श्वेत-
 गुरुके पास गया और ब्रह्मचर्य्य को धारणकरके
 वर्षतक वेदों का अध्ययन करतारहा ॥
 के सब वेदों को पढ़चुका तब गुरु की आज्ञा
 घरको चला रास्ते में उसके चित्त में अभिमान
 हुआ कि पिता मेरा मेरेबराबर विद्या में नहीं है
 प्रणाम करने की क्याजरूरत है वह जब घरमें
 तब उसने पिता को प्रणाम नहीं किया पिता जान
 इसको विद्याका मद हुआ है उस अहंकार को
 करना चाहिये पिताने कहा हे श्वेतकेतो ! तुमने
 उपदेशको भी गुरुसे श्रवण किया जिस उपदेश
 अभ्रुत भी श्रुत होजाताहै ज्ञात हो-
 है तब श्वेतकेतुने कहा हे श्वेतकेतो ! तुमने
 नहीं श्रवण किया कि
 तो वह है

विद्या वह जानते थे उन सबको मेरे प्रति कहा अथ
 आपही कृपा करके उस उपदेश को मेरे प्रति कहिये
 पुत्रको नम्र देखकर अरुणिऋषि उपदेश करते हैं ॥ यथा
 सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विशातं स्याद्वाचा-
 रम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ॥ १ ॥ हे
 सौम्य ! जैसे एक मृत्तिका के पिण्ड करके सम्पूर्ण मृ-
 त्तिकाके कार्य्य मृत्तिकारूप ही जानेजाते हैं क्योंकि
 कारण से कार्य्य का भेद नहीं होता है और जितना
 नामका विषय विकार है केवल घाणी का कथन-
 मात्रही है केवल मृत्तिकाही सत्य है ॥ १ ॥ यथा
 सौम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विशातं स्याद्वा-
 चारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् ॥ २ ॥
 हे सौम्य ! जैसे स्वर्ण के ज्ञान से जितने कटक घुण्ड-
 लादिक उस के कार्य्य हैं सब स्वर्णरूपही हैं क्योंकि
 कार्य्य कारण से भिन्न नहीं होता है और जितने
 स्वर्ण के कार्य्य नाम के विषय हैं वे सब घाणी
 करके कथनमात्र मिथ्या हैं उन सब विषे अनुगत
 स्वर्णही सत्य है ॥ २ ॥ इस तरह हे पुत्र ! अनेक श्रु-
 तिवाक्यों से जब तू बोधित होगा तब तुझको मान्य
 होगा कि तूही कार्य्य कारणरूप से स्थित है मूढ़ी
 सविदानन्द ज्ञानस्वरूप आत्मा है ॥ १४ ॥

मूलम् ॥

अयं सोहमयं नाहं विभागमिति संत्यज ॥ सर्वमात्मेति निश्चित्य निःसंकल्पः
सुखी भव १५ ॥

पदच्छेदः ॥

अयम् सः अहम् अयम् न अ-
हम् विभागम् इति संत्यज सर्वम्
आत्मा इति निश्चित्य निःसंकल्पः
सुखी भव ॥

अन्वयः शब्दार्थः

अयम् = यह

सः = वह

अहम् = मैं

अस्मि = हम

अयम् = यह

अहम् = मैं

न = नहीं हूँ

अन्वयः शब्दार्थः

इति = ऐसे

विभागम् = विभाग

को

सन्त्यज = छोड़ दे

सर्वम् = सब

आत्मा = आत्मा है

इति = गेमा		(गह्वर)
निश्चित्य = निश्चय	निःसङ्गः	(गहन)
वशमे		(गोता)
		(दुःख)
त्यम् = तू		सुधीभव = सुधी हो
भाषार्थ ॥		

अष्टायमजी वतने हैं हे जनक ! " यह वह है यह भी मैं यह नहीं है " हम भेदको त्याग कर " सर्वरूप आत्माही है " गेमा निश्चय कर यदि गेमा योगी तो सुधी होगा क्योंकि है नदरि है ही दुःख को भय होता है एक अद्वैत अपने आप के बिना को भी भय नहीं होता है है नदरि ही दुःखको त्याग है उसका त्याग करके तुम सुधी हो किने दुःख देशदिवे मिथन पुरुषको लक्षण आनन्द रहन है अह तब उसके अन्तःकरण में भुवर्ग भद्रता हसि जति उत्पन्न होती है अयोही भुवर्ग हसि उत्पन्न हुई तब ही वह भयको प्राप्त होता है किनेही आनन्द है हीने ही वह वादना है कि मैं और तु अन्तः हीने ही तब दुःख और भय उस को है नहीं तो तु हीने आनन्द रहन है । १५ ।

मूलम् ॥

तवैवाज्ञानतोविश्वं त्वमेकःपरमार्थ
तः ॥ त्वत्तोऽन्योनास्तिसंसारी नासंसा
रीचकश्चन ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ॥

तव एव अज्ञानतः विश्वम् त्वम्
एकः परमार्थतः त्वत्तः अन्यः न अ-
स्ति संसारी न असंमारी च कश्चन ॥

अन्वयः शब्दार्थ

तवएव = तेरेही

अज्ञानतः = अज्ञानसे

विश्वम् = विश्व है

च = और

परमार्थतः = परमार्थ से

त्वम् = तू

एकः = एकहै

अतः = इस लिये

त्वत्तः = तुझ से

अन्वयः शब्दार्थ

अन्यः = दूसरा

कश्चन = कोई

नसंसारी = नसंसारी

जीव

अस्ति = है

न असं = { न असं-
सारी ई-
श्वर

अस्ति = है

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! तुम्हारेही अज्ञान से यह जगत् प्रतीत होता है और तुम्हारेही आत्मज्ञान से यह नाश होता है ॥ प्रश्न ॥ अज्ञान का स्वरूप क्या है और ज्ञान का स्वरूप क्या है ॥ उत्तर ॥ अनादिभावत्वेन तिष्ठाननिवर्त्यत्वमज्ञानम् ॥ जो अनादि हो और भावरूप हो याने अभावरूप न हो और ज्ञान बरके निवृत्त होजावे उसी का नाम अज्ञान है ॥ १ ॥ अज्ञाननाशकत्वे सति स्वात्मबोधकत्वं ज्ञानम् ॥ जो अज्ञानका नाशक हो और अपने आत्मा के स्वरूप का बोधक हो उसीका नाम ज्ञान है ॥ २ ॥ ज्ञान के उदय होने पर परमार्थ से हे शिष्य ! तुम एकही हो संसारी अतंसारी भेद तेरेबिपे नहीं है ॥ १६ ॥

सूलम् ॥

भ्रान्तिमात्रमिदं विश्वं न किञ्चिदिति निश्चयी ॥ निर्वासनः स्फूर्तिमात्रो न किञ्चिदिव शाम्यति ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ॥

भ्रान्तिमात्रम् इदम् विश्वम् न

किञ्चित् इति निश्चयी निर्वासनः स्फूर्तिमात्रः न किञ्चित् इव शाम्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

इदम् = यह

विश्वम् = संसार

भ्रान्ति } = भ्रान्ति
मात्रम् } = मात्र है

न = और

न किञ्चित् = कुछ नहीं
है

इति = ऐसा

निश्चयी = { निश्चय
करनेवा-
ला पुरुष

अन्वयः शब्दार्थ

निर्वासनः = वासनार-
हित

स्फूर्तिमात्रः = स्फूर्तिमा-
त्र है

न किञ्चित् इव } = { कुछ न
हुये की
नाई या-
ने वास-
नारहित
होकर

शाम्यति = शान्ति को
प्राप्त होता है

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! यह जगत् सब भ्रान्ति करके स्थित हो रहा है इस जगत् की अपनी सत्ता किञ्चिन्मात्र भी नहीं है ऐसे निश्चय करके तुम वासना में रहित होकर आनन्दपूर्वक संसार में विचरो ॥ १७ ॥

मूलम् ॥

एकएवभवांभोधावासीदस्तिभविष्य
ति ॥ नतेवन्धोस्तिमोक्षोवाकृतकृत्यः
सुखंचर ॥ १८ ॥

पदव्येदः ॥

एकः एव भवांभोधौ आसीत् अस्ति
भविष्यति न ते वन्धः अस्ति मोक्षः वा
कृतकृत्यः सुखम् चर ॥

अन्वयः शब्दार्थ
भवांभोधौ = संसाररूपी
समुद्र में

एकः = एक

आसीत् = तूहीहोता
भया

च = और

अस्ति = तूही है

+च = और

अन्वयः शब्दार्थ
भविष्यति = तूहीहोवें-
गा

ते = तेय

बंधः = बंध

वा = और

मोक्षः = मोक्ष

न = नहीं है

त्वम् = तू

किञ्चित् इति निश्चयी निर्वासनः स्फु-
र्तिमात्रः न किञ्चित् इव शाम्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

इदम् = यह

विश्वम् = संसार

प्रान्ति } = प्रान्ति
मात्रम् } = मात्र है

च = और

न किञ्चित् = कुछ नहीं
है

इति = ऐसा

निश्चयी = { निश्चय
करनेवा-
ला पुरुष

अन्वयः शब्दार्थ

निर्वासनः = वासनार-

हित

स्फूर्तिमात्रः = स्फूर्तिमा-

त्र है

न किञ्चित्

तइव

{ कुछ न

हुये की

नाई या-

ने वास-

नारहित

होकर

शाम्यति = शान्ति को

प्राप्त होना है

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! यह जगत् मय ध्वान्ति करके स्थित
होगा है इस जगत् की अपनी मत्ता किञ्चिन्मात्र भी
नहीं है ऐसे निश्चय करके तुम योगना में रहित
होकर आनन्दपूर्वक गंगा में विनसे ॥ १० ॥

मूलम् ॥

एकएवभवांभोधावासीदस्तिभविष्य
ति ॥ नतेबन्धोस्तिमोक्षोवाकृतकृत्यः
सुखंचर ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ॥

एकः एव भवांभोधौ आसीत् अस्ति
भविष्यति न ते बन्धः अस्ति मोक्षः वा
कृतकृत्यः सुखम् चर ॥

अन्वयः शब्दार्थ

भवांभोधौ = संसाररूपी
समुद्र में

एकः = एक

आसीत् = तूहीहोता

भया

च = और

अस्ति = तूही है

+च = और

अन्वयः शब्दार्थ

भविष्यति = तूहीहोवै-
गा

ते = तेरा

बंधः = बंध

वा = और

मोक्षः = मोक्ष

न = नहींहै

त्वम् = तू

कृत्यः = कृतार्थहो

सुखम् = सुखपूर्वक

तादृशा

चर = विचर

भवार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! इम मंसाररूपी
 द्रु में तू सदा अकेला एक आपही था और रहै-
 ॥ प्रदना ॥ जब मैंही भवसागर में था और गूँगा तब
 सुखको मोक्ष कदापि नहीं होगा सदैव काल बन्ध
 में रहूँगा ॥ उत्तर ॥ हे पुत्र ! अभी तक तुम अपने
 को न जानकर बन्ध और मोक्षके एरफेरमें पड़ेथे
 तुम अपने को जान गयेहो भवसागर में अनु-
 रूप करके याने अधिष्ठान असंग साक्षी होकरके
 ही स्थित थे और रहोगे क्योंकि तुम्हारेमें ही यह
 रज्जुसर्पवत् कल्पित है अब न तेरे में बन्ध
 और न मोक्ष है तू कृतकृत्य है ॥ १८ ॥

मूलम् ॥

मासंकल्पविकल्पाभ्यांचित्तंक्षोभय
 न्मय ॥ उपशाम्यसुखंतिष्ठस्वात्म
 नन्दविग्रहे ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ॥

मा संकल्पविकल्पाभ्याम् चित्तम्
क्षोभय चिन्मय उपशाम्य सुखम् तिष्ठ
स्वात्मनि आनन्दविग्रहे ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
चिन्मय = हे चैतन्य- स्वरूप !	उपशाम्य = मनकोशा- न्तकरके
संकल्प विकल्पा भ्याम् } = संकल्पवि कल्पोसे	आनन्द } = आनन्दपू- विग्रहे } रित
चित्तम् = चित्तको + त्वम् = तू	स्वात्मनि = अपनेस्व- रूपमें
माक्षोभय = मतक्षोभि- तकर	सुखम् = सुखपूर्वक तिष्ठ = स्थितहो

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं ॥ हे चैतन्यस्वरूप ! सं-
कल्प और विकल्पो करके अपने चित्त को क्षोभ न
करो ॥ संकल्प विकल्प से तुम रहित होकर अपने
आनन्दस्वरूप में स्थित हो ॥ १९ ॥

मूलम् ॥

त्यजैव ध्यानं सर्वत्र मा किंचिद् हृदि
धारय ॥ आत्मा त्वम् मुक्त एवासि किं वि-
मृश्य करिष्यसि ॥ २० ॥

पदच्छेदः ॥

त्यज एव ध्यानम् सर्वत्र मा किं-
चित् हृदि धारय आत्मा त्वम् मुक्तः
एव असि किम् विमृश्य करिष्यसि ॥

अन्वयः शब्दार्थः
सर्वत्र एव = सबही ज-
गह
ध्यानम् = मनन को
त्यज = त्याग
हृदि = हृदयमें
किंचित् = कुछ
मा धारय = मत धर
त्वम् = तू

अन्वयः शब्दार्थः
आत्मा }
मुक्तः } = { आत्मा
एव } { मुक्तरूप
ही
असि = है
+ त्वम् = तू
विमृश्य = विचार
करके
किम् = क्या
करिष्यसि = करैगा

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ हे गुरो ! अपने आनन्दस्वरूप आत्मा में स्थिर होना बिना ध्यान के घनता नहीं है इस वास्ते ध्यान करना चाहिये ॥ उत्तर ॥ ध्यानका भी त्याग कर क्योंकि ध्यान भी अज्ञानी के लिये पड़ा है जिसको आत्मा का बोध नहीं हुआ है भेदवादी है वही ध्यान करे ध्यान करना भी मनकाही धर्म है तू साक्षी आत्मा है अनात्मा नहीं है सदा मुक्तरूप है ध्यान और विचार से तेरे को क्या फल होगा तू इन से रहित है ॥ २० ॥

इति श्रीअष्टावक्रगीतायां सत्त्वोपदेशविंशतिनामकं
पञ्चदशप्रकरणसमाप्तम् ॥ १५ ॥

सोलहवा अध्याय ॥

मूलम् ॥

आचक्ष्वशृणुवातात नानाशान्त्राण्य
नेकशः ॥ तथापिनतवस्वास्थ्यं सर्वं
विस्मरणादृते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

आचक्ष्व शृणु वा तात नानाशा-
स्त्राणि अनेकशः तथा अपि न तव
स्वास्थ्यम् सर्वविस्मरणात् ऋते ॥

अन्वयः शब्दार्थ | अन्वयः शब्दार्थ

तात = हे प्रिय !

शृणु = सुन

अनेकशः = बहुत प्र-

तथा अपि = परन्तु

कार से

ऋते = विना

नानाशा } अनेकशा-
स्त्राणि } = त्यों को

सर्ववि { = सबके वि
स्मरणात् { स्मरण से

आचक्ष्व = कह

तव = तुम्ह को

वा = या

स्वास्थ्यम् = शान्ति

न = न होगी

भावार्थ ॥

तत्त्वज्ञान करके सम्पूर्ण प्रपञ्च और तृष्णानाशही
का नाम मुक्ति है अब इसी वार्त्ताको आगे वर्णन करते
हैं ॥ अष्टावक्रजी कहते हैं हे तात ! यहै तुम अनेक
शस्त्रों को अनेक बार शिष्यों के प्रति पठन कराओ
अथवा गुरु से पठन करो पर विना सबके विस्मरण

करने से तुम्हारा कल्याण कदापि नहीं होवैगा ॥ पञ्चदशी में भी कहा है ॥ ग्रन्थमभ्यस्यमेधावी विचार्य्यचपुनःपुनः ॥ पटालमिवधान्यार्थं त्यजेद्ग्रन्थमशेषतः ॥ १ ॥ बुद्धिमान् पुरुष प्रथम ग्रन्थों का अभ्यास करै फिर पुनः पुनः उनका विचार करै पदचात् जैसे चावल का अर्धीपुरुष चावलों को निकाललेताहै और पराली को फेंक देता है तैमेही वह भी जीवन्मुक्ति के सुखके लिये अभ्यास के पदचात् सबका त्याग कर देवै ॥ प्रश्न ॥ सुपुति में सर्व्य पुरुषों को स्वतःही विस्मरण होजाता है यदि सर्व्य वस्तुओं के विस्मरण करनेसे ही मुक्ति होती है तो सब जीवों को मोक्ष होजाना चाहिये पर ऐसा तो नहीं देखते हैं इसी से सिद्ध होता है कि सर्व्य का विस्मरण व्यर्थ है ॥ उत्तर ॥ सुपुति में यद्यपि विस्मरण होजाता है तथापि सबका विस्मरण नहीं होताहै क्योंकि सर्व्य के अन्तर्गत अज्ञान है सो अज्ञान सुपुति में घना रहता है और जीवन्मुक्त को तो अज्ञान के सहित सम्पूर्ण अप्यस्त वस्तुओं का विस्मरण होजाता है इस वास्ते जीवन्मुक्तिको इच्छा वाले को सर्व्य वस्तुओं का विस्मरण करना ही उचित है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

भोगं कर्म समाधिं वा कुरु विज्ञ तथापि
ते ॥ चित्तं निरस्तं सर्वाशमत्यर्थं रोचयिष्यति ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

भोगम् कर्म समाधिम् वा कुरु
विज्ञ तथा अपि ते चित्तम् निरस्त-
सर्वाशम् अत्यर्थम् रोचयिष्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

विज्ञ = हे ज्ञानस्वरूप !

भोगम् = भोग

कर्म = कर्म

वा = और

समाधिम् = समाधिको

कुरु = कर

तथापि = परन्तु

अन्वयः शब्दार्थ

ते = तेरा

चित्तम् = चित्त

निरस्त = { मव आशा से

सर्वा - { रहित होना

शम् { हुआ भी

त्वाम् = तुम्हको

अत्यर्थम् = अत्यन्त

रोचयिष्यति = लोभादिगा

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे पुत्र ! चाहे तू भोगों को भोग चाहे तू कर्मोंको कर चाहे तू समाधि को लगा आत्मज्ञान के प्रभाव करके सर्व आशा से रहित हुआ २ तेरा चित्त शान्त रहेगा अर्थात् आशा से रहित होकर जो जो कर्म तू करेगा कोई भी तेरे को बन्धन का हेतु न होगा क्योंकि आशाही बंधन का हेतु है इस लिये सर्व से निराश होकर सर्व में आसक्ति से रहित होकर जय विचरेगा तब तू सुखी होवेगा ॥ २ ॥

मूलम् ॥

आयासात्सकलोदुःखी नैनंजानाति
कश्चन ॥ अनेनैवोपदेशेन धन्यःप्राप्नो
तिनिर्वृतिम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

आयासात् सकलः दुःखी न एनम्
जानाति कश्चन अनेन एव उपदेशेन
धन्यः प्राप्नोति निर्वृतिम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
आयासात् = परिश्रमसे	अनेनएव = इसही
सकलः = सबमनुष्य	उपदेशेन = उपदेशसे
दुःखी = दुःखी हैं	धन्यः = सुकृती पुरुष
एनम् = इसको	निर्वृतिम् = परमसुखको
कश्चन = कोई	प्राप्नोति = प्राप्त होता है
न जानाति = नहीं जानता है	

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! सम्पूर्णलोक शरीर के निर्व्वाह करने में ही दुःखी होते हैं अर्थात् शरीरनिर्व्वाहार्थ परिश्रम करनेमें ही दुःख उठाते हैं परन्तु इस बातको नहीं जानते हैं कि परिश्रमही दुःखका हेतु है इसलिये महापुरुष शरीर के निर्व्वाह के लिये अतिपरिश्रम नहीं करते हैं क्योंकि शरीर की रक्षा प्रारब्धकर्म आपही करलेता है यत्न की कोई ज़रूरत नहीं होती है ऐसा जान कर वे सदैव सुखी रहते हैं ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

व्यापारेखिद्यतेयस्तु निमेपोन्मेप

योरपि ॥ तस्यालस्यधुरीणस्य सुखं ना
न्यस्यकस्यचित् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

व्यापारे खिद्यते यः तु निमेषोन्ने-
पयोः अपि तस्य आलस्यधुरीणस्य
सुखम् न अन्यस्य कस्यचित् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यः = जो

निमेषो = { नेत्रके द-
न्नेपयोः = { कने और
{ सोलने के

व्यापारे = व्यापार से

खिद्यते = खेदको प्राप्त
होता है

तस्य = उस

अन्वयः शब्दार्थ

आलस्य = { आलसी
धुरीणस्य = { धुरीणको

अपि = ही

सुखम् = सुख है

अन्यस्य = दूसरे

कस्यचित् = किसी को

न = नहीं है

भावार्थ ॥

व्यापार में अनासक्ति ही सुखका हेतु है ॥ जो
ज्ञानवान् जीवन्मुक्त पुरुष हैं उन को नेत्रके रोलने

और मृदने में भी खेद होता है जो ऐसा आलसी पुरुष है और सम्पूर्ण व्यापारों से रहित है वही सुख को प्राप्त होता है व्यापारवान् को कभी भी सुख नहीं होता है संसार में जितनहीं पुरुष को व्यवहार विषे अधिक प्रवृत्ति है उतनहीं उसको दुःख अधिक है और जितनहीं व्यवहारप्रवृत्ति कम है उतनहीं उसको सुख अधिक है क्योंकि वृत्ति की वृद्धि दुःख की प्राप्ति और वृत्ति की निवृत्ति सुख की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

इदं कृतं मिदं नेति द्वन्द्वैर्मुक्तं यदा मनः ॥ धर्मार्थकाममोक्षेषु निरपेक्षं तदा भवेत् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

इदम् कृतम् इदम् न इति द्वन्द्वैः मुक्तम् यदा मनः धर्मार्थकाममोक्षेषु निरपेक्षम् तदा भवेत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
इदम् = यह	मुक्तम् = मुक्तहो
कृतम् = किया गया है	तदा = तब
इदम् = { यह नहीं	सः = वह
न कृतम् = { किया गया	धर्मार्थ = { धर्म अर्थ
है	काम = { काम मो-
इति = ऐसे	मोक्षेषु { क्ष विपे
द्वन्द्वेः = द्वन्द्व से	निरपेक्षम् = इच्छारहित
यदा मनः = जब मन	भवेत् = होता है

भावार्थ ॥

सम्पूर्ण तृष्णा के नाश होने पर शीतोष्णादि-
जन्य सुख दुःख भी पुरुष को नहीं सता सकते हैं
इसी वार्त्ता को अद्य कहते हैं ॥ इस कामको मैंने कर
लिया है और इस कामको मैंने नहीं किया है इस
तरह के द्वन्द्वों से जब पुरुष का मन शून्य होजाता
है तब वह धर्म अर्थ काम मोक्ष की इच्छा नहीं
करता है ऐसा जो सम्पूर्णद्वन्द्वों से और सब इच्छा से
रहित पुरुष है वही जीवन्मुक्ति के सुखको प्राप्त होता
है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

विरक्तो विषयद्वेष्टा रागी विषयलोलुपः ॥ ग्रहमोक्षविहीनस्तु न विरक्तो न रागवान् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

विरक्तः विषयद्वेष्टा रागी विषयलोलुपः ग्रहमोक्षविहीनः तु न विरक्तः न रागवान् ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
विषयद्वेष्टा = विषयका	द्वेष्टा	ग्रह	ग्रहण और
		मोक्ष =	त्यागमहीन
विरक्तः = विरक्तहे		विहीनः	पुरुष
विषयलोलुपः = विषय		न विरक्तः = न विरक्तहे	
का लोभी		न रागवान् = और न	
रागी = रागी		रागवान् है	

अथ

कि

मे

विभाग

मुमुक्षु होकर जो स्त्री पुत्रादिक विषयों में द्वेष करता है अर्थात् द्वेषदृष्टि करके उनको अंगीकार नहीं करता है किन्तु त्याग देता है उसका नाम विरक्त है और जो विषयों की कामना करके विषयों में लोलुपचित्तशाला है उसका नाम रागी है और जो पुरुष विषयों के ग्रहण और त्याग की इच्छा से रहित है वह विरक्त सरक्त से विलक्षण याने ग्रहण त्याग से रहित जीवन्मुक्त है ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

हेयोपादेयता तावत्संसारविटपांकु-
रः ॥ स्पृहा जीवति यावद् वै निर्विचारदशा-
स्पदम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

हेयोपादेयता तावत् संसारविटपां-
कुरः स्पृहा जीवति यावत् वै निर्वि-
चारदशास्पदम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
यावत् = जबतक
स्पृहा = तृष्णा

अन्वयः शब्दार्थ
जीवति = जीवै है
+ च = और

यावत् = जब तक	हेयोपादे = { त्याज्य और
निर्विचार { अविवेक	यता = { ग्राह्य भाव
दशा = { दशाकी	संसार { संसाररूपी
स्पदम् { स्थिति है	विट्पां = { वृक्ष का अं-
तावत् = तब तक	कुरः { कुर है

भावार्थ ॥

विचारशून्यदशा आस्पदीभूत का नाम तृष्णा है अर्थात् जिस कालमें कोई विचार न हो केवल भोगों की इच्छा ही उत्पन्न हो उसका नाम तृष्णा है सो जो तृष्णालु पुरुष है वह जबतक जीता है ग्रहण त्याग करता ही रहता है संसाररूपी वृक्ष का अंकुर उत्पन्न करनेवाली तृष्णा ही है सो तृष्णा जीवन्मुक्तों में नहीं रहती है यदि प्रारब्धकर्म के बश से जीवन्मुक्त में ग्रहण त्याग का व्यवहार होना भी रहे तो भी उसकी कोई हानि नहीं है ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

प्रवृत्ता जायते रागो निवृत्तो द्विप एव हि ॥ निर्द्वन्द्वो बालवद्धीमानेव मेव न्यवस्थितः ॥ ८ ॥

पदञ्चेदः ॥

प्रवृत्तौ जायते रागः निवृत्तौ द्वेषः
एव हि निर्द्वन्द्वः बालवत् धीमान् एवम्
एव व्यवस्थितः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
प्रवृत्तौ = प्रवृत्ति में		एवहि = इसलिये	
रागः = राग		धीमान् = बुद्धिमान्	
च = और		पुरुष	
निवृत्तौ = निवृत्ति में		निर्द्वन्द्वः = द्वन्द्वरहित	
द्वेषः = द्वेष		एवमएव = जैसेहोवै वै-	
जायते = होता है		साही	
		व्यवस्थितः = स्थितरहै	

भावार्थ ॥

विषयों में जब रागपूर्वक प्रवृत्ति होती है तब पूर्व से उत्तर २ विषयों में रागही उत्पन्न होता है और जब विषयों में द्वेषपूर्वक निवृत्ति होती है तब पूर्व से उत्तर २ विषयों में द्वेषद्वारे ही उत्पन्न होती है इसी में एक दृष्टान्त कहते हैं ॥ एक राजा दूसरे देश को गया तिम को कई एक वर्ष बीत गये पीछे उस की

रानी बड़ी कामातुर होकर अपने मकान परसे इधर उधर ताकती थी एक सराफ़ का लड़का युवा अवस्था को प्राप्त बड़ा सुन्दर अपने कोठे पर खड़ा था उसको देखकर रानीका मन उसकी तरफ़ चल गया रानी ने अपनी लौड़ी को उसके बुलाने के लिये भेजा लौड़ी उसको बुला लाई रानी उससे बातचीत करने लगी थोड़ी देर में लौड़ी ने आकर कहा कि राजा साहब आगये तब उस लड़के ने कहा गुहा को कहीं छिपाओ रानी ने उसको पागाने के नल में खड़ा कर दिया इतने में राजा भीतर आगये और नौकर से कहा जल्दी पानी लाओ हम पागाने जा-रेंग नौकर पानी लाया राजा पागाने गये राजा साहब को दस्त पतले आने से नलकी मोहरी पर बैठकर जो पागाना उन्हें ने फिग गो नीचे उम लड़के के ऊपर जाकर गिरा गिरा कर शिर मुँह और कपड़े सब मैने में आगये राजा पागाना फिरका व आगे तब लौड़ी ने उसको हिमी मंदी नाली के रस से निकाल दिया तब लड़के ने नदी पर जाकर स्नान किया और सब कपड़े साफ़ करके अपने घर को गया दूसरे दिन फिर रानी ने लौड़ी को उसके बुलाने के लिये भेजा तब लड़के ने कहा कुछ दिन मैं यहीं रहूँगा

गया और केवल दस पांच बातें उससे मैने की तब उसका कल यह हुआ कि अपने सिरपर दूसरे का मैला पड़ा जो राज्ञ २ उससे सम्यन्ध करता है न मातृम उसकी क्या गति होगी मेरेको तो वह पाय-खाना न भूला है न भूलैगा मैं अब कदापि नहीं जा-उंगा इस प्रकार की जब विषयभोग में दोषबुद्धि होती है तब फिर कदापि उसकी विषयभोग में रागपूर्वक प्रवृत्ति नहीं होती है ऐसेही विद्वान् भी बालक की तरह शुभ अशुभ के चिन्तन से रहित होकर केवल प्रारब्धवश से कदाचित् प्रवृत्त होता है कदाचित् निवृत्त भी होजाता है परन्तु राग द्वेष करके न तो वह प्रवृत्त होता है और न वह निवृत्त होता है ॥ ८ ॥

मूलम् ॥

हातुमिच्छतिसंसारं रागीदुःखजि
हासया ॥ वीतरागोहिनिर्दुःखस्तस्मिन्न
पिनखियति ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ॥

हातुम् इच्छति संसारम् रागी दुः०

खजिहासया वीतरागः हि निर्दुःखः त-
स्मिन् अपि न खिद्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

रागी = रागवान्

पुरुष

दुःखजिहासया = { दुःखकी
निवृत्ति
की इ-
च्छा से

संसारम् = संसारको

हातुम् = त्यागना

इच्छति = चाहता है

वीतरागः = रागरहित

पुरुष

अन्वयः शब्दार्थ

हि = निश्चय

करके

निर्दुःखः = { दुःख से
मुक्त हो-
ता हुआ

तस्मिन् = संसारविषे

अपि = भी

न खिद्यति = { नहीं से-
द को
प्राप्त हो-
ता है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे शिष्य ! जो पुरुष वि-
षयों में रागवाला है सोई विषयके सम्बन्ध से उत्पन्न
आ जो दुःख है उसके त्याग की इच्छा करता हुआ
संसारके त्यागने की इच्छा करता है और जो वीतराग-

राग पुरुष है वह संसार के बने रहनेपर भी खेद को नहीं प्राप्त होता है ॥ सो पञ्चदशीमें भी कहा है ॥ रा-
गोलिंगमबोधस्य चित्तन्यायामभूमिषु ॥ कुतोवैशाढ-
लस्तस्य यस्याग्निःकोटरेतरोः ॥ १ ॥ जिस वृक्ष के
कोटर में याने जड़के बिल में अग्नि लगी है उस
वृक्षको हरियाई याने उसके हरेपत्ते कदापि उत्पन्न
नहीं होते हैं दार्ष्टान्त में जिस पुरुष के चित्त में अ-
ज्ञान का चिह्न बना है उसको शान्ति कदापि नहीं
होती है ॥ ९ ॥ मूलम् ॥

यस्याभिमानोमोक्षेऽपि देहेऽपि म-
मता तथा ॥ न च योगी न वा ज्ञानी केवलं
दुःखभागसौ ॥ १० ॥

पदच्छेदः ॥

यस्य अभिमानः मोक्षे अपि देहे
अपि ममता तथा न च योगी न
वा ज्ञानी केवलम् दुःखभाक् असौ ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यस्य = जिस को		अभिमानः = अभिमान	
मोक्षे = मोक्षविषे		है	

च = और
 देहे = देह विषे
 अपि = भी
 तथा = वैसाही
 ममता = ममता है
 असौ = वह
 न = न

ज्ञानी = ज्ञानी है
 च = और
 न = न
 योगीश = योगी है
 केवलम् = केवल
 दुःखभाक् = दुःख का
 भागी है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं मैं ज्ञानी हूँ मैं त्रिकाल-
 वर्सी हूँ मैं मुक्त हूँ इस प्रकार का जिसको अभिमान
 है वह ज्ञानी नहीं है जो कहता है मैं योगाऽध्यामी
 हूँ मैं निश्चयी घेती नेनी वस्ती आदिक क्रिया करता
 हूँ वह योगी भी नहीं है किन्तु वह केवल दुःख का
 भोगनेवाला है ॥ १० ॥

मूलम् ॥

दृश्येषु पदेष्टाते हरिः कमलजोऽपि
 वा ॥ तथापि न तव स्वास्थ्यं सर्वविस्मर
 णादृते ॥ ११ ॥

पदञ्चेदः ॥

हरः यदि उपदेष्टा ते हरिः कम-
लजः अपि वा तथा अपि न तव
स्वास्थ्यम् सर्वविस्मरणात् भ्रष्टने ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यदि = अगर			बगैर सब
ते = तेरा			के वि-
उपदेष्टा = उपदेशक		सर्ववि	स्मरण
हरः = शिव है		स्मरणात् =	के याने
हरिः = विष्णु है		भ्रष्टे	त्याग
वा = अथवा			के
कमलजः = ब्रह्मा है		तव = तुम्ह को	
तथापि = तौभी		स्वास्थ्यम् = शान्ति	
		न = नहींहोगी	

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं कि हे जनक ! चाहे तुम
को महादेव उपदेश करें या विष्णु उपदेश करें या
ब्रह्मा उपदेश करें तुम को सुख कदापि न होगा
जब विषयों को त्याग करोगे तभी शान्ति और आ-

नन्द को प्राप्त होंगे आत्मतत्त्व के उपदेश के पहिले
विषयों का त्याग बहुत जरूरी है ॥ ११ ॥

इति श्रीअष्टावक्रगीतायां शिष्योपदेशकन्नाम
षोडशकंप्रकरणंसमाप्तम् ॥ १६ ॥

सन्नहवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

तेन ज्ञानफलम्प्राप्तं योगाभ्यासफल
न्तथा ॥ तृप्तः स्वच्छेन्द्रियो नित्यमेका
कीरमतेतुयः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

तेन ज्ञानफलम् प्राप्तम् योगाभ्यास-
फलम् तथा तृप्तः स्वच्छेन्द्रियः नित्यम्
एकाकी रमते तु यः ॥

अन्वयः शब्दार्थः | अन्वयः शब्दार्थः

यः = जो पुरुष | नित्यम् = नित्य

पदव्येदः ॥

न कदाचित् जगति अस्मिन् त-
त्त्वज्ञः हन्त खिद्यति यतः एकेन तेन
इदम् पूर्णम् ब्रह्माण्डमण्डलम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
तत्त्वज्ञः =	तत्त्वज्ञानी	हन्त =	यहवात
अस्मिन् =	इस		ठीकहै
जगति =	जगत् विषे	यतः =	क्योंकि
न कदा	= { कभी नहीं	तेन एकेन =	उसी एक से
चित्		इदम् =	यह
खिद्यते =	खेदको प्रा-	ब्रह्माण्डम् /	ब्रह्माण्डम-
	प्तहोता है	ण्डलम् }	एण्डल
		पूर्णम् =	पूर्णहै

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! इस संसारमण्डल में तत्त्वचित् ज्ञानी कभी भी खेद को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि वह जानता है कि मुझ एक करके ही यह सारा जगत् व्याप्त हो रहा है खेद दूसरे से होता है सो दूसरा उसकी दृष्टि में है नहीं ॥ २ ॥

मूलम् ॥

नजातुविपयाः केपिस्वारामंहर्षय
न्त्यमी ॥ सल्लकीपल्लवप्रीतमिवेभन्ति
म्बपल्लवाः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

न जातु विपयाः के अपि स्वाराम-
मम् हर्षयन्ति अमी सल्लकीपल्लवप्रीत-
म् इव इभम् निम्बपल्लवाः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अमी=ये

केअपि=कोई भी

विपयाः=विषय

नजातु=कभीनहीं

स्वारामम्=स्वात्मा-

रामको

हर्षयन्ति=हर्षितकरतेहैं

इव=जैसे

अन्वयः शब्दार्थ

सल्लकीप
ल्लवप्रीत - { सल्लकी
के पक्षों
से प्रसन्न
हुये

इभम्=हार्थी को

निम्बप } नीम के
पक्षे

नहर्षयन्ति=नहींहर्षको
प्राप्तकरतेहैं

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! जो पुरुष अपने आत्मामें ही रमण करे उसका नाम आत्माराम है वह आत्माराम कदापि विषयों की प्राप्ति होने से और उनके भोगने से हर्ष को नहीं प्राप्त होता है क्योंकि वह विषयों को तुच्छ जानता है अर्थात् विषयजन्य सुख को वह भिष्या जानता है और विषयभोग भी उस आत्माराम को हर्ष नहीं कराते हैं क्योंकि आत्मीयता से रहित है जैसे सलुकी जो मधुररसवाली घेल है उस घेल के पत्ते जिता हस्ती ने खाये हैं उसको कदुरसा लें नीम के पत्ते हर्ष को प्राप्त नहीं कराते हैं ऐसे जिता ने आत्मानन्द का अनुभव किया है उसको विषयानन्द नहीं आनन्दित कराता है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

यस्तुभोगेषुभुक्तेषु नभवत्यधिवासितः ॥ अभुक्तेषुनिराकांक्षीतादृशो भवदुल्लसः ॥ ४ ॥

पदार्थः ॥

यः तु भोगेषु भुक्तेषु न भवति

अधिवासितः अभुक्तेषु निराकांक्षी ता-
दृशः भवदुर्लभः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यः=जो		च=और	
भुक्तेषु=भोगेहुये		अभुक्तेषु=अभुक्पदा-	
भोगेषु=भोगों में		धों विपे	
अधिवा		निराकांक्षी=आकांक्षा	
सितः	= आसक्त	रहितहै	
नभवति=नहींहोताहै		तादृशः=ऐसामनुष्य	
		भवदुर्लभः=दुर्लभहै	

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! जिस पुरुष की भोगेहुये भोगों में आसक्ति नहीं है और जो नहीं भोगेहुये भोग हैं उनमें उसकी आकांक्षा भी नहीं है परन्तु जो अपने आत्मामें ही तृप्त है वैसा पुरुष संसार सागरविपे करोड़ों में एकही है अथवा एक भी दुर्लभ है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

बुभुक्षुरिहसंसारेमुमुक्षुरपिदृश्यते ॥

हैं परन्तु जो भोग और मोक्ष दोनोंकी आकांक्षा से रहित हो और महान् परिपूर्ण ब्रह्मविषे शुद्ध अन्तःकरण से स्थित हो सो दुर्लभ है ॥ गीता में भी भगवान्ने कहा है ॥ मनुष्याणांसहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्ध्ये ॥ यततामपिसिद्धानां कश्चिन्मात्रेचित्तत्त्वतः ॥ १ ॥ हजारों मनुष्यों में से कोई एक मनुष्य अन्तःकरणकी शुद्धि के लिये यत्न करता है फिर उन में सेभी कोई एक विरला पुरुष आत्मा को यथार्थ जानता है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु जीवितेमरणे
तथा ॥ कस्याप्युदारचित्तस्य हेयोपादे
यतानहि ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु जीविते मरणे
तथा कस्य अपि उदारचित्तस्य हेयो-
पादेयता न हि ॥

भोगमोक्षनिराकांक्षी विरलोहिमहा-
शयः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

इह संसारे मुमुक्षुः अपि
दृश्यते भोगमोक्षनिराकांक्षी विरलः हि
महाशयः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मुमुक्षुः=भोग की
इच्छावाला

अपि=और

मुमुक्षुः=मोक्ष की
इच्छावाला

इह=इस

संसारे=संसारविषे

दृश्यते=देखेजातेहैं

अन्वयः शब्दार्थ

हि=परन्तु

भोगमोक्ष-
निराकांक्षी = { भोग
औरमो-
क्ष की
आशा
से रहित

विरलः=कोई विर-
लाही

महाशयः=महापुरुषहै

भावार्थ ॥

इस संसारमें मुमुक्षु अनेकप्रकार के दिखाई पड़ते

हैं परन्तु जो भोग और मोक्ष दोनोंकी आकांक्षा से रहित हो और महान् परिपूर्ण ब्रह्मविषे शुद्ध अन्तःकरण से स्थित हो सो दुर्लभ है ॥ गीता में भी भगवान् ने कहा है ॥ मनुष्याणांसहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ॥ यततामपिसिद्धानां कश्चिन्मावेत्तितत्त्वतः ॥ १ ॥ हजारों मनुष्यों में से कोई एक मनुष्य अन्तःकरणकी शुद्धि के लिये यत्न करता है फिर उन में सेभी कोई एक विरला पुरुष आत्मा को यथार्थ जानता है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु जीवितेमरणे
तथा ॥ कस्याप्युदारचित्तस्य हेयोपादे
यतानहि ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु जीविते मरणे
तथा कस्य अपि उदारचित्तस्य हेयो-
पादेयता न हि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
धर्मार्थ	धर्म अर्थ	कस्य=किस	
काममोक्षेपु	काम मोक्ष विषे	उदार चित्तस्य	उदार चित्त को
जीविते=जीनेविषे		हेयोपादेयता	त्याग और ग्रहण
तथा=और		नहि=नहींहै	
मरणे=मरणविषे			

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! ऐसा पुरुष संसारविषे दुर्लभ है जो धर्म अर्थ काम मोक्ष और जीने और मरने में उदासीन हो याने उसको सुखाकार दुःखाकारनृत्ति न व्यापे अपने अद्वैत आत्मा में शान्त होकर स्थित रहै सुख दुःख सापेक्षिक है जिसको सुख होता है उसीको दुःख भी होता है जिसको दुःख होता है उसीको सुख भी होता है ॥ तुम हे प्रिय ! इन दोनों से रहित होकर विचरो ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

वाञ्छानविश्वविलये न द्वेषस्तस्यच

स्थितौ ॥ यथाजीविकया तस्माद्धन्य
आस्तेयथामुखम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

वाञ्छा न विश्वविलये न द्वेषः
तस्य च स्थितौ यथा जीविकया
तस्मात् धन्यः आस्ते यथामुखम् ॥

अन्यः शब्दार्थः अन्यः शब्दार्थः
विश्ववि (विश्वकेल- तस्मात्-नाते
लये) य होने में धन्यः=धन्यपुरुष

वाञ्छा=इच्छा

रह है

न=नहीं है

यः=जो

च=और

तस्य=उत्तर

यथाजीवि । यथाशब्द
कया । आजीवि

स्थितौ=स्थिति में

(य दाग

द्वेषः=द्वेष

यथानुमत्-नुमत्परक

न=नहीं है

आस्ते=रहता है

शब्दार्थः ॥

रकजी रहते हैं हे पुरु ! विश्व के लय होने

अन्यः	शब्दार्थ	अन्यः	शब्दार्थ
धर्मार्थ	धर्म अर्थ	कस्य=किस	
कामभो	काम	उदार	उदार चित्त
क्षेपु	मोक्ष	चित्तस्य	= को
	त्रिपे		
जीविने=जीनेत्रिपे		हेयोपादे	त्याग और
तथा=और		यता	ग्रहण
मरणे=मरणत्रिपे		नहि=नहीं	है

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! ऐसा पुरुष संसारत्रिपे दुर्लभ है जो धर्म अर्थ काम मोक्ष और जीने और मरने में उदासीन हो याने उसको सुखाकार दुःखाकारवृत्ति न व्यापे अपने अद्वैत आत्मा में शान्त होकर स्थित रहै सुख दुःख सापेक्षिक है जिसको सुख होता है उसीको दुःख भी होता है जिसको दुःख होता है उसीको सुख भी होता है ॥ तुम हे प्रिय ! इन दोनों से रहित होकर विचरो ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

वाञ्छानविश्वविलये न द्वेपस्तस्यच

स्थितौ ॥ यथाजीविकया तस्माद्धन्य
आस्ते यथासुखम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

वाञ्छा न विश्वविलये न द्वेषः
तस्य च स्थितौ यथा जीविकया
तस्मात् धन्यः आस्ते यथासुखम् ॥

अन्यः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विश्ववि- लये	{ विश्वकेल- लये }	तस्मात्=ताते	
	{ य होने में }	धन्यः=धन्यपुरुष	
वाञ्छा=इच्छा		वह है	
न=नहीं है		यः=जो	
च=और		यथाजीवि- कया	{ यथाप्राप्त आजीवि का दारा
तस्य=उसके		यथासुखम्=सुखपूर्वक	
स्थितौ=स्थिति में		आस्ते=रहता है	
द्वेषः=द्वेष			
न=नहीं है			

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे पुत्र ! विश्व के लय होने

की इच्छा तिम विद्वान को नहीं है और तिस के
 स्थिर रहने में तमका रुच नहीं है अर्थात् प्रपञ्च
 में तमका रुच नहीं है ॥ अतः तमको विद्वान साक्षी
 पञ्चानन समझकर स्थित है तद्वि विद्वान कृत कृत्य
 तमका है पूजने योग्य है ॥ ७ ॥

मुनिम् ॥

कृताभोऽनेन ज्ञानेनेत्येवं गतितर्थाः
 कर्ता ॥ पश्यन्द्ब्रह्मणन्स्त्वष्ट्याग्निधन
 इननास्तयभामुनिम् ॥ ८ ॥

पश्यन्द्ब्रह्म ॥

कृतायः अनेन ज्ञानेन इति एवम्
 गतितर्थाः कर्ता पश्यन्द्ब्रह्मणन्
 स्त्वष्ट्याग्निधन इनन आग्ने यथा
 मुनिम् ।

अनेन = इति अनेन = इति

कर्ता = कर्ता कर्ता = कर्ता

पश्यन्द्ब्रह्मणन् = पश्यन्द्ब्रह्मणन्

गलित धीः =	गलित हुई है बु- द्धि जि- सकी ऐसा	स्पर्शन् = स्पर्श कर- ता हुआ जिघ्रन् = सूँघता हुआ
कृती =	ज्ञानी पुरुष	अशनन् = खाता हुआ
पश्यन् =	देखता हुआ	यथासु = (सुख- सम् = (वर्षक
शृण्वन् =	सुनता हुआ	आस्ते = रहता है

भावार्थ ॥

मैं अद्वैत आत्मज्ञान करके कृतार्थ हुआ हूँ ऐसी बुद्धिभी जिस विद्वान् की उत्पत्ति नहीं होती है और आहागदिकों को करता हुआ भी जो शरीरी सुख को उल्लंघन करके स्थित होता है और बाह्य इन्द्रियों के व्यापारों के होनेपर भी अज्ञानी मूर्खों की तरह खेद नहीं करता है और जो खड़ा हुआ बैठा हुआ चलता हुआ भी समाहितचित्तवाला है वही धन्य है वही ब्रह्मरूप है ॥ ८ ॥

मूलम् ॥

शून्या दृष्टिर्वृथा चेष्टा विकलानीन्द्रि
याणि च ॥ न स्पृहानविरक्तिर्वा क्षीणसं
सारसागरे ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

शून्या दृष्टिः वृथा चेष्टा विकलानि
इन्द्रियाणि च न स्पृहा न विरक्तिः
वा क्षीणसंसारसागरे ॥

अन्यः	शब्दार्थः	अन्यः	शब्दार्थः
	नाशदुः	दृष्टिः	दृष्टिशून्य
	आहे सं-	शून्या	= दोगडं दे
क्षीण	सारक्षी	चेष्टा	= व्यापा
संसार =	समुद्र		ज्ञानाग्राहे
सागरे	त्रिमल	इन्द्रियाणि	- इन्द्रिया
	प्रेमं वृ-	विकलानि	- विकल
	दोगडं		दोगडं दे

न = न
स्पृहा = इच्छा है
वा = और

न = न
विरक्तिः = विरक्तता
है

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! जिस पुरुष का संसारसागर क्षीण हो-
गया है उसको विषयभोगों की इच्छा भी नहीं रहती
है और न उन से विरक्ति होने की इच्छा उमरने
रहती है उस विद्वान् का मन और शरीरेन्द्रियादिक
बालक या उन्मत्त की तरह अपने व्यापारों से शून्य
रहते हैं और उसके शरीर की चेष्टा भी नृधा ही हो-
ती है उसकी इन्द्रियां भी सब निर्बल होती हैं
आगे स्थितहुये विषयों का निर्णय नहीं करसक्त है ॥
गीतामें भी कहा है ॥ यानिशासर्वभूतानां तस्यां जाग-
र्तिसंयमी ॥ यस्यां जाग्रतिभूतानि सानिशापश्यतो मुनेः ॥
१ ॥ सम्पूर्ण भूतोंकी जो आत्मज्ञानरूपी रात्रि है और
जिस में सब भूत सोये हैं उस में विद्वान् जागता है
जिस अज्ञानरूपी दिन में भूत सब जागते हैं उसमें
विद्वान् सोयाहुआ रहता है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

न जागर्ति न निद्राति नोन्मीलति न

मालति ॥ अहो पद्मं कापि वर्तते मुक्त
चेनमः ॥ १० ॥

पदच्छः ।

न जागर्ति न निद्राति न उन्मी-
लति न मालति अहो पद्मं का
अपि वर्तते मुक्तचेनमः ॥

अन्यः शब्दार्थ अन्यः शब्दार्थ
न जागर्ति = न जाग- अहो = आश्चर्य्य

ता है ते कि
न निद्राति = न सोता है

न उन्मीलति = न पलक को गोलता है कापि = केसा
पद्मं = उच्छृङ्खला

च = और मुक्तं = जाता की
न मालति = न पलक को बन्द रखता है वर्तते = घूर्णित

भाष्य ॥

हे शिष्य ! विद्वान् एव विनियोगः ॥ १० ॥

क्योंकि जो जागता है वह नेत्रकी पलकों को खोले रहता है याने बाह्यविषयों को देखता है और स्मरण भी करता है ज्ञानी बाह्यविषयोंको न देखता है और न स्मरण करता है इस वास्ते वह जागता नहीं है और ज्ञानवान् सोता भी नहीं है क्योंकि जो सोता है वह नेत्रोंके पलकों को मूंद लेता है और इसी कारण तब वह बाहर के किसी पदार्थ को नहीं देखता है सो विद्वान् ऐसा नहीं करता है किन्तु बाहर के सब पदार्थों को ब्रह्मरूप करके देखता है ॥ प्रश्न ॥ ऐसे ज्ञानवान् की कौन दशा होती है ॥ उत्तर ॥ अहो बड़ा आश्चर्य्य है २ शान्तचिचवाला हृन्जी कोई एक अलौकिक उत्कृष्ट तुरीय अवस्था को प्राप्त होता है उस दशा का ध्यान चर्ममुखसे बाहर है ॥ १० ॥

मूलम् ॥

सर्वत्रदृश्यतेस्वस्थःसर्वत्रविमलशयः ॥ समस्तवासनामुक्तो मुक्तःसर्वत्रराजते ॥ ११ ॥

पदब्धेदः ॥

सर्वत्र दृश्यते स्वस्थः सर्वत्र

विमलाशयः समस्तवासनामुक्तः मुक्तः
सर्वत्रराजते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मुक्तः =	जीवन्मुक्त ज्ञानी	दृश्यते =	दिखलाई देता है
सर्वत्र =	सब जगह	च =	और
स्वस्थः =	शान्तहुआ	सर्वत्र =	सब जगह
सर्वत्र =	सब जगह	समस्त	(सब वा-
विमला	(निर्मल	वासना =	सनार-
शयः =	अन्तःक-	मुक्तः	हित
	रणवाला	राजते =	विराज-
	हुआ		ता है

भावार्थ ॥

अब ज्ञानवान्की अलौकिक दशाको दिखलाते हैं ॥ हे शिष्य ! विद्वान् जीवन्मुक्त सर्वत्र सुख दुःख में स्वस्थचित्त रहता है अज्ञानी सुखमें हर्ष को और दुःख में शोक को प्राप्त होता है ज्ञानवान् सुख दुःख हर्ष शोकको बराबर जानकर अपने आत्मानन्दमें मग्न रहता है ॥ अज्ञानी मित्र से राग और शत्रु से द्वेष क-

रता है ज्ञानवान् शत्रु मित्र में समदृष्टिवाला रहता है
विद्वान् सम्पूर्ण विषयवासनाओं से रहित होकर जी-
वन्मुक्त हुआ सम्पूर्ण अवस्थाओं में एकरस ज्योंका
त्यों प्रकाशमान रहता है ॥ ११ ॥

मूलम् ॥

पश्यञ्छृण्वन्स्पृशजिघ्रन्तश्न-
नृहन्वदन्ब्रजन् ॥ ईहितानीहितै-
र्मुक्तो मुक्तएवमहाशयः ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ॥

पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्
प्सन्तन् गृहन् वदन् ब्रजन् ईहितानी-
हितैः मुक्तः मुक्तः एव महाशयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
पश्यन् = देखताहुआ	}	जिघ्रन् = मंथताहुआ	} = एकदृष्टि
शृण्वन् = सुनताहुआ		वदन् = बोलताहुआ	
स्पृशन् = स्पर्शकरता		ब्रजन् = जाताहुआ	
हुआ		ईहिता } नीहितैः }	

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
न निन्दति = न निन्दा करता है	न कुप्यति = न क्रोध करता है
च = और	न ददाति = न देता है
न स्तुति = न स्तुति करता है	न गृह्णाति = न लेता है
न हृष्यति = न हर्ष को प्राप्त होता है	मुक्तः = ज्ञानी
	सर्वत्र = सर्वत्र
	नीरसः = रसरहित है

भावार्थ ॥

अब जीवन्मुक्त के लक्षण को दिखाते हैं ॥ जो जीवन्मुक्त है वह न किसी की निन्दा करता है और न स्तुति करता है और न हर्ष करता है और न कभी क्रोध को प्राप्त होता है याने जो संतारी पुरुष जीवन्मुक्त को आदर सन्मान करते हैं वह उन की स्तुति नहीं करता है और जो उसको निरादर करते हैं उनकी वह निन्दा नहीं करता है और न वह अति उत्तम खान पान आदिकों के प्राप्त होनेपर हर्ष को प्राप्त होता है और न घृतहीन घासी भोजन मिलने से वह शोक करता है और न किसी से शरीर

मरगये उसीदिन राजा भी मरगया नगर के बाहर जंगल में एक तपस्वी योगी रहताथा एक आदमी उन के पास बैठाथा तपस्वी हँसने लगे तब उस आदमी ने पूछा कि महाराज विना प्रयोजन आज आप क्यों हँसते हो उन्होंने ने कहा हम विना प्रयोजन नहीं हँसते हैं राजा के पास जो महात्मा रहतेथे वे मरगये हैं राजा भी मरगया है राजा स्वर्ग में गया और महात्मा नरक में गये क्योंकि राजा का मन महात्मा में रहताथा इसी वास्ते वह स्वर्ग में गया उस को वैराग्य बना रहताथा और महात्मा का मन राजभोगों में रहताथा वैराग्य से शून्य रहताथा इसी वास्ते वह नरक को गये (दार्ष्टान्त) चाहे कितनाही नंगा रहै वह कदापि जीवन्मुक्त नहीं होसक्ता है जो वासनासे रहित है वही जीवन्मुक्त है ॥ १३ ॥

मूलम् ॥

सानुरागांस्त्रियं दृष्ट्वा मृत्युं वासमुपस्थितम् ॥ अविह्वलमनाः स्वस्थो मुक्त एव महाशयः ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ॥

सानुरागाम् स्त्रियम् दृष्ट्वा मृत्युम् वा

मूलम् ॥

सुखेदुःखेनरेनार्या संपत्सुचविप
त्सुच ॥ विशेषोनैवधीरस्य सर्वत्रस
मदर्शिनः ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ॥

सुखे दुःखे नरे नार्याम् सम्पत्सु च
विपत्सु च विशेषः न एव धीरस्य स-
र्वत्र समदर्शिनः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

सुखे = सुख विपे

दुःखे = दुःख विपे

नरे = नर विपे

नार्याम् = नारी विपे

सम्पत्सु = सम्पत्तियोंमें

अन्वयः शब्दार्थ

विपत्सु = विपत्तियोंमें

सर्वत्र = सर्वत्र

समदर्शिनः = समदर्शी

धीरस्य = ज्ञानी का

विशेषः न = भेद नहीं है

भावार्थ ॥

जिसका चित्त सुख दुःखमें तन रहता है अर्थात्
शरीर को अतिमुख होने से जो हर्ष को नहीं प्राप्त
होता है और शरीर को खेद होने से जो शोक को

नहीं प्राप्त होता है और सम्पदा के प्राप्त होनेपर जिसको हर्ष नहीं होता है और विपदा के आनेपर जिसको शोक नहीं होता है वही जीवन्मुक्त है ॥ १५ ॥

मूलम् ॥

न हिंसा नैव कारुण्यं नोद्धत्यन्नचदी-
नता ॥ नाश्चर्यं नैव च क्षोभः क्षीणसंसार-
णे नरे ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ॥

न हिंसा न एव कारुण्यम् न ओ-
द्धत्यम् न च दीनता न आश्चर्यम् न
एव च क्षोभः क्षीणसंमरणे नर ॥

अन्यः शब्दार्थः अन्य गज्जार्थः

क्षीण संमरणे = { क्षीण हुआ न ओद्धत्यम्--न जन
है संसार प्रता है
जिमकापेसे च = और

अरे = मनुष्य विषे न दीनता = न दीनता है

ना = न हिंसा है न आश्चर्यम् = न आश्च-

र्यम् = न दया-

वता है न

भावार्थ ॥

जो वासनारहित पुरुषों के साथ न द्रोह करता है और न दीन के साथ करुणा करता है और न शारीरिक सुख के लिये किसी के आगे हाथ बढ़ाता है और न कभी आश्चर्य्य को प्राप्त होता है और न कभी क्षोभ को प्राप्त होता है वही पुरुष जीवन्मुक्त है ॥ १६ ॥ मूलम् ॥

नमुक्तोविषयद्वेष्टा नवाविषयलोलुपः ॥ असंसक्तमनानित्यंप्राप्ताप्राप्तमुपाश्रुते १७ ॥ पदञ्चेदः ॥

न मुक्तः विषयद्वेष्टा न वा विषयलोलुपः असंसक्तमनाः नित्यम् प्राप्ताप्राप्तम् उपाश्रुते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मुक्तः=जीवन्मुक्त

न विषयद्वेष्टा = { नविषय
में द्वेष्ट
करने
वालाहै

अन्वयः शब्दार्थ

वा=और

नविषयलो- { नविषयों
में लोभी
है

नित्यम्=सदा

अमंसक्त मनाः = { आमक्ति गतिमन वालाहो-तादुआ } प्राप्ताप्राप्तम् = { प्राप्त अ प्राप्त वस्तु को }
 उपारनुने=भोगता है
 भावार्थ ॥

जो विषयों के साथ द्वेष नहीं करना है और जो विषय लोलुप नहीं है किन्तु अमंसक्त मनवाला है अर्थात् जिसका मन कहीं आमक्त नहीं है प्रारब्ध-वश से जो प्राप्त होता है उस को भोगता है जो नहीं प्राप्त होता उसकी इच्छा नहीं करना है वही जी-वन्मुक्त कहा जाता है ॥ १७ ॥

मूलम् ॥

समाधानासमाधानहिताहितविकल्प-
 नाः ॥ शून्यचित्तोनजानाति कैवल्य-
 मिवसंस्थितः ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ॥

समाधानासमाधानहिताहितविकल्प-
 नाः शून्यचित्तः न जानाति कैवल्यम्
 इव संस्थितः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

शून्य चित्तः = { वाहरसेशून्य
चित्तवाला
ज्ञानी

समाधाना
समाधान
हिताहित = { समाधान
और अस-
माधान
विकल्प = { हित और
अहितकी
कल्पनाको
नः

अन्वयः शब्दार्थ

न=नहीं

जानाति=जानता है

परन्तु=परन्तु

कैवल्यम्=मोक्षरूप

इव=सा

संस्थितः=स्थित है

भावार्थ ॥

जो समाधानता और असमाधानता को याने हित अहित की कल्पना को नहीं जानता है ऐसा शून्य चित्तवाला जो विदेह कैवल्य को प्राप्त हुआ है वही जीवन्मुक्त है ॥ १८ ॥

मूलम् ॥

निर्ममो निरहङ्कारो न किञ्चिदिति
निश्चितः ॥ अन्तर्गलितसर्वाशः कुर्वन्न
पिनलिप्यते ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ॥

निर्ममः निरहंकारः न किञ्चित् इति
निश्चितः अन्तर्गलितसर्वाशः कुर्वन्
अपि न लिप्यते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अन्वयः शब्दार्थ

अन्तर्गलित = { अभ्यन्तर
गलित हो-
गई हैं सब
आशा नि-
सकी ऐसा
पुरुष

नकिञ्चित् = कुछ भी
नहीं है

इति = ऐसा

निश्चितः = निश्चयकर-
ता हुआ भी

निर्ममः = ममतारहि-
त है

कुर्वन् = कम करता
हुआ भी

निरहंकारः = अहंकार
रहित है

नलिप्यते = { लिपाय-
मान नहीं
होता है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! जो विद्वान् अ-
हंमम अभिमान से शून्य है अर्थात् यह मैं और
यह मेरा है इस प्रकार के अभिमानसे भी जो रहित है

और अधिष्ठान चेतन से अतिरिक्त किञ्चित् भी सत्य नहीं है ऐसे निश्चयवाला जो पुरुष है वह सर्व व्यवहारों को करता हुआ भी कुछ नहीं करता है क्योंकि उसको कर्तृत्व अभिमान नहीं है ॥ १९ ॥

मूलम् ॥

मनःप्रकाशसंमोहस्वप्नजाड्यविवर्जितः ॥ दशांकामपिसंप्राप्तो भवेद्गलितमानसः ॥ २० ॥

पदच्छेदः ॥

मनःप्रकाशसंमोहस्वप्नजाड्यविवर्जितः
दशाम् काम् अपि संप्राप्तः भवेत् ग-
लितमानसः ॥

अन्वयः

शब्दार्थ

गलित मानसः = गलित हुआ है मन जिसका
ऐसा ज्ञानी

मनःप्रकाशसंमोह = मनके प्रकाश से चित्तकी
स्वप्न जाड्य विव- = भ्रान्तिसे स्वप्न और जड़ता
र्जितः = याने सुषुप्ति से वर्जित होता
हुआ

काम् = अनिर्वचनीय । संप्राप्तः = प्राप्त
 दशाम् = दशा को । भवेत् = होता है
 भावार्थ ॥

हे शिष्य ! गलित होगई है अन्तःकरण की वृत्ति जिसकी अर्थात् जिस विद्वान् के मनके सङ्कल्प वि-
 कल्पादिक नहीं फुरते हैं और दूर होगया है श्री
 पुत्रादिकों में मोह जिसका अन्तरात्मा की तरफ है चित्त
 का प्रवाह जिसका ओर जो जड़ता से रहित है अपने
 आत्मानन्दमें ही सदैवकाल स्थित है वही जीवन्मुक्त
 कहलाता है ॥ २० ॥

इति श्रीअष्टावक्रगीतायां सप्तदशकम्प्रकरणं
 समाप्तम् ॥ १७ ॥

अठारहवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

यस्यबोधोदयेतावत्स्वप्नवद्भवति
 ध्रुमः ॥ तस्मैमुखैकरूपायनमःशां-
 तायतेजसे १ ॥

पदच्छेदः ॥

यस्य बोधोदये तावत् स्वप्नवत्
भवति भ्रमः तस्मै सुखैकरूपाय नमः
शान्ताय तेजसे ॥

अन्वयः शब्दार्थ
यस्यबोधो- { जिसके
दये { बोधके
उदयहो-
नेपर

तावत् = पहले

भ्रमः = भ्रान्ति

स्वप्नवत् = स्वप्नके समान

भवति = होती है

अन्वयः शब्दार्थ
तस्मै = उस
सुखैकरू- { आनन्द
पाय } = रूप

शान्ताय = शान्तरूप

च = और

तेजसे = तेजोमय

रूपको

नमः = नमस्का-

रहे

भावार्थ ॥

अब अठारहवें प्रकरण का प्रारम्भ करते हैं ॥
इस प्रकरण में शान्ति की प्रधानता को दिखलाते हुये
प्रथम शान्तरूप परमात्मा को नमस्कार करते हैं ॥
जो आत्मा शान्तरूप है जिसमें सङ्कल्प विकल्प नहीं

उत्पन्न होते हैं और जो सुख और प्रकाशस्वरूप है जिस के स्वरूप के ज्ञान होते ही जगदभ्रम स्वप्नकी तरह मिथ्या प्रतीत होने लगता है उस आत्मा को नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

मूलम् ॥

अर्जयित्वाखिलानर्थान् भोगान्
प्राप्तिपुष्कलान् ॥ नहिमर्वपरित्याग
मन्तरेणसुखी भवेत् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

अर्जयित्वा अखिलान् अर्थान्
भोगान् आप्नोति पुष्कलान् न हि
सर्वपरित्यागम् अन्तरेण सुखी भवेत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ अन्वयः शब्दार्थ

अखिलान्=संपूर्ण भोगान्=भोगाकां

अर्थान्=धनोको पुष्पाः=पुष्पा

अर्जयित्वा=जोड़करके हि अर्जय

पुष्कलान्=सर्व आप्नोति-प्राप्तमाने

परन्तु=परन्तु	अन्तरेण=विना
सर्वपरि } सक्के प-	सुखी=सुखी
त्यागम् } स्तियागके	नभवेत्=नहीं होता है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ धनीलोक भी तो संसार में सुखी दिखाई पड़ते हैं उन में और ज्ञानी में क्या भेद रहा ॥ उत्तर ॥ अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! धनीलोक स्त्री पुत्र धनादिक अर्थों को संग्रह करके उनको भोगते हैं और उनके नाश होनेपर अत्यन्त दुःखां होते हैं ॥ देखो ॥ पृथिवीधनपूर्णाच्चेदिमांसागरमेख लाम् ॥ प्राप्नोतिपुनरप्येष स्वर्गमिच्छतिनित्यशः ॥ १ ॥ यदि समुद्रपर्यन्त धनकरके पूर्ण यह पृथिवी पुरुष को मिल भी जावे तौभी वह स्वर्ग की नित्य ही इच्छा करता है ॥ १ ॥ संसार में धनवान् ही प्रायः करके रोगी दिखाते हैं किसी धनी को क्षुधाका किसी को प्रमेह बँधैरह का रोग बनाही रहता है धनियों की परस्पर स्पर्धा बहुत रहती है उनको राजा और चोरों से भय नित्यही बना रहता है चोरों के भय से रात्री को नींद नहीं आती है धनके संग्रह करने में और धनकी रक्षाकरने में उनको बड़ा क्लेश होता है

संसारमें जितना दुःख धनियों को है उतना दुःख गरीबोंको नहीं है धनकरके जो विषयभोगादिकों से सुख है वह सुखनाशी है तुच्छ है इसवास्ते संपूर्ण धनादिक विषयभोगों के त्यागे बिना सुखरूपी आत्माकी प्राप्ति कदापि नहीं होती है ॥ जैसे बंध्याके पुत्रको असत् जानलेनाही उमका त्याग है बिना असत् जानने के उसका त्याग बनता नहीं है क्योंकि जो वस्तु तीनों कालमें हैही नहीं उसका त्याग कैसे किया जावे इसलिये उमका मिथ्या जाननाही त्याग है इसी तरह संकल्प विकल्परूपी जितना जगत् है उसको असत् जानलेनाही उमका त्याग है इसी वार्ताको अब दिग्वलाने हैं ॥ २ ॥

मूलम् ॥

कर्तव्यदुःखमार्तण्डज्वालादग्धा
न्तरात्मनः ॥ कुतःप्रशमणीयुपधारा
सारमृतेमुखम् ॥ ३ ॥

पदव्येदः ॥

कर्तव्यदुःखमार्तण्डज्वालादग्धा'न्तरा-

त्मनः कुतः प्रशमपीयूषधारासारम् ऋते
सुखम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
कर्तव्य	कर्मजन्य	प्रशम	शान्तिरूपी
दुःख	दुःखरूपी	पीयूष	अमृत की
मार्तण्ड	सूर्यके ज्वा	धारा	धारा की
ज्वाला	लासे भस्म	सारम्	रुष्टि
दग्धा-	हुआ है मन	अन = बिना	
न्तरा	जिसका	सुखम् = सुख	
त्मनः	ऐसे पुरुषको	कुतः = कहाँ से	

भावार्थ ॥

कर्तव्यरूपी जितने कर्म हैं उनसे जन्य ओ दुःख हैं
यही एक सूर्य की तत्परूपी अग्नि है बिना अ-
ग्नि करके जिसका मन दग्ध हो रहा है उसके शान्-
तिरूपी अमृतजल के बिना कहाँ से सुख की प्राप्ति
नहीं हो सकती है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

भवोयं भावनामात्रो न क्रियित्परमा

कोई भी वस्तु भावरूप याने सत्यरूप नहीं है आत्मा ही सत्यरूप है और संपूर्ण प्रपंच अभावरूप है याने असत्यरूप है ॥ प्रश्न ॥ अभावरूप प्रपंच भी कालादिकोंके वशसे भाव स्वभाववाला होजावेगा ॥ उत्तर ॥ भावरूप और अभावरूपमें स्थित स्वभावों का अभाव रूप कदापि नहीं होसक्ता है अर्थात् भाव पदार्थ का अभाव कदापि नहीं होता है और अभाव पदार्थ का भाव कदापि नहीं होता है जैसे मनोराजके और स्वप्नके पदार्थों का कदापि भाव नहीं होता है तैसे प्रपंच के पदार्थों का भी कदापि भाव नहीं होता है जैसे मनोराज स्वप्नके पदार्थ सद्य संकल्पमात्र हैं तैसे जाग्रत के पदार्थ भी सद्य संकल्पमात्र हैं संकल्पके दूर होने से संसाररूपी तापभी दूर होजाता है संकल्पों का नाशही मोक्षका हेतु है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

नद्वरं न च संकोचा लुब्धमेवात्मनः
पदम् ॥ निर्विकल्पं निरायासं निर्विकारं
निरञ्जनम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

न दूरम् न च संकोचात् लुब्धम्

एव आत्मनः पदम् निर्विकल्पम् निरा-
यासम् निर्विकारम् निरञ्जनम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्मनः =	आत्माका	निर्विकल्पम् =	संकल्प
पदम् =	स्वरूप		रहित है
दूरम् =	दूर	निरायासम् =	प्रयत्न र-
न =	नहीं है		हित है
च =	और	निर्विकारम् =	विकार
संको	संकोच से		रहित है
चात्	प्राप्त नहीं है	निरञ्जनम् =	दुःख गहि-
लब्धम् =	याने परि-		त है
न	च्छिन्न नहीं है		

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ संकल्पके दूरकरनेमात्र से कैसे आत्मा-
रूपी अमृतकी प्राप्ति होती है ॥ उत्तर ॥ आत्मा किमी हो
दूर नहीं है और आत्मा परिच्छिन्नभी नहीं है क्योंकि
सर्वत्र व्यापक है इसी वास्ते आत्मा निर्यही प्राप्त है
मनके संकल्पके वश से अज्ञानीपुरुष आत्माको अ-
प्राप्त ही नाई मानते हैं ॥ जैसे किमी पुरुष के कर्म
स्वर्गका भूषण पड़ा है तथापि उसको धर्मक वश से

ऐसा ज्ञान होता है कि मेरा भूषण कहीं खोगया है यदि वह भूषण उसको प्राप्त भी है परंतु भ्रम करके अप्राप्तकी तरह प्रतीत होता है ॥ तैसेही यह आत्मा सर्व पुरुषों को नित्य प्राप्तभी है पर अपने स्वरूप के अज्ञान होनेसे संकल्पों के वश से अप्राप्तकी तरह हो रहा है ॥ आत्मा विकल्पों से अतीत है याने मनके विकल्पों के अभाव होजाने से जानाजाता है विका-
रोंसे भी रहित है और उपाधियों से शून्य है वह सदैव काल एकरस है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

व्यामोहमात्रविरतो स्वरूपादानमा-
त्रतः ॥ वीतशोकाविराजन्ते निरावरण-
दृष्टयः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

व्यामोहमात्रविरतो स्वरूपादानमा-
त्रतः वीतशोकाः विराजन्ते निरावरण-
दृष्टयः ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
व्यामोह मात्र = { विशेषमोह के निवृत्त होनेपर	वीतशोकाः = शोकसे रहित
विरतो	निरावरण = { आवरणरहित दृष्टिवाले या-दृष्टयः { ने ज्ञानीपुरुष
स्वरूपा दान = { अपने स्वरूपके ग्रहण-मात्रतः { मात्रसे ही	विराजन्ते = शोभायमान होते हैं

भावार्थ ॥

प्रश्न॥ जब आत्मा नित्यही प्राप्त है तब फिर शास्त्रके विचार की और आचार्य के उपदेश की क्या जरूरत है ॥ उत्तर ॥ अष्टावक्र जी कहते हैं हे जनक ! अज्ञान-रूपी मोहका आवरण सबके अन्तःकरण में हो रहा है उस आवरण करके आत्माका साक्षात्कार किसी को नहीं होता है उस आवरण के दूर करने के लिये गुरु शास्त्रकी जरूरत है ॥ जैसे दश पुरुष एक नदी के पार उतर कर कहा कि सबको गिनती कर लो कोई नदी में तो वह नहीं गया है उनमें से एक पुरुष जब गिनती करने लगा तब उसने अपने को छोड़कर औरों

को गिना तब नव आदमी गिनती में आये उसने कहा दशवां पुरुष नदी में बह गया है फिर दूसरे ने गिना तब उसने भी अपने को छोड़करके ही गिना तब भी नवही पुरुष पाया इसी तरह हर एक ने अपने को छोड़करके गिना और एक कम पाया तब उन सबको निश्चय होगया कि दशवां पुरुष नदी में बहगया तो फिर वे सब मिलकर रोने लगे उधर से एक युद्धिमान् पुरुष आया उसने उनको रोते देखकर पूछा तुम क्यों रोतेहो उन्होंने कहा हम दश आदमी नदी से पार उतरे उन में से एक आदमी नदीमें बह गया है उनकी वार्ता को सुनकर उस आदमीने जब उनको गिना तब वे दश पूरे थे उसने जाना यह सब मूर्ख हैं तब उनसे कहा हमारे सामने तुम फिर गिने उसके सामने जब एक उनमें से गिनने लगा तब उसने अपने को न गिना और कहा केवल नव हैं तब उ .

हम सब पूरे हैं फिर नव ही पुरुष पाये गये .
के दश होकर जो अपने आत्माको तीर्थोंमें और पर्वतों में खोजता फिरता है वह दशवां पुरुष की तरह अपने को नहीं जानता है जब गुरु उसको उपदेश करता है तब वह जानता है कि मुखरूप आत्म

मैंही हूँ इसलिये गुरु शास्त्रकी भी जरूरत है तात्पर्य यह है कि जिसने गुरु शास्त्रके उपदेशको श्रवण करके अपने स्वरूप का निश्चय करलिया है उसके अन्तःकरणमें फिर मोहरूपी आवरण कदापि नहीं रहता है वह संसार में शोभा को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

समस्तकल्पनामात्रमात्मा मुक्तः
सनातनः ॥ इति विज्ञाय धीरो हि किम्
भ्यस्यति बालवत् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

समस्तम् कल्पनामात्रम् आत्मा मुक्तः
सनातनः इति विज्ञाय धीरः हि किम्
अभ्यस्यति बालवत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ
समस्तम् = सब जगत्
कल्पनामात्रम् = कल्प-
नामात्र है
आत्मा = आत्मा

अन्वयः शब्दार्थ
मुक्तः = मुक्त है
च = और
सनातनः = सनातन है
इति = ऐसा

विज्ञाय = जानकरके	किम् = क्या
धीरः = पंडित	अभ्यस्यति = अभ्यास
बालवत् = बालकोंकी	करता है
नाई	

भावार्थ ॥

संपूर्णजगत् मनकी कल्पनामात्र है ॥ शुद्धोमुक्तः सदैवात्मा नवैवध्येत कर्हिचित् ॥ बंधमोक्षौ मनसंस्थौ तस्मिच्छान्ते प्रशाम्यति ॥ १ ॥ आत्मा शुद्ध है नित्य-मुक्त है कदापि वह बंधायमान नहीं है बंध और मोक्ष मनमें स्थित हैं उस मनके शान्तहोने से बंध और मोक्ष भी शांत होजाते हैं ॥ १ ॥ आत्मा नित्यमुक्त है सनातन है ऐसे निश्चय करके विद्वान् ज्ञानी बालक की नाई चेष्टा करता है ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

आत्मा ब्रह्मेति निश्चित्य भावाभावौ च कल्पितौ ॥ निष्कामः किं विजानाति किं ब्रूते च करोति किम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

आत्मा ब्रह्म इति निश्चित्य भावा-

भावौ च कल्पितौ निष्कामः किम् विजानाति किम् ब्रूते च करोति किम् ॥

अन्यः शब्दार्थ

अन्यः शब्दार्थ

आत्मा = जीवात्मा

निष्काम = कामनादि-

वत्त = वत्त है

नपुरुष

च = ओर

किम् = क्या

भावाभावो = भाव ओर

विज्ञानानि ज्ञानादे

अभाव

किम् = क्या

कल्पितौ = कल्पित है

ब्रूत = कहता है

इति = ऐसा

च = ओर

निश्चित्य = निश्चयक-

किम् = क्या

रके

करोति = करता है

भावार्थ ॥

तत्पदका अर्थ जो जीवात्मा है और कल्पित अ-
र्थ जो वत्त है दोनों के अनेक ही निश्चय कर के जाते
और अभाव माने जाते जो वत्तादि पदार्थों के और जो
नष्ट जो अभाव है वे दोनों अविज्ञान-जन्य न ह-
यित्व है इस प्रकार सब जगत् ही तुच्छ मानकर
बिना विचार की निश्चय नष्ट होकर है ॥ १६ ॥ ॥ ॥

जानने की और कथन करने की इच्छा करता है
किंतु किसी की भी नहीं करता है और न वह किसी
कार्य को करता है क्योंकि उस में कर्तृत्वाभिमान
रहा नहीं है ॥ ८ ॥

मूलम् ॥

अयं सोऽहमयं नाहमिति क्षीणाविक
ल्पनाः ॥ सर्वमात्मेति निश्चित्य तूष्णी
भूतस्य योगिनः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ॥

अयम् सः अहम् अयम् न अहम्
इति क्षीणाः विकल्पनाः सर्वम् आत्मा
इति निश्चित्य तूष्णीभूतस्य योगिनः

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
सर्वम् = सब	तूष्णीभूतस्य = चुपचाप
आत्मा = आत्मा है	हुये
इति = ऐसा	योगिनः = योगीकी
निश्चित्य = निश्चय	इति = ऐसी
करके	विकल्पनाः = कल्पनाकि

अयम् = यह

सः = वह

अहम् = मैं हूँ

अयम् = यह

अहम् = मैं

न = नहीं हूँ

क्षीणाः = क्षीणहोजा-

ती हैं

मात्रार्थ ॥

जिस विद्वान् ने ऐसा निश्चय किया है कि सर्व-
रूप आत्माही है वह बाह्य शरीरदिकों के व्यापारसे
रहित होजाता है और वही जीवन्मुक्त भी कहाजा-
ता है ॥ सो कहा भी है ॥ वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं
परमात्मनि ॥ एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्य-
ते ॥ १ ॥ क्षेत्रज्ञ याने जीवात्मा और परमात्मा में जो
ध्येयाकारवृत्ति हुई थी उस वृत्ति के नाश होनेपर
दोनों की एकता को निश्चय करके ही पुरुष मुक्त
होजाता है याने जिस कालमें मन नानाप्रकार की
कल्पना से रहित होजाता है उसी कालमें वह मुक्त
कहा जाता है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

न विक्षेपो न चैकाग्र्यं न तिवोधो न
मूढता ॥ न सुखं न च वा दुःखमुपशान्तं
स्य योगिनः ॥ १० ॥

पदच्छेदः ॥

न विक्षेपः न च एकाग्रधम् न अति-
बोधः न मूढता न सुखम् न च वा दुःख-
म् उपशान्तस्य योगिनः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
उपशान्तस्य=शान्तहुये
योगिनः = योगीको
नविक्षेपः = नविक्षेपहै
च = और
नएकाग्रधम्=नएकाग्र-
ताहै

अन्वयः शब्दार्थ
नअतिबोधः=नबोध है
नमूढता = नमूर्खता-
है
नसुखम् = नसुखहै
वा = और
नदुःखम् = नदुःख है

भावार्थ ॥

अब संकल्पसे रहित मनके स्वरूप को दिखाते
हैं ॥ अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! जिसका मन
संकल्प विकल्प से रहित होगया है उसको न विक्षेप
होता है और न वह एकाग्रता के लिये उद्यम करता
है क्योंकि जिसको विक्षेप होता है वही निरोध के
लिये यत्न करता है उसको पदार्थों का अत्यन्त ज्ञान
या मूढता नहीं होती है और न उसको विषय-

जन्य सुख या दुःख होता है क्योंकि वह केवल
आत्मानन्दमें मग्न है ॥ १० ॥

मूलम् ॥

स्वराज्येभैक्ष्यवृत्तौ च लाभालाभे
जनेवने ॥ निर्विकल्पस्वभावस्य न वि-
शेषोऽस्तियोगिनः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ॥

स्वराज्ये भैक्ष्यवृत्तौ च लाभालाभे
जने वने निर्विकल्पस्वभावस्य न विशेषः
अस्ति योगिनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
स्वराज्ये = राज्यमें		जने-वनमें	मनुष्या के
भैक्ष्यवृत्तौ = भिक्षावृत्ति		ममृद्वापि	
में			
लाभालाभे = लाभ और		न = ना	
अलाभ में		वने = वना में	

निर्विकल्प स्वभावस्य	{	विक-		योगिनः = योगीको
		कल्पराहि		विशेषः = कोईविशे-
		त स्वभा-		पना
		व वाले		न अस्ति = नदीहै

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त को स्वर्ग के राज्य मिलने पर भी न उसको हर्ष होता है और भिक्षावृत्ति में न उसको वि-
क्षेप होता है और पदार्थ का लाभ और अलाभ दोनों
उसको घराघर हैं यन्में रहे वा परमें रहे वह प्रकृत
रहता है ॥ ११ ॥

मूलम् ॥

क धर्मः क च वा कामः क चार्थः क वि-
वेकता ॥ इदं कृतमिदं नेति द्वन्द्वमुक्त-
स्य योगिनः ॥ १२ ॥

पदच्छेदः

क धर्मः क च वा कामः क
च अर्थः क विवेकता इदम् कृतम्
इदम् न इति द्वन्द्वेः मुक्तस्य योगिनः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

इदम् = यह

कृतम् = किया गया है

इदम् = यह

न कृतम् = नहीं किया
गया है

इति = इस प्रकार

द्वन्द्वैः = द्वन्द्वसे

मुक्तस्य = छूटे हुये

योगिनः = योगी को

धर्मः = धर्म

अन्वयः शब्दार्थ

क = कहाँ है

वा = और

कामः = काम

क = कहाँ है

च = और

अर्थः = अर्थ

क = कहाँ है

च = और

विवेकता = विचार

क = कहाँ है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं स्थिरचित्तशतं योगी को
धर्म काम और अर्थ है साथ ही प्रयास नहीं क-
रता है और इस काम को भन कर दिया या हुआ
में कस्सा इस प्रकार है द्वन्द्व से जो योगी है
वही जीवन्मुक्त योगी है ॥ १२ ॥

मूलम् ॥

कृत्यं किमपि न एव न कापि हृदि

जना ॥ यथाजीवनमेवैह जीवन्मुक्त
स्ययोगिनः ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ॥

कृत्यम् किम् अपि न एव न
का अपि हृदि रंजना यथा जीव-
नम् एव इह जीवन्मुक्तस्य योगिनः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
जीवन्मु- } जीव-
क्तस्य } = न्मुक्त

योगिनः = योगीको

कृत्यम् = कर्तव्य कर्म

किम्अ- } कुछ भी
पिनएव } = नहीं है

च = और

न = न

हृदि = मन में

काअपि = कोई

अन्वयः शब्दार्थ
रंजनाअपि=अनुराग-
ही है

इह = इससंसार
में

यथा = जैसे

जीवनम् = जीवनहै

वैसाही

है याने

एव = { उसका

भोगक-

मानुसा

रहै

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सर्वसंकल्प	संपूर्ण	मोहः	= मोहदे
सीमायाम्	संकल्पो	च	= और
	कीसीमा	फ	= कदा
	में याने	विरचम्	= संसारदे
	आत्म	फ	= कदा
	ज्ञानविषे	तत्	= वह
विश्रान्तस्य	= विश्रान्त	ध्यानम्	= ध्यानदे
	हुये	वा	= और
योगिनः	= योगी को	फ	= कदा
फ	= कदा	मुक्ता	= मुक्तिदे

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त के सब संकल्प नष्टहोजाते हैं इन से उसको मोहभी किसी पदार्थ में नहीं रहता है इन से उसकी दृष्टि में जगत् भी नहीं प्रतीत होता है और वह ध्यानकी तथा मुक्तिकी दृष्टा करता है क्योंकि उसके मनकी पुरना कोई भी धार्य ना रही है ॥ १४ ॥

किंकुस्ते =	<div> <div>क्याकर-</div> <div>ताहैयाने</div> <div>कुछभी</div> <div>नहींकर-</div> <div>ताहै</div> </div>	<div> <div>पश्यन् = देखताहु-</div> <div>आ</div> <div>अपि = भी</div> <div>नपश्यति = नहींदेख-</div> <div>ताहै</div> </div>
-------------	---	--

सः = वह

भावार्थ ॥

जिसने इस विश्वको याने जगत् को देखा है वह यह नहीं कहसका है कि जगत् है नहीं क्योंकि उस को जगत् होने और न होने की वासना बनी है और जो निर्वासनिक पुरुष है वह जगत् को देखता हुआ भी नहीं देखता है क्योंकि वह सुषुप्तियुक्त पुरुष की तरह मनके संकल्प और विकल्प से रहित है ॥ १५ ॥

मूलम् ॥

येन दृष्टं परंब्रह्म सोऽहं ब्रह्मेति
चिन्तयेत् ॥ किंचिन्तयतिनिश्चिन्तो
द्वितीयं यो नपश्यति ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ॥

येन दृष्टम् परम् ब्रह्म सः अहम्

ब्रह्म इति चिन्तयेत् किम् चिन्तयति
निश्चिन्तः द्वितीयम् यः न पश्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
येन=जिस पुरुष	यः=जो पुरुष
करके	निश्चिन्तः=निश्चिन्त
परम्=श्रेष्ठ	हुआ
ब्रह्म=ब्रह्म	द्वितीयम्=दूसरे को
दृष्टम्=देखा गया है	न पश्यति=नहीं देखता
सः अहम्=सो मैं ब्रह्म हूं	है
इति=ऐसा	सः=वह
चिन्तयेत्=विचार करे	किञ्चिन्त / क्या चिन्ता
	यति / करेगा

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं जिस पुरुष ने मय में अलग ब्रह्मको देखा है उसीको ऐसा अनुभव है "अहं ब्रह्म" मैं ब्रह्म हूं ॥ उसीको सारा जगत् ब्रह्मरूप दिग्राई देता है और वह सर्वचिन्ता में रहित हुआ २ कुछ भी चिन्तन नहीं करता है और जो ब्रह्मको चिन्तन है कि मैं ब्रह्म हूं उसको भी वह अभ्यास नहीं करता है ॥ १५ ॥

मूलम् ॥

दृष्टोयेनात्मावेक्षपो निराधं कुरु
तेत्वसो ॥ उदारस्तु न विक्षितः सा
ध्याभावात्करोतिकिम् ॥ १७ ॥

पदब्धेदः ॥

दृष्टः येन आत्मविशेषः निरोधम्
कुरुते तु असौ उदारः तु न विक्षितः
साध्याभावात् करोति किम् ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
येन=जिस पुरुष	करके	करोति=करता है	तु=परन्तु
आत्मवि } क्षेपः }	आत्मा विषे विक्षेप	उदारः=ज्ञानी पुरुष	तु=तु
दृष्टः=देखा गया है		न विक्षितः=विधेयर-	हित है
असौ=वह पुरुष		अनःएव=इसलिये	
निरोधम्=विचकेनि-			
रोधको			

साध्या	}	साध्य के =अभावहोने के कारण		किम्=क्या
भावात्				करोति
सः=वह				{ करैगा य =कुछ भी करैगा

भावार्थ ॥

जिस पुरुषने अपने में विक्षेपों को देखा है वह विक्षेपोंके दूरकरने के लिये चित्तके निरोधकी चिन्ता को करता है जिसको विक्षेप कोई नहीं रहा है वह विक्षेपके दूरकरने के लिये चित्तका निरोध भी नहीं करता है ॥ १७ ॥

मूलम् ॥

धीरोलोकविपर्यस्तोवर्त्तमानोऽपि
लोकवत् ॥ नसमाधिर्नविक्षेपंनलेपं
स्वस्यपश्यति ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ॥

धीरः लोकविपर्यस्तः वर्त्तमानः
अपि लोकवत् न समाधिम् न विक्षे-
पम् न लेपम् स्वस्य पश्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
धीरः=ज्ञानीपुरुष	न=न
लोकवि } लोक विपे	स्वस्य=अपने
पर्यस्तः } =विक्षेपरहि-	समाधिम्=समाधिक
	न=न
त हुआ	विक्षेपम्=विक्षेपको
च=और	च=और
लोकवत्=लोककीत-	न=न
रह	लेपम्=बंधनको
वर्तमानः } वर्तता हुआ	पश्यति=देखता है
अपि } =आ भी	

भावार्थ ॥

जो विद्वान् है वह लोकों में विक्षेप से रहित हो कर प्रारब्धवशात् लोकों में रहकरके बाधिता अनुवृत्ति करके व्यवहारको करताहुआ भी अपने आत्मामें निर्लेप स्थित है क्योंकि न वह समाधि करता है और न विक्षेप को प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

मूलम् ॥

भावाभावविहीनो यस्तृप्तोनिर्वास

नोबुधः ॥ नैवकिञ्चित्कृतंतेनलोक
दृष्ट्याविकुर्वता ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ॥

भावाभावविहीनः यः तृप्तः निर्वाप्त-
नः बुधः न एव किञ्चित् कृतम् तेन
लोकदृष्ट्या विकुर्वता ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यः=जो		लोकदृष्ट्या=लोकदृष्टि	
तृप्तः=तृप्तहुआ		मैं	
बुधः=ज्ञानी		तेन=उस	
भावाभा } भाव और		कुर्वता=कियेहुये	
वविहीनः } =अभाव से		करके	
	रहित है	किञ्चित् } =कुछ भी	
च=और		एव } =नहीं	
निर्वाप्तनः=वासना-रहित है		नकृतम् =नहीं किया गया है	

भावार्थ ॥

जो विद्वान् अपने आत्मानन्द करके ही तृप्त है वह

स्तुति और निंदाआदिकों से रहित है क्योंकि यह लोकदृष्टि से कर्त्ता हुआ भी अकर्त्ता है आत्म-ज्ञान करके उसके कर्त्तृत्वादि अभ्यास सब नाश होगये हैं ॥ १९ ॥

मूलम् ॥

प्रवृत्तौवानिवृत्तौवा नेवधीरस्यदुर्ग्रहः ॥ यदायत्कर्तुमायाति तत्कृत्वातिष्ठितःसुखम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ॥

प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा न एव धी-
रस्य दुर्ग्रहः यदा यत् कर्तुम् आयाति
तत् कृत्वा तिष्ठतः सुखम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यदा = जब कभी

यत् = जो कुछ

कर्म

कर्तुम् = करने को

आयाति = आपड़ताहै

अन्वयः शब्दार्थ

तत् = उसको

सुखम् = सुखपूर्वक

कृत्वा = करके

तिष्ठतः = समाधिस्थ

नोबुधः ॥ नैवकिञ्चित्कृतंतेनलोक
दृष्ट्याविकुर्वता ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ॥

भावाभावविहीनः यः तृप्तः निर्वास-
नः बुधः न एव किञ्चित् कृतम् तेन
लोकदृष्ट्या विकुर्वता ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यः=जो

तृप्तः=तृप्तहुआ

बुधः=ज्ञानी

भावाभा } भाव और
वविहीनः } =अभाव से
रहित है

च=और

निर्वासनः=वासना-
रहित है

अन्वयः शब्दार्थ

लोकदृष्ट्या=लोकदृष्टि
में

तेन=उस

कुर्वता=कियेहुये
करके

किञ्चित् } =कुछ भी
एव }

नकृतम् = नहीं किया
गया है

भावार्थ ॥

जो विद्वान् अपने आत्मानन्द करकेही तृप्त है वह

स्तुति और निंदाआदिकों से रहित है क्योंकि वह लोकदृष्टि से कर्त्ता हुआ भी अकर्त्ता है आत्म-ज्ञान करके उसके कर्त्तृत्वादि अध्यास सब नाश होगये हैं ॥ १९ ॥

मूलम् ॥

प्रवृत्तौवानिवृत्तौवा नैवधीरस्यदुर्ग्रहः ॥ यदायत्कर्त्तुमायाति तत्कृत्वातिष्ठितःसुखम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ॥

प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा न एव धी-
रस्य दुर्ग्रहः यदा यत् कर्त्तुम् आयाति
तत् कृत्वा तिष्ठतः सुखम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यदा = जब कभी

यत् = जो कुछ
कर्म

कर्त्तुम् = करने को

आयाति = आपड़ताहै

अन्वयः शब्दार्थ

तत् = उसको

सुखम् = सुखपूर्वक

कृत्वा = करके

तिष्ठतः = समाधिस्थ

धीरस्य = ज्ञानीपुरुषको	निवृत्तौ = निवृत्ति में
प्रवृत्तौ = प्रवृत्ति में	दुर्ग्रहः = दुराग्रह
वा = अथवा	नएव = कभीनहींहै

भावार्थ ॥

विद्वान्को प्रवृत्ति में और निवृत्तिमें कोई आग्रह याने हठ नहीं है क्योंकि वह कर्तृत्वादि अभिमान से रहित है यदि प्रारब्धके वशसे विद्वान्को प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति करने को पड़जाव तब वह सुखपूर्वक उनको करता है और असंग भी बनारहता है क्योंकि उसको कर्तृत्वादिकों का अभिमान नहीं है ॥ २० ॥

मूलम् ॥

निर्वासनोनिरालम्बः स्वच्छन्दो मुक्त
वन्धनः ॥ क्षिप्तः संसारवातेन चेष्टतेशु
ष्कपर्णवत् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ॥

निर्वासनः निरालम्बः स्वच्छन्दः मु-
क्तवन्धनः क्षिप्तः संसारवातेन चेष्टते
शुष्कपर्णवत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
निर्वासनः=वासना- हित	संमात्वा = प्रारब्धरू- पी परन तन करके
नेरालम्बः=आलम्बर- हित	सिद्धः = प्रेराहुआ
वञ्चन्दः=स्वेच्छाचारी	शुक्लः = सत्त्व पक्षे
क्रवन्धनः=वन्धनरहित	एवंत् = की तरह
ज्ञानिनः=ज्ञानी	चेष्टने = चला कर- ता है

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ यदि ज्ञानी निर्वासन है तब वह किम
करके प्रेराहुआ कर्मों को करता है ॥ उत्तर ॥ ज्ञानी जिन
तु करके निर्वासन है उसी हेतु करके वह निरा-
लम्ब भी है अर्थात् कर्तव्यताका जो अनुसंधान याने
रहित है उससे वह रहित है और स्वच्छन्द भी है
जाने वह राग द्वेषादिकों के आर्षान नहीं है और वं-
का हेतु जो अज्ञान है उससे रहित है जैसे मूला
चा वायुकरके प्रेराहुआ इधर उधर डोलता है
वैसेही ज्ञानी प्रारब्धरूपी वायुकरके चलायहुआ
धर उधर फिरता है ॥ २१ ॥

मूलम् ॥

असंसारस्य तु कः अपि न हर्षः
न विषादता सः शीतलमनः नित्यम्
विदेहः इव राजते २२ ॥

पदच्छेदः ॥

असंसारस्य तु कः अपि न हर्षः
न विषादता सः शीतलमनः नित्यम्
विदेहः इव राजते ॥

अन्वयः शब्दार्थ
असंसारस्य=ज्ञानीको

न = न

तु = तो

क अपि = कभी

हर्षः = हर्ष है

च = और

न = न

विषादता = शोक है

अन्वयः शब्दार्थ

सः = वह

शीतल } शान्त मन
मनः } = वाला

नित्यम् = सदा

विदेहः इव = मुक्तकी तरह

राजते = शोभायमान

रहता है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! ज्ञानी संसारसे हित है संसारका हेतु याने कारण अज्ञान जिसमें न है उसीका नाम असंसारी है और हर्ष विषादादि भी उसमें नहीं उत्पन्न होते हैं इसी से वह शीतलहृदय : ओर विदेहमुक्त की तरह बह रहता है ॥ २२ ॥

मूलम् ॥

कुत्रापि न जिहासाऽस्ति आशा वाऽ
पे न कुत्रचित् ॥ आत्मारामस्य धीरस्य
शीतलाच्छतरात्मनः ॥ २३ ॥

पदच्छेदः ॥

कुत्र अपि न जिहासा अस्ति आशा
वा अपि न कुत्रचित् आत्मारामस्य
धीरस्य शीतलाच्छतरात्मनः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्मा	{ आत्मामें रमण कर- नेवाले	शीतला	{ शीतल ओर अति निर्मल चित्तवाले
रामस्य		च्छतरा- त्मनः	

धीरस्य = ज्ञानीको	वा अपि = ओर
न = न	न = न
कुत्रापि = कहीं	कुत्रचित् = कहीं
जिहामा = त्यागकी	आशा = ग्रहणकी
इच्छा	इच्छा
अस्ति = है	अस्ति = है

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! अपने आत्मामेंही जो नित्य रमण करनेवाला है उसका चित्तभी स्थिर रहता है उसकी इच्छा किसी पदार्थ के ग्रहण और त्याग विषे नहीं रहती है ॥ और न वह अनर्थ को करता है क्योंकि अनर्थ का हेतु उसमें बाकी नहीं रहा है ॥ २३ ॥

मूलम् ॥

प्रकृत्याशून्यचित्तस्य कुर्वतोऽस्य
यदृच्छया ॥ प्राकृतेस्येवधीरस्य नमा
नोनावमानतां ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ॥

प्रकृत्या शून्यचित्तस्य कुर्वतः अस्य
यदृच्छया प्राकृतस्य इव धीरस्य न मानः
न अवमानता ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
प्रकृत्या =	स्वभावसे	धीरस्य =	ज्ञानी को
यदृच्छया =	प्रारब्धव-	न =	न
	शकरके	मानः =	मान है
प्राकृतस्य =	अज्ञानीकी	च =	और
इव =	तरह	न =	न
कुर्वतः =	करता हुआ		
अस्य =	इस		
शून्य	{ विकाररहि-	अवमानता =	अपमा-
चित्तस्य	{ तचित्तवाले		नहै

भावार्थ ॥

स्वभाव सेही जिसका चित्त शून्य है अर्थात् वि-
ही होता है अपने
... .. हुआ है ऐसा जो ज्ञान-
नान् गुण है वह अज्ञानी की तरह प्रारब्धवश से चेष्टा

और अशुभकर्म करने से उसके चित्तमें भय और लज्जा नहीं होती है और व्यभिचारकर्म करनेके लिये वह प्रयत्न नहीं करता है जिस पुरुष का स्त्री आदिकों में राग होता है और जो उसके संगमें आनन्द मानता है वही अज्ञानी व्यभिचारके लिये प्रयत्न करता है जिस पुरुषका कभी मिथ्री खानेको नहीं मिली है और न उसके रसको जानता है वही गुड़ या रावके खाने के लिये यत्न करता है जिसको नित्यही मिथ्री खानेको मिलती है वह कदापि गुड़के रसके लिये यत्न नहीं करता है जो नीमका कीट है या विषेका कीड़ा है वह मिथ्री के स्वादको नहीं जानता है अज्ञानीपुरुष विष्टारूपी विषयानन्दका स्वादलेनेवाला है ज्ञानवान् आत्मानन्दरूपी मिथ्री के स्वादका लेनेवाला है इसवास्ते अज्ञानी ज्ञानीके आनन्दको नहीं जान सकता है ॥ २५ ॥

मूलम् ॥

अतद्वादीवकुर्वते नभवेदपिबालि
शः ॥ जीवन्मुक्तः सुखी श्रीमान् संसर
न्नपिशोभते ॥ २६ ॥

पदच्छेदः ॥

अतद्वादी इव कुरुते न भवेत् अपि
वालिशः जीवन्मुक्तः सुखी श्रीमान् सं-
सरन् अपि शोभते ॥

अन्वयः शब्दार्थः

अतद्वादी = { उलटा याने
वरखिलाफ
उस कहने
इव = { वाले की त-
रह कि

अहंइदं कार्यं न करिष्यामि = { मैं इस का-
र्य को न-
हीं करूँ-
गा

जीवन्मुक्तः = ज्ञानी
कुरुते = कार्य को
करता है

अपि = तौभी
वालिशः = मूर्ख

अन्वयः शब्दार्थः

न भवेत् = { नहीं होवे
याने मोह
को नहीं
प्राप्त होता
है

अतएव = इसी लिये
संसरन् = व्यवहार को
करता हुआ

सः = वह

सुखी = सुती

श्रीमान् = शोभाय-
मान

शोभते = शोभा को
प्राप्त होता है

भावार्थ ॥

मैं इस कार्य को करूँगा ऐसा न कहना ।
जीवन्मुक्त प्राग्भवशः स कार्यं हा करता है
बालक की तरह वह मूर्खों नही हों ॥ २५ ॥ हमारा
व्यवहारको करना हुआ भी वह प्रसन्न शान्ति
वाला शोभायमान प्रतीत होना है ॥ २६ ॥

मूलम् ॥

नानाविचारसुश्रान्तो धीर्गो विश्रान्ति
मागतः ॥ न कल्पते न जानाति न शृणो
ति न पश्यति ॥ २७ ॥

पदभेदः ॥

नानाविचारसुश्रान्तः धीरः विश्रा-
न्तिम् आगतः न कल्पते न जानाति
न शृणोति न पश्यति ॥

अन्यः	सन्दर्भः	अन्यः	सन्दर्भः
यतः	= तिमिराण	धीरः	= धानी
जाना	(देवदेवि-	विश्रान्तिम्	= शान्ति छो
। पर	= चाग्नेनि-	आगतः	= प्राप्तता है
पेशां	= निद्रा	अपश्य	= अभी क्षण

सः = वह	न शृणोति = न सुन-
न कल्पते = न कल्पना	ताहै
करता है	
न जानाति = न जान-	न पश्यति = न देख-
ताहै	ताहै

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! नाना प्रकारके विचारों से रहित हुआ २ ज्ञानी अन्तरात्मा विप्रेही शान्तिको प्राप्त रहता है वह संकल्पादिक मनके व्यापारों को नहीं करता है और न बुद्धिके व्यापारों को करता है और न वह इन्द्रियों के व्यापारों को करता है क्योंकि उसमें कर्तृत्वादिकों का अविमान नहीं है ॥ २७ ॥

मूलम् ॥

असमाधेरविक्षेपान्न मुमुक्षुर्नचे
तरः ॥ निश्चित्यकल्पितम्पश्यन् ब्रह्म
वास्तेमहाशयः ॥ २८ ॥

पदच्छेदः ॥

असमाधेः अविक्षेपात् न मुमुक्षुः न

च इतरः निश्चित्य कल्पितम् पश्यन्
ब्रह्म एव आस्ते महाशयः ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
महाशयः = ज्ञानी	निश्चित्य = निश्चयक-
असमाधेः = समाधि-	स्के
हितहोनेसे	इदम्सर्वम् = इस सब
मुमुक्षुःन = मुमुक्षुनहींहै	जगत्को
च = और	कल्पितम् = कल्पित
अविक्षेपात् = द्वैतभ्रमके	पश्यन् = समझता
अभाव से	हुआ
इतरःत = बद्धनहीं है	ब्रह्मण्व = ब्रह्मवत्
परन्तु = परन्तु	आस्ते = स्थितगहनाहै

भावार्थ ॥

ज्ञानी मुमुक्षु नहीं होता है क्योंकि विक्षेप की निवृत्ति के लिये मुमुक्षु समाधि को करता है ज्ञानी में विक्षेप है नहीं इसी लिये वह समाधि को नहीं करता है उसमें बन्ध भी नहीं है क्योंकि द्वैतभ्रम उस का नष्ट हो गया है जिसको द्वैतभ्रम होता है उसी को

बंध भी होता है ॥ प्रश्न ॥ फिर वह ज्ञानी कैसा है ॥ उत्तर ॥ वह ब्रह्मरूप है क्योंकि संपूर्ण जगत् उसको पूर्वही से कल्पित प्रतीत होता है पश्चात् वह बाधितानुश्रुति करके जगत् को देखता है इसी कारण वह निर्धिकार चित्तवाला ही होता है ॥ २८ ॥

मूलम् ॥

यस्यान्तःस्यादहंकारो न करोतिक
रोतिसः ॥ निरहंकारधीरेण न किञ्चिद
कृतंकृतम् ॥ २९ ॥

पदच्छेदः ॥

यस्य अन्तः स्यात् अहंकारः न
करोति करोति सः निरहंकारधीरेण न
किञ्चित् अकृतम् कृतम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यस्य = जिसके

अन्तः = अन्तःकर-

णमें

अन्वयः शब्दार्थ

अहंकारः = अहंकारका

अध्यात

स्यात् = हे

मः = बह	यद्यपिलो = यद्यपिलो-
+ यद्यपि = यद्यपि	कदृष्ट्या = क दृष्टिमे
+ लोक = (लोकदृष्टि	न किञ्चित् = कुछ भी
दृष्ट्या =) कर्मके	नहीं
न कगेति = नहीं कर्म	कृतम् = किया गया है
कर्ता है	
तुअपि = तोभी	तथापि = तथापि
मनमेंमङ्क-	
करोति = : ल्पादिकर्म	स्वदृष्ट्या = अपनी
(कर्ता है	दृष्टि में
निरहंका = { अहंकार	तत् = वह
रधीणे = { रहितज्ञानी	कृतम् = किया गया है
(कर्मके	

भावार्थ ॥

प्रश्न ॥ ममारको देखताहुआभी वह कर्म करता है
होमका है ॥ उत्तर ॥ जिस पुरुष को अहंकार में
हकार का अभ्यास होता है वह लोकदृष्टि कर्म न
करताहुआभी मकल्पादिकाको करता ॥ १॥ १४ ॥
जसा म्वाकर धृती लगाकर मोन साकर चलाता है
तय लोक कहते है यह वाचाजी कुछ नहीं करता है

पर वह भीतर मन में संकल्प करतारहता है कि कोई बड़ा आदमी आवै तो भांग चूटी का कामचलै इस तरह से ज्ञानी का व्यवहार नहीं होता है उसको भीतर से ही संकल्प विकल्प नहीं करते हैं इसी वास्ते वह कर्तृत्वादि अभ्यास से रहित है ॥ २९ ॥

मूलम् ॥

नोद्विग्नं न च संतुष्टम् अकर्तृस्पन्दवर्जितम् ॥ निराशं गतसंदेहं चित्तं मुक्तस्य राजते ॥ ३० ॥

पदच्छेदः ॥

न उद्विग्नम् न च संतुष्टम् अकर्तृस्पन्दवर्जितम् निराशम् गतसंदेहम् चित्तम् मुक्तस्य राजते ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
मुक्तस्य =	ज्ञानी का	निराशम् =	आशार-
अकर्तृ	{ कर्तृत्वरहि- त और सं- कल्प विक- ल्परहित	हित	
स्पन्द =		गतसंदेहम् =	संदेह
वर्जितम्			रहित

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
निनिः = ज्ञानी का	किन्तु = परन्तु
यत् = जो	इदम् = वह चित्त
चित्तम् = चित्त है	निनिमित्तम् = संकल्प-
तत् = वह	रहित
निष्क्रिय	
निष्क्रिय - भावमें स्थित	निष्क्रियति = निश्चल
तुम् = होने को	स्थिरहोनाहै
अपि = अथवा	च = और
चेष्टुम् = चेष्टा करनेको	विचेष्टते = { नानाप्रकार
प्रवर्तने = नहीं प्रवृत्त	{ की चेष्टाको
होता है	{ करता है

भावार्थ ॥

अष्टावक्र जी कहते हैं जिस ज्ञानीका चित्त न-
ान्वयिकल्परूपी चेष्टा करने में प्रवृत्त नहीं होता
वह चित्त के निश्चल शुद्ध होने से अपने स्वरूप
स्थिर होता है ॥ ३१ ॥

मूलम् ॥

तत्त्वं यथार्थमाकर्ण्य मन्दः प्राप्नोति

ताम् = { संशय विपर्यय याने व्यवहारको } + बाह्यदृष्ट्या = बाह्यदृष्टि से प्राप्नोति = प्राप्त होना है

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! मन्दपुरुष तत् और त्वंपद के कल्पित भेद को श्रुति से श्रवण करके भी संशय विपर्यय के कारण मूढ़ताको ही प्राप्त होता है अथवा तत् और त्वंपद के अभेद अर्थ के जानने के लिये समाधि को लगाता है परन्तु हजारों में कोई एक पुरुष अंतर से शान्तविचयाला होकर बाहर से मूढ़वत् व्यवहार करता है ॥ १२ ॥

मूलम् ॥

एकाग्रतानिरोधोवा मूढेरभ्यस्य
तेभृशम् ॥ धीराः कृत्यं न पश्यन्ति सुप्त
वत्स्वपदे स्थिताः ॥ ३३ ॥

पदञ्जेदः ॥

एकाग्रता निरोधः वा मूढेः अभ्यस्य-
स्थते भृशम् धीराः कृत्यम् न पश्यन्ति
सुप्तवत् स्वपदे स्थिताः ॥

नहीं देखता है क्योंकि वह अपने स्वरूप में ही स्थित है ॥ ३३ ॥ मूलम् ॥

अप्रयत्नात्प्रयत्नाद्वा मूढेनाप्नोतिनिर्वृतिम् ॥ तत्त्वनिश्चयमात्रेण प्राज्ञो भवतिनिर्वृतः ॥ ३४ ॥

पदच्छेदः ॥

अप्रयत्नात् प्रयत्नात् वा मूढः न आप्नोति निर्वृतिम् तत्त्वनिश्चयमात्रेण प्राज्ञः भवति निर्वृतः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
मूढः =	अज्ञानीपुरुष	न आप्नोति =	नहीं प्राप्त होता है
अप्रयत्नात् =	चित्त के निरोधसे	प्राज्ञः =	ज्ञानीपुरुष
वा =	अथवा	तत्त्व	केवलतत्त्व
प्रयत्नात् =	कर्मानुष्ठानसे	निश्चय-मात्रेण	के निश्चय करनेसे ही
निर्वृतिम् =	परमसुख	निर्वृतः =	रुतार्थ
		भवति =	होता है

भाषा १ ।

जिम पुरुष का ईश्वर को पश्यना का निश्चय नहीं है वही पुरुष मुख्य रूप से २ वर पुरुष चाहै चित्तको निरादम्बता सम ईश्वर पर रखा कर्मा के अनुष्ठान का कर वर करके अनुष्ठानको नहीं प्राप्त होता है क्योंकि आनन्द का अनु जो आत्माका अनुभव वह उसका इन्द्रिय और वा विद्वान ज्ञानी है वह न समाधि का आनन्द कमा सके करता है निर्वृतिको याने निर्यमुखको प्राप्त होता है क्योंकि उसको कुछ कर्तव्य बाकी नहीं रहता है ॥ गीताम भी कहाँ है ॥ यस्यात्मगतिरेवम्यादात्मनृपयमानव ॥ आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्येन विद्यते ॥ १॥ आत्मा म ही जिसकी गति है और अपने आत्मानन्द करेहो जा तूम है आत्मा में ही जो संतुष्ट है बाहर के परमा में जिसको ताप नहीं है उसका बोझ भी कर्तव्य बाकी नहीं रहा है ॥ ३४ ॥

मूलम् ॥

शुद्धम्बुद्धिप्रियम्पूर्णं निष्प्रपञ्चं नि
रामयम् ॥ आत्मानंतं न जानन्ति तत्रा
भ्यासपराजनाः ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः ॥

शुद्धम् बुद्धम् प्रियम् पूर्णम् निष्प्रव-
श्चम् निरामयम् आत्मानम् तम् न
जानन्ति तत्र अभ्यासपराः जनाः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
तत्र = इस संसार		पूर्णम् = पूर्ण	
विषे		निष्प्रवश्चम् = प्रपञ्चरहित	
अभ्यासपराः = अभ्यासी		च = और	
जनाः = मनुष्य		निरामयम् = दुःखरहित	
तम् = उस		आत्मानम् = आत्माको	
शुद्धम् = शुद्ध		न जानन्ति = नहीं जा-	
बुद्धम् = नेतन्य		नते हैं	
प्रियम् = प्रिय			

भावार्थ ॥

जगत् में कर्मादिकोंके अभ्यासपरायण जो अज्ञानी पुरुष हैं वह उस आत्मा को नहीं जानते हैं जो शुद्ध है अर्थात् जो मायामल से रहित है जो स्वप्रकाश है जो परिपूर्ण है जो प्रपञ्च से रहित है और जो दुःख के सम्बन्ध से भी रहित है ॥ १५ ॥

जन है वह कर्मोकरके याने योगाऽभ्यासरूप कर्मो
करके कदापि भी मोक्षको नहीं प्राप्त होते हैं॥तथाचा॥
नकर्मणान्नप्रजयान्नधनेन ॥ कर्मो करके प्रजा करके
धन करके पुरुष मोक्षको कदापि प्राप्त नहीं होता है
परन्तु जिसका अधिग्रहण दूर होगयाहै वह केवल
विज्ञानमात्र करके मोक्षको प्राप्त होजाता है ॥ ३६ ॥

मूलम् ॥

मूढोनाप्नोति तद्ब्रह्म यतोभवितुमि
च्छति ॥ अनिच्छन्नपि धीरोहि परब्रह्म
स्वरूपभाक् ॥ ३७ ॥

पदच्छेदः ॥

मूढः न आप्नोति तत् ब्रह्म यतः
भवितुम् इच्छति अनिच्छन् अपि धीरः
हि परब्रह्मस्वरूपभाक् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यतः=जिसकारण

मूढः=अज्ञानी

ब्रह्म = ब्रह्म

अन्वयः शब्दार्थ

भवितुम् = होने को

इच्छति = इच्छा क-

रता है

ततः = उसीकारण:-

हि = निर्णय

सः = वह

कगके

तव = उसकोयाने

अनिच्छ ।

नहीं चाहें

ब्रह्मको

न् आपि ।

ताहुवाभा

तत्राप्येति = नदी प्राप्त

परमहंस्य

परमहंसः

होता है

रूपभाक्

जनन्याला

होना है

धीरः = ज्ञानी

भवति = होता है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक ! अशानी मृदु
चित्तके निगंघ कर्मे में ब्रह्मरूप ज्ञान की इच्छा क-
रता है इसीवास्ने वह ब्रह्मका नहीं प्राप्ति प्राप्त होता और
जिम धारने अपने को ज्ञानी निश्चय समझता है
वह मोक्षकी नहीं इच्छा करना हुआ मोक्षका प्राप्ति
होता है॥ ३० ॥

मृन्म ॥

निराधाराग्रद्वयग्रा मृदाः समग्रं
पक्वाः ॥ एतस्यानर्थमृत्तम्य मृत्तञ्च
दः कृत्वा वृत्तेः ॥ ३ = ॥

पदच्छेदः ॥

निराधाराः ग्रहव्यग्राः मूढाः संसार-
पोषकाः एतस्य अनर्थमूलस्य मूल-
च्छेदः कृतः बुधेः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
निराधाराः=आधार-
हित

ग्रहव्यग्राः = दुग्धप्रती

मूढाः = अज्ञानी

संसारपो- (संसार के
षकाः = पोषण कर-
(नेवाले हैं

एतस्य = इस

अन्वयः शब्दार्थ -
अनर्थम् (अनर्थरूप
लस्य (मूलवाले
संसारस्य = संसार के
मूलच्छेदः = मूलका
नाश

बुधेः = ज्ञानियों
करके

कृतः = किया गया
है

भावार्थ ॥

जो मूढ़ अज्ञानी है उसको ऐसा खयाल है कि मैं
वेदांतशास्त्र और आत्मवित्त गुरुके आधार के बिना
ही केवल चित्त के निरोध से ही मोक्ष को प्राप्त हो-
जाऊंगा ऐसा दुराग्रहपुरुष संसार से छुड़ानेवाला

जो ज्ञान है उससे पराङ्मुख होता है इस संसार के
मूलाज्ञान को वह छेदन नहीं कर सकता है ॥ ३८ ॥

मूलम् ॥

न शान्तिं लभते मूढो यतः शमितुमि-
च्छति ॥ धीरस्तत्त्वं विनिश्चित्य सर्व-
दा शान्तमानसः ॥ ३९ ॥

पदच्छेदः

न शान्तिम् लभते मूढः यतः शमि-
तुम् इच्छति धीरः तत्त्वं विनिश्चि-
त्य सर्वदा शान्तमानसः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
यतः = जिस कारण
शमितुम् = शान्त होने
को
मूढः = अज्ञानी
इच्छति = इच्छा क-
रता है

अन्वयः शब्दार्थ
ततः = तिसी कारण
सः = वह
शान्तिम् = शान्तिको
न लभते = नहीं प्राप्त
होता है
धीरः = ज्ञानी

तत्त्वम् = तत्त्वको	सर्वदा = सर्वदा
विनिश्चित्य = निश्चयकरके	शान्तमा = शान्तमन
	नसः = वाला है

भावार्थ ॥

अष्टादश्यां कहते हैं हे जनक ! मूढ़ अज्ञानी जिस हेतु चित्तके निरोध से शान्ति की इच्छा करता है इसीधारे वह शान्ति को नहीं प्राप्त होता है और धीर जो है सो आत्मतत्त्व को निश्चयकरके शान्ति की इच्छा नहीं करता है इसीलिये शान्ति को प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥

मूलम् ॥

कात्मनोदर्शनंतस्य यद्दृष्टमवलम्ब्य
ते ॥ धीरास्तंतं न पश्यन्ति पश्यन्त्या
त्मानमव्ययम् ॥ ४० ॥

पदच्छेदः ॥

क आत्मनः दर्शनम् तस्य यत्
दृष्टम् अवलम्ब्यते धीराः तम् तम्
न पश्यन्ति पश्यन्ति आत्मानम् अ-
व्ययम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
तस्य = उस को	धीराः = ज्ञानी
आत्मनः = आत्माका	तन्मन् = उस
दर्शनम् = दर्शन	दृष्टम् = दृष्टको
क = कहां है	नपश्यन्नि = नहीं देखने
यत् = जो	पग्नु = पग्नु
दृष्टम् = दृष्टको	अव्ययम् = अविनाशी
अवलम्बने = अवलम्बन	आत्मानम् = आत्माको
करना है	पश्यन्नि = देखने हैं

भावार्थ ॥

जो अज्ञानी पुरुष है वह प्रत्यक्षप्रमाणों को ही जाने हुये पदार्थों को सम्यक् रूप करके मानता है इसी कारण उसको आत्मदर्शन कदापि प्राप्त नहीं होता है और जो ज्ञानी है वह दीम्बने हुये पदार्थों को नहीं देखता है किन्तु उनके अन्तर्गम कारणशक्ति सर्वत्र चिद्रूप आत्मा को ही देखता है इसी कारण वह परमात्मा में सदा लीन रहता है और कार्यरूपी बाह्य पदार्थ उसको कोई भी दिग्गद् नहीं देता है ॥ ४० ॥

मूलम् ॥

क निरोधो विमूढस्य यो निर्वन्धं करो
ति वै ॥ स्वारांमस्यैव धीरस्य सर्वदाऽसा
व कृत्रिमः ॥ ४१ ॥

पदच्छेदः

क निरोधः विमूढस्य यः निर्वन्ध-
म् करोति वै स्वारांमस्य एव धीरस्य
सर्वदा असौ अकृत्रिमः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यः = जो

निर्वन्धम् = चित्तके नि-
रोधको

वै = हउ करके

करोति = करता है

तस्य = उस

विमूढस्य = अज्ञानीको

क = कहाँ

निरोधः = चित्तका नि-
रोध है

अन्वयः शब्दार्थ

स्वारांमस्य = अज्ञानात्मान

धीरस्य = ज्ञानीको

सर्वदा = सदैवकाल

एव = निश्चयकरके

असौ = यह

चित्तनिरोधः = चित्तका

निरोध

अकृत्रिमः = स्वाभाविक

है

भावार्थ ॥

जो अज्ञानी पुरुष शुष्कचित्त के निरोध में हठ करता है उसका चित्त कभी निरोध नहीं होता है अज्ञानीही चित्तके निरोधके लिये समाधि लगाता है जब समाधि से वह उत्थान होता है तब फिर उसका चित्त संसारके पदार्थों में फैल जाता है और जो आत्मामें रमणकरनेवाला योगी है जिसका चित्त निश्चल है उसका चित्त सर्वदाकाल आत्मामेंही निरुद्ध रहता है इसीकारण सर्वदाकाल समाधि उसकी बनी रहती है ॥ ४१ ॥

मूलम् ॥

भावस्य भावकः कश्चिन्न किञ्चिद्भाव
कोऽपरः ॥ उभयाऽभावकः कश्चिदेवमेव
निराकुलः ॥ ४२ ॥

पदव्येदः ॥

भावस्य भावकः कश्चित् न किञ्चित् भावकः अपरः उभयाऽभावकः कश्चित् एवम् एव निराकुलः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
 कश्चित् = कोई
 भावस्य = भावका
 भावकः = माननेवा-
 ला है
 अपरः = और कोई
 किञ्चित् = कुछभी
 न = नहीं है
 एवम् = ऐसा
 भावकः = माननेवा-
 ला है

अन्वयः शब्दार्थ
 एवम्एवं = वैसाही
 कश्चित् = कोई
 उभयाऽ = { दोनों याने
 भाव और
 भावकः = { अभावका
 नहींमानने
 वाला
 निराकुलः = स्वस्थचित्त
 है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे राजन् ! कोई एक नै-
 यायिक ऐसा मानता है कि भावरूप प्रपञ्च परमार्थ
 से सत्य है और कोई शून्यवादी कहता है कि सब
 प्रपञ्च शून्यरूप है क्योंकि शून्य ही से उसकी उ-
 त्पत्ति होती है और कोई एक हज़ारोंमें से आत्माको
 अनुभव करनेवाला होता है वह भाव और अभाव
 दोनों की भावना को त्याग करके और स्वस्थ-
 चित्त होकर अपने आत्मानन्द में ही सदा मग्न
 रहता है ॥ ४२ ॥

मूलम् ॥

शुद्धमद्वयमात्मानं भावयन्तिकुबु
द्धयः ॥ न तु जानन्ति संमोहाद्यावज्जीव
मनिर्दृताः ॥ ४३ ॥

पदच्छेदः ॥

शुद्धम् अद्वयम् आत्मानम् भाव-
यन्ति कुबुद्धयः न तु जानन्ति सं-
मोहात् यावज्जीवम् अनिर्दृताः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

कुबुद्धयः = दुर्बुद्धिपु-
रुष

शुद्धम् = शुद्ध

अद्वयम् = अद्वैत

आत्मानम् = आत्मा
कोभावयन्ति = भावना
करते हैं

तु = परन्तु

अन्वयः शब्दार्थ

संमोहात् = अज्ञानता
के कारणन जानन्ति = नहीं जा-
नते हैं

अतः = इसलिये

यावज्जीवम् = जब तक
उनका जीवन हैअनिर्दृताः = संतोष-
हित हैं

भावार्थ ॥

अष्टाचक्रजी कहते हैं हे जनक ! मूढ़ अज्ञानी ईश्वर निर्मल चेतसे रहित व्यापक आत्माको अनुभव नहीं करते हैं क्योंकि उनका मोह संसारिक पदार्थों से निवृत्त नहीं हुआ है इसी कारण उनको आत्माका साक्षात्कार नहीं होता है जब तक वे जीने हैं सन्तोष को कदापि प्राप्त नहीं होते हैं विना आत्मा के साक्षात्कार होने के सन्तोष की प्राप्ति नहीं हो-सकती है ॥ ४३ ॥

मूलम् ॥

मुमुक्षोर्वुद्धिरालम्बमन्तरेण न विद्य-
ते ॥ निरालम्बेव निष्कामा बुद्धिर्मुक्त-
स्य सर्वदा ॥ ४४ ॥

पदभेदः ॥

मुमुक्षोः बुद्धिः आलम्बम अन्त-
रेण न विद्यते निरालम्बा एव नि-
ष्कामा बुद्धिः मुक्तस्य सर्वदा ॥

अन्वयः शब्दार्थ अन्वयः शब्दार्थ

मुमुक्षोः = मुमुक्षु-
रूपकी

बुद्धिः = बुद्धि
सर्वदा = सर्वका-

बुद्धिः = बुद्धि

लविषे

आल } विना
म्वमन्त } = आलम्ब
रेण } के

निष्कामा = कामना-
रहित

च = और

नविद्यते = नहींरह-
तीहै

निगलम्बा = आश्रयस्-
हित

एव = निश्चय
करके

मुक्तस्य = मुक्तपुरुष
की

विद्यते = रहती है

भावार्थ ॥

जिसको आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ है उस की बुद्धि संसारिक विषय को आलम्बन करती है और जो निष्काम जीवन्मुक्त है उस की बुद्धि आत्मा के आश्रय रहती है आत्मा के अचल होने से वह बुद्धि भी सदैव काल स्थिर रहती है ॥ ४४ ॥

मूलम् ॥

विषयद्वीपिनो वीक्ष्य चकिताः शर-
णार्थिनः ॥ विशन्ति भटितिक्रोडन्ति
निरोधैकाग्रयसिद्धये ॥ ४५ ॥

पदच्छेदः ॥

विषयद्वीपिनः वीक्ष्य चकिताः शर-
णार्थिनः विशन्ति भटिति क्रोडम्
निरोधैकाग्रयसिद्धये ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
विषयद्वी- पिनः	{ विषयरू- पी व्याघ्र को	निरोधे	{ चिनकी नियेधता
वीक्ष्य=देख करके		काग्रय- सिद्धये	{ ओरएकाग्रः ताकी नि- द्रिके लिये
चकिताः=डरे ड्रये		भटयति = रोष	
शरणा- र्थिनः	{ अपनेशरी- रकीरक्षाक- रनेवालेम्- द पुरुष	क्रोडम् = पहाड़की गुहाविषे	
		विशन्ति = प्रवेश कर- ते हैं	

भावार्थ ॥

मृदु मुमुक्षु विषयरूपी व्याघ्रों को देखकरके भय को प्राप्त होता है और चित्त की वृत्ति का एकाग्र करनेके लिये पहाड़ी कन्दग में प्रवेश कर जाता है परन्तु उसका कार्य मिष्ट नहीं होता है उस की अन्तर्वृत्ति फैलती जानी है और वह हरदिन दुःखी होता जाता है शान्ति उस का लेशमात्र भी नहीं होती है और जो ज्ञानी जीवन्मुक्त है वह विषयरूपी व्याघ्र को इन्द्रजालजन्य पदार्थों की तरह देखकर उन से भय नहीं खाता है ॥ ४५ ॥

मूलम् ॥

निर्वासनं हरिं दृष्ट्वा तूष्णीं विषयदन्ति
नः ॥ पलायन्ते न शक्तास्ते सेवन्ते कृत
चाटवः ॥ ४६ ॥

पदच्छेदः ॥

निर्वासनम् हरिम् दृष्ट्वा तूष्णीम्
विषयदन्ति नः पलायन्ते न शक्ताः ते
सेवन्ते कृतचाटवः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

निर्वासनम्=वासनार-
हित

पुरुषम्=पुरुषरूपी

हरिम्=सिंहको

दृष्ट्वा=देखकर

नशक्ताः=असमर्थ

विषयदन्ति } विषयरू-
नः } पीहाधी

तूष्णीम्=चुपचाप

हुये

पलायन्ते=भागतेहैं

च = और

अन्वयः शब्दार्थ

ते = वे

कृतचाट्वः=प्रियवादी

याने संसारी पुरुष

ईश्वराकृष्टाः=ईश्वरकर-

केप्रेरितहुये

तन्निर्वा } उसवास-

सनम् } = नारहित

पुरुषम् } पुरुषको

स्वयम्=स्वतः

आगत्य=आकर

सेवन्ते=सेवतेहैं

भावार्थ ॥

क्योंकि वासनारहित पुरुषरूपी सिंह को देखकर विषयरूपी हस्ती असमर्थ होकर भागजाता है और ऐसेही नरसिंहकी प्रतिष्ठा और सेवा इतर पुरुष ईश्वर करके प्रेरितहुये करते हैं ॥ ४६ ॥

मूलम् ॥

नमुक्तिकारिकान्धत्ते निःशंकोदुक्त

मानसः ॥ पश्यञ्छृण्वन्स्पृशजिघ्र
न्नश्नन्नास्तेयथासुखम् ॥ ४७ ॥

पदच्छेदः ॥

न मुक्तिकारिकाम् धत्ते निःशंकः युक्तः
मानसः पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्
अश्नन् आस्ते यथासुखम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ अन्वयः शब्दार्थ

निःशंकः=शंकाग्रहित

किन्तु=परन्तु

च=और

पश्यन्=देखनाहुआ

युक्तमानसः=निश्चल

शृण्वन्=सुननाहुआ

मनवाला

स्पृशन्=स्पर्शकृता

ज्ञानी=ज्ञानी

हुआ

मुक्तिकारिकाम् = यमनिय-
मादियोग
क्रियाका

जिघ्रन्=मचनाहुआ

अश्नन्=भानाहुआ

आग्रहात्=आग्रहमे

म - १२

नधत्ते=नदीधाम्ण यः समुत्पन्न - मन्त्रादि

कस्तादि

आम्न=१६११६

भावार्थ ॥

दूर होगये हैं संशय जिसके निश्चल है मन जिसका ऐसा जो जीवन्मुक्त ज्ञानीपुरुष है वह यम नियमादिक क्रिया को भी हठ से नहीं करता है क्योंकि उसको कर्तृत्वाध्यास नहीं है वह देखताहुआ सुनताहुआ, स्पर्शकरताहुआ सूँघताहुआ अर्थात् लोक-दृष्टि करके सर्वक्रिया को करताहुआ अपने आत्मानन्द में ही स्थिर रहता है ॥ ४७ ॥

मूलम् ॥

वस्तुश्रवणमात्रेण शुद्धबुद्धिर्निराकुलः ॥ नैवाचारमनाचारमौदास्यंवाप्रपश्यति ॥ ४८ ॥ पदच्छेदः ॥

वस्तुश्रवणमात्रेण शुद्धबुद्धिः निराकुलः न एव आचारम् अनाचारम् औदास्यम् वा प्रपश्यति ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
वस्तुश्रवणमात्रेण	यथार्थवस्तु	शुद्धबुद्धिः	= शुद्धबुद्धि
}	= के श्रवण-		वाला
			च=और
ए	मात्रसेही		

निराकुलः=स्वस्थचित्त

वालापुरुष

न एव=न

आचारम्=आचारको

वा=और

औदास्यम्=उदासीन-

ताको

प्रपश्यति=देखताहै

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं चिदात्मा के श्रवणमात्र से ही जिसकी शुद्ध अखण्डाकार बुद्धि उत्पन्न हुई है, वही अपने आत्मा के स्वरूप में स्थित है वह न आचार को न अनाचार को याने न शुभ न अशुभ-कर्म को न उनसे रहित होने की इच्छा को करता है क्योंकि वह सदा अपने में मग्न रहना है ॥ ४८ ॥

मूलम् ॥

यदायत्कर्तुमायाति तदातत्कुरुते ऋजुः ॥ शुभंवाप्यशुभंवापि तस्यचेष्टा हिवाल्बवत् ॥ ४९ ॥

पदच्छेदः ॥

यदा यत् कर्तुम् आयाति तदा नत् कुरुते, ऋजुः शुभम् वा अपि अशु-
भम् वा अपि तस्य चेष्टा हि वालवत् ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
यदा=जब	धीरः=ज्ञानी
यत्=जो कुछ	ऋजुः=आग्रह- हित
शुभम्=शुभ	कुरुते=करताहै
वाअपि=अथवा	हि=क्योंकि
अशुभम्=अशुभ	तस्य=उसको
कर्तुम्=करने को	चेष्टा=व्यवहार
आयाति=आप्राप्तहो- ताहै	बालवत्=बालवत्
तदा=तब	भवति=प्रतीतहो- ताहै
तत्=उसको	

भावार्थ ॥

जिस कालमें वह ज्ञानी शुभकर्म को अथवा अशुभकर्म को करता है वह प्रारब्ध के वश से दैव-
गति से अकस्मात् करता है शोभन अशोभन बुद्धि
करके वा हठ करके नहीं करताहै क्योंकि उसकी चेष्टा
बालक की तरह प्रारब्ध के अधीन होती है राग द्वेष
के अधीन नहीं होती है ॥ ४९ ॥

मूलम् ॥

स्वातन्त्र्यात् मुख्यमाप्नोति स्वात-
न्त्र्याल्लभते परम् ॥ स्वातन्त्र्यात्तिष्ठति
गच्छेत् स्वातन्त्र्यात् परमं पदम् ॥ ५० ॥

पदच्छेदः ॥

स्वातन्त्र्यात् मुख्यम् आप्नोति स्वात-
न्त्र्यात् लभते परम् स्वातन्त्र्यात् तिष्ठ-
ति गच्छेत् स्वातन्त्र्यात् परमं पदम् ॥

अन्वयः शब्दार्थः अन्वयः शब्दार्थः

स्वातन्त्र्यात् = स्वतन्त्रता
स्वातन्त्र्यात् = स्वातन्त्र्यात्-स्वातन्त्र्यता
मुख्यम् = मुख्यता

तिष्ठति = तिष्ठति

ज्ञानी = ज्ञानी

आप्नोति = प्राप्नोति

स्वातन्त्र्यात् = स्वतन्त्रता

परम् = परम्

लभते = प्राप्नोति

भावार्थ ॥

स्वतन्त्रता से याने राग द्वेष की अधीनता से रहित पुरुष सुखको प्राप्त होता है और उसी स्वतन्त्रता करके आत्मज्ञानको भी पुरुष प्राप्त होता है और स्वतन्त्रता से ही पुरुष नित्य सुखको भी प्राप्त होता है और स्वतन्त्रता करके ही परमशान्ति को भी पुरुष प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

मूलम् ॥

अकर्तृत्वमभोक्तृत्वं स्वात्मनो मन्यते यदा ॥ तदा क्षीणा भवन्त्येव समस्ता चित्तवृत्तयः ॥ ५१ ॥

पदच्छेदः ॥

अकर्तृत्वम् अभोक्तृत्वम् स्वात्मनः मन्यते यदा तदा क्षीणाः भवन्ति एव समस्ताः चित्तवृत्तयः ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
यदा = जब		स्वात्मनः = अपने आ-	
पुरुषः = पुरुष		त्माके	

अकर्तृत्वम् = अकर्ता

पनेको

अभोक्तृत्वम् = अभोक्ता

पनेको

मन्यते = मानता है

तदा = तब

तस्य = उसकी

समस्ताः = सम्पूर्ण

चित्तवृत्तयः = चित्त की

वृत्तियां

एव = निश्चय

करके

क्षीणाः = नाश

भवन्ति = होती हैं

भावार्थ ॥

जिस कालमें विद्वान् अपने को अकर्ता अभोक्ता मानता है उसी काल में सम्पूर्ण चित्त की वृत्तियां नाश होजाती हैं याने जब वह ऐसा निश्चय करता है कि इस कर्म को मैं करूंगा और उसका फल मेरेको प्राप्त होगा तब उसके चित्तकी अनेक वृत्तियां उदय होती हैं और वह दुःखी होता है परन्तु जब अपने को अकर्ता अभोक्ता निश्चय करता है तब सम्पूर्ण उसके चित्तकी वृत्तियां निरोध होजाती हैं और वह शान्ति को प्राप्त होता है ॥ प्रश्न ॥ केवल अकर्ता अभोक्ता निश्चय करने सेही यदि चित्त की वृत्तियों का अभाव होजाय और वह जीवमुक्त हो-

जावै तो बद्धज्ञानियों के चित्त की वृत्तियों का अभाव होना चाहिये और वही जीवनमुक्त कहना चाहिये पर ऐसा नहीं है क्योंकि बद्धज्ञानियों के चित्त की वृत्तियाँ विषयों में लगी रहती हैं और उनको लोग जीवनमुक्त भी नहीं कहते हैं इसी से सिद्ध होता है केवल अकर्त्ता अभोक्ता मान लेनेसे प्राप्त वृत्तियों का निरोध नहीं होता है ॥ उत्तर ॥ उन ज्ञानियों का जो कथन है हम अकर्त्ता हैं हम अभोक्ता हैं सो सब मिथ्या है क्योंकि उनका अभ्यास बना है उनकी विषयाकार वृत्तियाँ उदय होती हैं और न उनका निश्चय परिपक्व है यदि परिपक्व निश्चय होता तो कदापि उनकी वृत्तियाँ विषयाकार उत्पन्न न होती ॥ दृष्टान्त ॥ जैसे हिन्दूधर्म के लिये गोमांस अतिनिषिद्ध है किसी हिन्दू का मन गोमांस के तरफ स्वप्न में नहीं जाता है तैसेही जिस विद्वान् ज्ञानी का यह परिपक्व निश्चय है कि मैं अकर्त्ता हूँ अभोक्ता हूँ उसका मन कभी स्वप्नमें भी विषयों की तरफ नहीं जाता है और न उसकी विषयाकार वृत्ति कदापि उदय होती है और जिसका निश्चय परिपक्व नहीं है अर्थात् जो बद्धज्ञानी है वह लोकों को सुनाता है मैं अकर्त्ता हूँ अभोक्ता हूँ परन्तु भीतर से

उसकी विषयों की तरफ चित्त की तरह दृष्टि रहती है जैसे चित्त नवतक आंख को मूंदे रहती है जब तक मूमेको नहीं देखती है जब मूमे को देखती है तुरन्त झपट कर ग्याजानी है तबही बद्धशर्मा भी नवतकही अकृता अभोक्ता बना रहता है जब तक विषयरूपी मूम उसको नहीं दिखाना है जब विषयरूपी मूम उसको सामने आता है तुरन्त ही वह कृता भोक्ता होकर उसका ग्याजाना है ॥ एक निष्कल मन्त्र यह ज्ञाय दशक किमो ग्राम म एक युवा स्त्रीका विचारमाग्य पदान य पदान २ दमपर उन का मन चलायमान होगया तब इस स्थितिपर हाथ करने लग उस स्त्रीका कथा है ॥ मन्त्र तो आपन भरका पढ़ाया है ॥ १ ॥ 'विपन' का विप के तुल्य ज्ञानकर व्याप करना ॥ २ ॥ तब आप ही जब मंत्र ज्ञायापर हाथ कर ॥ ३ ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ तब उन मन्त्रमा ने कहा हम तुम्हें ग्याया कर दें तुमने समग्र विचारमाग्य पढ़ाया ॥ ५ ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

के चित्त में कदापि शान्ति नहीं होती है और दृष्टान्त को भी सुनिये पूर्वदेशमें एक पण्डित किसी मन्दिर में योगवासिष्ठ की कथा कहते थे उनकी कथामें माई लोक भी बहुतही आतीथी गन्धर्व जातिकी एक वेश्या भी उनकी कथामें आतीथी और माईलोकों में बैठती थी एक दिन कथामें स्त्रीके सङ्गका बहुत निषेध आया और परस्त्री के सङ्गका बहुतही दोष निकला उस दिन कथा कहते २ पण्डितजी की दृष्टि उस वेश्या के ऊपर जय पड़ी तब पण्डितजी का मन उस वेश्या में आसक्त होगया जब कथा समाप्त हुई तब तब कोई अपने २ घर को चले गये वह वेश्या भी अपने मकानको गई और जाकर उसने विचार किया कि आज से फिर मैं इस व्यभिचार कर्म को नहीं करूंगी ऐसा निश्चय करके उसने अपना फाटक संभ्यासेही पन्द करादिया और भीतर बैठकर भजन करने लगी इधर तो यह हाल हुआ और उधर जय पण्डितजी कथा घांचकर अपने घर गये तब रात्रि आनेका शोच करनेलगे इतने में रात्रि होगई जब एक पहर रात्रि व्यतीत हुई तब पण्डितजी शिरपर कपड़ा डाले हुये उस वेश्या के मकान के नीचे पहुँचे और जाकर कि-याड़े को हिलाया तब नौकरने वेश्या से कहा पण्डित

जी आये हैं वेश्याने तुरंत किवाड़ खोलदिया पण्डित
 ऊपर गये वेश्याने उनको पलंग पर बैठाया और
 नीचे बैठी तब पण्डितजी ने कहा हे प्यारी ! मेरे प
 बैठ हम तो आज तुम्हारे साथ आनन्द करने आये
 वेश्याने कहा महाराज आपने तो आज कथा में नि
 पय भोगकी बड़ी निन्दा सुनाई और फिर आपही
 यह भी कहा था कि जो पुरुष परस्त्री के साथ भोग
 करता है उसको यमदूत अग्निसे तपेहुये खम्भों के साथ
 बांधते हैं और स्त्री को भी अग्निमें तपेहुये खम्भों के
 साथ लगाते हैं तब फिर कैसे आप के साथ क्रीड़ा
 करूं तब पण्डितजी ने कहा जब कृष्णजी अवतार
 हुये तब उन्होंने उन सब खम्भों को उखेड़कर समुद्र
 में डालदिया अब वह खम्भे नहीं रहे हैं वह तो
 पूर्व युगोंकी वार्त्ता थी इस युगकी नहीं है तू अपने
 को अकर्त्ता मानकर आकर आनन्द ले ऐसे बद्धज्ञा-
 नियों के चित्त कभी भी शान्तिको प्राप्त नहीं होते हैं
 धर्मशास्त्रमें भी कहा है ॥ पठकाः पाठकाश्चैव यंचान्ये
 शास्त्रचिन्तकाः ॥ सर्वे ते व्यसिनां मूर्खा यः क्रियावान्स
 पण्डितः ॥ १॥ जितने शास्त्र के पढ़नेवाले हैं और जितने
 शास्त्र के पढ़नेवाले हैं और जो केवल शास्त्रका
 चारही करते हैं वे सब व्यसनी और मूर्ख हैं जो

में धैर्यादि साधन सम्पत्ति करके युक्त हैं वेही पण्डित हैं दूसरे शास्त्रदृष्टि से पण्डित नहीं हैं पूर्वोक्त युक्तियों से यह साधित हुआ जो अभ्यासी पुरुष है वही घट्ट-ज्ञानी है केवल अकर्त्ता अभोक्ता कहनेसे वह अकर्त्ता अभोक्ता कदापि नहीं होसकता है ॥ ५१ ॥

मूलम् ॥

उच्छृङ्खलाप्याकृतिका स्थितिर्धीर-
स्यराजते ॥ नतुसंस्पृहचित्तस्यशान्ति-
मूढस्यकृत्रिमा ॥ ५२ ॥

पदच्छेदः

उच्छृङ्खला अपि आकृतिका स्थितिः
धीरस्य राजते न तु संस्पृहचित्तस्य
शान्तिः मूढस्य कृत्रिमा ॥

अन्वयः शब्दार्थ
धीरस्य = ज्ञानीकी
उच्छृङ्खला = शान्ति
रहित
आकृतिका = स्वाभा-
विक

अन्वयः शब्दार्थ
स्थितिः = स्थिति
अपि = भी
राजते = शोभती है
तु = परन्तु

संस्पृह) इच्छामहित । कृत्रिमा = बनावट
चित्तस्य) चित्तवाले वाली
मूढस्य = अज्ञानी शान्तिः = शान्ति
की नराजते = नहीं शो-
भती है

भावार्थ ॥

अष्टावक्र जी कहते हैं हे जनक ! जो पुरुष निः-
स्पृह है उसकी भी स्वाभाविक स्थिति शांति के
पुष्प ही होती है क्योंकि उसमें कोई बनावट नहीं
होती है और जो मूढ़ इच्छाकर्मी व्याकुल है उसकी
बनावट की शान्ति भी शांतिमान नहीं होती है ॥५२॥

मन्त्रम् ॥

विलमन्ति महाभोगे निशान्तिगिरि-
करान् ॥ निरस्तकल्पनाभीगश्च वद्धा
मुक्तबुद्धयः ॥ ५३ ॥

पदार्थः ॥

विलमन्ति महानाभे निशान्ति गि-
रिद्वारान् निरस्तकल्पनाः धीराः अ-
वद्धाः मुक्तबुद्धयः ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
निरस्त } कल्पनार-	महाभोगैः = बड़े भो-
कल्पनः } हित	गोकैसाध
अवद्धाः = बन्धनर-	विलसन्ति = फीड़ा क-
हित	स्ते हैं
मुक्तबुद्धयः = मुक्तबुद्धि	च = और
वाले	कदाचित् = कभी
धीराः = ज्ञानी	गिरिगह्वरान् = पहाड़ की
कदाचि	बन्दरों में
प्रारब्ध } कभी प्रारब्ध	विशन्ति = प्रवेश कर-
वशात् } वशसे	ते हैं

भावार्थ ॥

जिस ज्ञानी धीरके चित्तकी कल्पना तब नष्ट हो-
गई है वह प्रारब्धके वश कभी भोगों विषे फीड़ा करता
है कभी प्रारब्धवश पर्यत और यनों में फिरा करता है पर
उसका चित्त सदा शान्त रहता है क्योंकि वह आस्तिक
कर्तृत्वाऽप्यास से रहित बुद्धिवाला है ॥ ५३ ॥

मूलम् ॥

श्रोत्रियं देवतांतीधिमंगनां भूपतिं प्रि

यम् ॥ दृष्ट्वासंपूज्यधीरस्य नका
दिवासना ॥ ५४ ॥

पदच्छेदः ॥

श्रोत्रियम् देवताम् तीर्थम् अंगना
भूपतिम् प्रियम् दृष्ट्वा संपूज्य धीरस्य
न का अपि हृदि वामना ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
श्रोत्रियम् = पण्डितको	प्रियम् = पुत्रादिको
देवताम् = देवताको	दृष्ट्वा = देखकरके
तीर्थम् = तीर्थको	धीरस्य = ज्ञानी के
संपूज्य = पूजन कर	हृदि = हृदय में
के	का अपि = कोई भी
च = और	वामना = रामना
अंगनाम् = स्त्री को	नमस्कृत्य = नमस्कार
भूपतिम् = राजा को	तीर्थे

भावार्थ ॥

हे शिष्य! जो श्रोत्रिय ब्रह्मज्ञाना में उन विषे इन्द्र
अग्नि आदिक देवताओं गंगा आदि नदीयों के पूजा करने

से कामना उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि वे निष्काम हैं और सुन्दर स्त्री पुत्रादिकों के प्रति और राजा को देख करके भी उनके चित्त में कोई वासना खड़ी नहीं होती है क्योंकि वे सर्वत्र समबुद्धि और समदर्शी हैं ॥५४॥

मूलम् ॥

भृत्यैः पुत्रैः कलत्रैश्च दौहित्रैश्चापि
गोत्रजैः ॥ विहस्य धिक्कृतो योगी न या
ति विकृतिमनाक् ॥ ५५ ॥

पदच्छेदः ॥

भृत्यैः पुत्रैः कलत्रैः च दौहित्रैः च
अपि गोत्रजैः विहस्य धिक्कृतः योगी
न याति विकृतिम् मनाक् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
भृत्यैः = किं करों करके		च = और	
पुत्रैः = पुत्रों करके		गोत्रजैः = बांधवों करके	
दौहित्रैः = नातियों करके		अपि = भी	
	रके	विहस्य = हँस करके	

विकृतः = विकार

विकारको

कियाहुआ

विकृतिम्

यानिनिर्

ज्ञानको

योगी = ज्ञानी

नदति = नदीप्राप्त

मनारु = विविचारी

वादी

॥ १५ ॥

॥ शिवाय ॥ ज्ञानी ॥ १५ ॥

अथ ॥ १५ ॥ य ॥ न ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥

१५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥

सम्बन्ध ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥

नदी प्राप्ति ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥

कियाहुआ न ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥ १५ ॥

का हुनु जा माहहे सा माह उनमें नही ॥ १५ ॥

मनम् ॥

॥

न च खिद्यते तस्य आश्चर्यदशाम्
ताम् ताम् तादृशाः एव जानते ॥

अन्वयः शब्दार्थ
ज्ञानी = ज्ञानी पुरुष
लोकदृष्ट्या = लोकदृष्टि
से
संतुष्टः = संतोषवान्
हुआ
अपि = भी
न = नहीं
संतुष्टः = संतुष्ट है
च = और
खिन्नः = खेदकोपा-
या हुआ

अन्वयः शब्दार्थ
अपि = भी
न खिद्यते = नहीं दुःखको
प्राप्त होता है
तस्य = उसकी
ताम् ताम् = उस उस
आश्चर्य { = आश्चर्य
दशाम् } = दशाको
तादृशा एव = वैसे ही
ज्ञानी
जानते = जानते हैं

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! लोकदृष्टिकरके खेद को प्राप्त हुआ
भी वह खेदको नहीं प्राप्त होता है और लोकदृष्टिक-
रके वह हर्षको प्राप्त हुआ भी वह हर्षको नहीं प्राप्त

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! "ममेदं कर्तव्यम्" भरे को यह कर्तव्य है ऐसे निश्चयका नामही संसार है इसी कारण जीव-न्मुक्त ज्ञानी उस कर्तव्यता को नहीं देखता है और न उसका संकल्प करता है क्योंकि यह संकल्पमात्र से रहित है यह शून्याकार है और निराकारादिक संकल्पों से भी रहित है और विकारों से भी रहित है और जो आध्यात्मिकादि रोग हैं उनसे भी रहित है ॥ ५७ ॥

मूलम् ॥

अकुर्वन्नपि संक्षोभाद्व्यग्रः सर्वत्र मूढ-
धीः ॥ कुर्वन्नपि तु कृत्यानि कुशला हि
निराकुलः ॥ ५८ ॥

पदच्छेदः ॥

अकुर्वन् अपि संक्षोभात् व्यग्रः स-
र्वत्र मूढधीः कुर्वन् अपि तु कृत्यानि
कुशलः हि निराकुलः ॥

अन्यः शब्दार्थः अन्यः शब्दार्थः
मूढधीः = अज्ञानी अकुर्वन् = स्मृतिकेन ही
करता हुआ

तिच ॥ सुखंवक्तिमुखंभुङ्क्ते व्यवहारोपि
शान्तधीः ॥ ५६ ॥

पदच्छेदः ॥

सुखम् आस्ते सुखम् शेते सुखम्
आयाति याति च सुखम् वक्ति सुखम्
भुङ्क्ते व्यवहारे अपि शान्तधीः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
व्यवहारे = व्यवहार
विषे
अपि = भी
शान्तधीः = ज्ञानी
सुखम् = सुखपूर्वक
आस्ते = बैठता है
सुखम् = सुखपूर्वक
आयाति = आता है

अन्वयः शब्दार्थ
च = और
याति = जाना है
सुखम् = सुखपूर्वक
वक्ति = बोलता है
च = और
सुखम् = सुखपूर्वक
भुङ्क्ते = भोजनक-
रता है

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त ज्ञानी व्यवहार आदि सों में भी आत्म-
सुखकरकेही स्थित रहता है बैठते उठते शयन करते

खाते पीते संपूर्ण क्रियाओं को करते हुये भी विद्वान्
शांतचित्तवाला रहता है ॥ ५९ ॥

मूलम् ॥

स्वभावाद्यस्य नैवार्तिर्लोकवद्व्यवहारिणः ॥ महाहृद इवाक्षोभ्यो गतक्लेशः
सुशोभते ॥ ६० ॥

पदच्छेदः ॥

स्वभावात् यस्य न एव आर्तिः
लोकवत् व्यवहारिणः महाहृदः इव
अक्षोभ्यः गतक्लेशः सुशोभते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

यस्य = जिस

व्यवहारिणः = व्यवहार

करनेवाले

ज्ञानिनः = ज्ञानी को

स्वभावात् = आत्मज्ञान

के स्वभावसे

अन्वयः शब्दार्थ

लोकवत् = लोककी

तरह

आर्तिः = पीड़ा

न = नहीं है

एव = निश्चय

करके

उपजायते = होती है

अपि = भी

च = और

धीरस्य = ज्ञानी की

प्रवृत्तिः = प्रवृत्ति

निवृत्ति

फल =

दायिनी

निवृत्तिके

फलको देने

वाली है

भावार्थ ॥

मूढ़ पुरुष के इन्द्रियों के व्यापारोंकी निवृत्ति तो लोकदृष्टि करके जरूर प्रतीत होती है परंतु वह निवृत्ति प्रवृत्ति ही है क्योंकि उम के अहंकागादिक निवृत्त नहीं हुये हैं और ज्ञानवान् की लोकदृष्टि करके इन्द्रियों की प्रवृत्ति प्रतीत भी होती है तौ भी वह निवृत्ति रूप ही है और मुक्तिरूपी फलको देनेवाली है क्योंकि उस में अभिमान का अभाव है ॥ ६१ ॥

मूलम् ॥

परिग्रहेषु वैराग्यं प्रायो मूढस्य दृश्य
ते ॥ देहे विगलिताशस्य करागः कवि
रागता ॥ ६२ ॥

पदच्छेदः ॥

- परिग्रहेषु वैराग्यम् प्रायः मूढस्य

दृश्यन्ते देहे विगलिताशस्य क रागः
क विरागता ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
मूढस्य = ज्ञानीका	विगलि- ताशस्य = { गलितभई हुई है आ- शा जिस की ऐसे (ज्ञानी को
वैराग्यम् = वैराग्य	
प्रायः = विशेष क- स्के	क = कहां
परिग्रहेषु = गृहआदि विषे	रागः = राग है
दृश्यन्ते = देखा जा- ताहै	च = और
परन्तु = परन्तु	क = कहां
देहे = देहविषे	विरागता = वैराग्य है

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! देहाभिमानी मूढ़ पुरुषको देहके साथ सम्बन्धवाले जो धन वेदया आदिक हैं उनमें यदि किसी निमित्त से वैराग्य भी उत्पन्न होजावे तो भी वह वैराग्यशून्य है परन्तु जिसका देहादिकों के साथ अभिमान नष्टहोगयाहै उसको देह सम्बन्धी पुत्रादि-

कों में न राग है और शत्रुव्याघ्रादिकों में न विराग है राग और विराग उसको होता है जिसको अपवित्र देह का अभिमान है ॥ ६२ ॥

मूलम् ॥

भावनाभावनासक्ता दृष्टिर्मूढस्य सर्वदा ॥ भाव्यभावनया सा तु स्वस्थस्यादृष्टिरूपिणी ॥ ६३ ॥

पदच्छेदः ॥

भावनाभावनासक्ता दृष्टिः मूढस्य सर्वदा भाव्यभावनया सा तु स्वस्थस्यादृष्टिरूपिणी ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मूढस्य = अज्ञानी की

दृष्टिः = दृष्टि

सर्वदा = सर्वदा

भावना
भावना = भावना विषे
या अभा-
वना विषे
लगी है

अन्वयः शब्दार्थ

तु = परन्तु

स्वस्थस्य = ज्ञानी की

मा = दृष्टि

भाव्य दृश्यकीवि-

भावन = न्नामं गुरु

या होकर के

अपि = भी

जगद्गुरुवां = { दृश्य के | भवति = होती है
 दर्शन से
 रहित रू-
 प वाली }

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! मूढ़ पुरुष कहता है मैं भावना करता हूँ मैं अभावना करता हूँ इस प्रकार सर्वदाकाल भावना अभावनामें ही आसक्त रहता है क्योंकि उस को भावना अभावना में अहंकार है और जो अपने स्वरूपमें निष्ठावाला है उसकी दृष्टि भावना अभावना से रहित सर्वदाकाल अपने आत्मा में ही रहती है ॥ ६३ ॥ मूलम् ॥

सर्वारम्भेषु निष्कामो यश्चरेद्दालव
 न्मुनिः ॥ न लेपस्तस्य शुद्धस्य क्रियमा
 णोपि कर्मणि ॥ ६४ ॥

पदच्छेदः ॥

सर्वारम्भेषु निष्कामः यः चरेत् वाल-
 वत् मुनिः न लेपः तस्य शुद्धस्य
 क्रियमाणे अपि कर्मणि ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यः = जो		चेत् = करता है	
मुनिः = ज्ञानी		तस्य = उस	
बालवत् = बालकों की		शुद्धस्य = शुद्धस्व-	
	तरह	रूपको	
निष्कामः = कामना-		क्रियमाणे	{ किये हुए
हित हुआ		कर्मणि =	{ कर्म में
		अपि	{ भी
सर्वारम्भेषु = सब क्रिया-		लेपः न	{ लेप नहीं
ओंमें आरम्भ		भवति =	{ होता है

भावार्थ ॥

जो विद्वान् बालक की तरह कामना से रहित होकर पूर्वले कर्मों के वश से अर्थात् प्रारब्ध वश से सम्पूर्ण आरम्भों में प्रवृत्त होता भी है तौ भी वह वास्तव से कुछ भी नहीं करता है क्योंकि वह अहं-काररूपी मलसे रहित है और इसी कारण तिसमें कर्तृत्वभाव नहीं है ॥ ६४ ॥

मूलम् ॥

स एव धन्य आत्मज्ञः सर्वभावेषु यः

इसी कारण उसका चित्त तृष्णा से रहित है वह सर्व पदार्थों को देखता हुआ श्रवण करता हुआ स्पर्श करता हुआ सूँघता हुआ खाता हुआ भी कुछ नहीं करता है वह सर्वदा शान्त एकरस है ॥ ६५ ॥

मूलम् ॥

कसंसारः कचाभासः कसाध्यं कच
साधनम् ॥ आकाशस्येव धीरस्य निर्वि
कल्पस्य सर्वदा ॥ ६६ ॥

पदच्छेदः ॥

क संसारः क च आभासः क
साध्यम् क च साधनम् आकाशस्य
इव धीरस्य निर्विकल्पस्य सर्वदा ॥

अन्वयः शब्दार्थ
सर्वदा = सर्वदा
इव = आका-
शवत्
निर्विकल्पस्य = विकल्प
रहित

अन्वयः शब्दार्थ
धीरस्य = ज्ञानी को
क = कहां
संसारः = संसार है
च = और

क = कहां	साध्यम् = साध्ययाने
आभासः = उसका	स्वर्ग है
भानहै	च = और
क = कहां	साधनम् = साधन याने
	यज्ञादिकर्महै

भावार्थ ॥

सर्वदा काल जो संकल्प विकल्पोसे रहित विद्वान् है उसको प्रपञ्च कहां और उसकी दृष्टिमें स्वर्गादिक कहां जब उसकी दृष्टि में स्वर्गादिक ही नहीं तब उनका साधनीयभूत यागादिक उसकी दृष्टिमें कहां आत्मवित् जीवन्मुक्त की दृष्टि में जब कि सर्वत्र एक आत्माही व्यापक परिपूर्ण है दूसरा पदार्थ कोई भी नहीं है तब स्वर्ग नर्क और तिनके साधनभूत पुण्य पापादिक भी कहीं नहीं ॥ ६६ ॥

मूलम् ॥

सजयत्यर्थसंन्यासी पूर्णस्वरसवि
ग्रहः ॥ अकृत्रिमांऽनवच्छिन्ने समाधि
र्यस्यवर्तते ॥ ६७ ॥

पदच्छेदः ॥

सः जयति अर्थमन्यासी पूर्णस्वर
सविग्रहः अकृत्रिमः अनवच्छिन्ने समा
धिः यस्य वर्तते ॥

अन्वयः शब्दार्थ

सः = सोई

अर्थसंन्यासी = दृष्टादृष्ट
कर्मफल

पूर्ण { पूर्णानन्दस्व-

स्वरस = { रूप वाला

विग्रहः { ज्ञानी

जयति = जयको प्राप्त
होता है

अन्वयः शब्दार्थ

यस्य = जिसका

अकृत्रिमः = स्वाभा-
विक

समाधिः = समाधि

अनवच्छिन्ने = अपने पूर्ण
स्वरूपविषे

वर्तते = वर्तता है

भावार्थ ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं हे जनक! जो विद्वान् दृष्ट
अदृष्ट याने इस लोक के और परलोक के फलों की
कामना से रहित है अर्थात् जो निष्काम है वही प-
रिपूर्ण स्वरूपवाला है अर्थात् अपने स्वरूपमेंही जिस
की समाधि सर्वदाकाल बनी रहती है वही विद्वान् है
वह सब से श्रेष्ठ होकर संसार में फिरता है ॥ ६७ ॥

मूलम् ॥

बहुनात्रकिमुक्तेन ज्ञाततत्त्वोमहा
शयः ॥ भोगमोक्षनिराकांक्षी सदास
र्वत्रनीरसः ॥ ६८ ॥

पदच्छेदः ॥

बहुना अत्र किम् उक्तेन ज्ञाततत्त्वः
महाशयः भोगमोक्षनिराकांक्षी सदा
सर्वत्र नीरसः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अत्र = इसविषे

बहुना = बहुत

उक्तेन = कहने से

किम् = क्या प्रयो-

जन हे

ज्ञाततत्त्वः = तत्त्व जानने

वाला

अन्वयः शब्दार्थ

भोगमोक्षनिराकांक्षी = { भोग
ओर मो-
क्षकीजा-
कांक्षाका
त्यागी

महाशयः = ज्ञानो

सदा = सदैव

सर्वत्र = सर्वत्र

नीरसः = रागद्वेष

यहिन है

भावार्थ ॥

हे जनक ! ज्ञाततत्त्व जो विद्वान् है अर्थात् जिस विद्वान् ने आत्मतत्त्व को जानलिया है उसीका नाम ज्ञाततत्त्व है क्योंकि वह भोग और मोक्ष दोनों में निराकांक्षी है आकांक्षा से रहित है अर्थात् दोनों में राग से रहित है ॥ ६८ ॥

सूलम् ॥

महदादिजगद्द्वैतं नाममात्रविजृम्भितम् ॥ विहाय शुद्धबोधस्य किंकृत्यमवशिष्यते ॥ ६९ ॥

पदव्येष्टः ॥

महदादि जगत् द्वैतम् नाममात्रविजृम्भितम् विहाय शुद्धबोधस्य किम् कृत्यम् अवशिष्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
महदादि = महत्त्व	आदि	द्वैतजगत् = द्वैत जगत्	गत्

नाममात्र विजृम्भि- तम्	{ नाममात्र भिन्न है	शुद्धबो धस्य	= { शुद्ध बुद्ध स्वरूप वा- ले को
तत्र =	तिसविषे	किम् =	क्या
कल्पनाम् =	कल्पनाको	कृत्यम् =	कर्तव्यता
विहाय =	छोड़कर	अवशिष्यते =	अवशेष रहती है

भावार्थ ॥

हे जनक ! महदादिरूप जितना जगत् है अर्थात् महत् अहंकार पञ्चतन्मात्रा पञ्चमहाभूत और तिनका कार्यरूप जितना जगत् है वह केवल नाममात्र करके ही फैला है और आत्मा से भिन्न की नाई प्रतीत होता है परन्तु वास्तव से भिन्न नहीं है ॥ वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यमिति श्रुतेः ॥ जितना कि नामका विषय विकार है वह सब वाणी का कथनमात्र ही है ॥ मृत्तिका ही सत्य है ॥ १ ॥ इसी तरह जितना कि नामका घटपटादिरूप जगत् है वह सब कल्पनामात्र ही है अधिष्ठानरूप ब्रह्म ही सत्य है ॥ जिस विद्वान् ने संपूर्ण कल्पना का त्याग कर दिया है जो केवल शुद्ध चैतन्यस्वरूप में ही स्थित है उसको कोई कर्तव्य बाकी नहीं रहा है ॥ ६९ ॥

मूलम् ॥.

भ्रमभूतमिदं सर्वं किञ्चिन्नास्तीति
निश्चयी ॥ अलक्ष्यस्फुरणः शुद्धः स्वभा-
वेनैव शाम्यति ॥ ७० ॥

पदच्छेदः ॥

भ्रमभूतम् इदम् सर्वम् किञ्चित् न
अस्ति इति निश्चयी अलक्ष्यस्फुरणः
शुद्धः स्वभावेन एव शाम्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

इदम् = यह

सर्वम् = सब

भ्रमभूतम् = प्रपञ्च

किञ्चित् = कुछ

न अस्ति = नहीं है

इति = ऐसा

अलक्ष्य = { चैतन्या-
स्फुरणः = { त्मानुभवी

अन्वयः शब्दार्थ

शुद्धः = शुद्ध

निश्चयी = निश्चय

करनेवाला

स्वभावेन = स्वभाव से

एव = हि

शाम्यति = शान्तिको

प्राप्त होता है

भावार्थ ॥

इना॥ अनर्थकी शान्तिकेलिये प्रयत्न करना चाहिये
र ॥ अधिष्ठानके साक्षात्कार होनेपर यह संपूर्ण
व भ्रम करकेही कल्पित प्रतीति होता है वास्तव
छ भी सत्य प्रतीति नहीं होता है जिस पुरुषको
ज्ञान है वह किंचित भी प्रयत्न नहीं करता है
के वह स्वभाव करकेही शांतिरूप है शान्ति के
फिर उसको कुछ भी चाकी कर्तव्य नहीं रह-
॥ ७० ॥ मूलम् ॥

शुद्धस्फुरणरूपस्य दृश्यभावमप-
रः ॥ क्वविधिः क्वच वैराग्यं क्वत्यागः
मोऽपि वा ॥ ७१ ॥

पदच्छेदः ॥

शुद्धस्फुरणरूपस्य दृश्यभावम् अप-
रः क्व विधिः क्व च वैराग्यम् क्व
मोः क्व शमः अपि वा ॥

यः शब्दार्थ		अन्वयः शब्दार्थ
त्वम् = दृश्यभा- वको		अपरयतः = नहीं देख- तेहुये

शुद्धस्फु	शुद्धस्फुर-	च = और
रणरूप =	ए रूपवा-	क = कहां
स्य	लेको	त्यागः = त्याग है
क = कहां		वा अपि = अथवा
विधिः = कर्मकी		क = कहां
विधि है		शमः = शम है

भावार्थ ॥

जो विद्वान् शुद्ध स्वरूप स्वप्रकाश चिद्रूप अपने आप को देखता है वह किसी और दृश्य पदार्थ को नहीं देखता है उसको कर्म में राग कहां है और विधि कहां है और किस विषय में उसको वैराग्य है और किसमें शम ॥ ७१ ॥

मूलम् ॥

स्फुरतोऽनंतरूपेण प्रकृतिचनपश्य
तः ॥ कचन्धः कचवामोक्षः कहर्पः कवि
पादता ॥ ७२ ॥

पदव्येदः ॥

स्फुरतः अनंतरूपेण प्रकृतिम् च

न पश्यतः क बन्धः क च वा मोक्षः
क हर्षः क विषादता ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
च = और		बन्धः = बन्धन है	
अनन्तरूपेण = अनन्त		क = कहां	
रूपसे		मोक्षः = मोक्ष है	
प्रकृतिम् = मायाको		वा = और	
न पश्यतः = नहीं देखते		क = कहां	
हुये		हर्षः = हर्ष है	
स्फुरतः = प्रकाशमान		च = और	
यानेत्रानीको		क = कहां	
क = कहां		विषादता = शोक है	

भावार्थ ॥

जो चिट्ठूषआत्मामें बन्ध के सहित भासाये नहीं देखता है उसकी दृष्टिमें बन्ध कहां है और मोक्ष कहां है और हर्ष विषाद कहां है ॥ ७२ ॥

मूलम् ॥

बुद्धिपर्यन्तसंसारे मायामात्रं विव

र्तते ॥ निर्ममोनिरहंकारो निष्कामः
शोभतेबुधः ॥ ७३ ॥

पदच्छेदः ॥

बुद्धिपर्यन्तसंसारे मायामात्रम् विव-
र्तते निर्ममः निरहंकारः निष्कामः शो-
भते बुधः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
बुद्धि पर्यन्त =	{ बुद्धिपर्य- न्त संसार विषे	बुधः =	ज्ञानी पुरुष
संसारे		निर्ममः =	ममता र- हित
माया मात्रम् =	{ मायावि- शिष्टैतन्य	निरहंकारः =	अहंकार रहित
जगत् =	जगत् भा- वको	निष्कामः =	कामना रहित
विवर्तते =	कल्पित करताहै	शोभते =	शोभायमान होता है

भावार्थ ॥

आत्मज्ञान पर्यन्तही है संसार जिसमें अर्थात् आ-

ज्ञानरूप अंतर्वाले संसारमें माया शबल चेतनही
वर्तमान कल्पित जगदाकार हो भासता है ऐसे नि-
यवाले विद्वान् का शरीरादिकों में अहंकार नहीं
हता है वह ममता से और कामना से रहित होकर
चरता है ॥ ७३ ॥

मूलम् ॥

अक्षयंगतसंतापमात्मानंपश्यतोमु-
ः ॥ क्व विद्या च क्व वा विश्वं क्व देहोऽहं म-
तिवा ॥ ७४ ॥

पदव्येदः ॥

अक्षयं गतसंतापम् आत्मानम्
पश्यतः मुनेः क्व विद्या च क्व वा वि-
यम् क्व देहः अहम् मम इति वा ॥

अन्वयः शब्दार्थ
क्षयम् = अविनाशी
च = और
तसंतापम् = संताप
रहित

अन्वयः शब्दार्थ
आत्मानम् = आत्माके
पश्यतः = देखने
वाले
मुनेः = मुनिगो

डधीः यदि मनोरथान् प्रलापान् च
कर्तुम् आप्नोति अतत्क्षणात् ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यदि = जब		अतत्क्षणात् = तभी से	
जडधीः = अज्ञानी		मनोरथान् = मनोरथों	
निरोधादीनि = चित्तनि-		च = और	
रोधादिक		प्रलापान् = प्रलापोंके	
कर्माणि = कर्मों को		कर्तुम् = करने को	
जहाति = त्यागताहै		आप्नोति = प्रवृत्तहोताहै	

भावार्थ ॥

यदि अज्ञानी चित्तके निरोधादि कर्मों का त्याग
भी करदेवें तो भी वह मनोरथोंआदिकों को और वाणी
के प्रलापों को किया करता है ॥ ७५ ॥

मूलम् ॥

मन्दःश्रुत्वापितद्वस्तु नजहातिविमू
ढताम् ॥ निर्विकल्पोवहिर्यत्तादंतविष
यलालसः ॥ ७६ ॥

है मूर्ख बाह्य व्यापार से रहित भी होता हुआ मन में
विषयों को धारण किया करता है ॥ ७६ ॥

मूलम् ॥

ज्ञानाद्गलितकर्मायो लोकदृष्ट्यापि
कर्मकृत् ॥ नाप्नोत्यवसरं कर्तुं वक्तुमेव न
किञ्चन ॥ ७७ ॥

पदच्छेदः ॥

ज्ञानात् गलितकर्मा यः लोकदृष्ट्या
अपि कर्मकृत् न आप्नोति अवसरम्
कर्तुम् वक्तुम् एव न किञ्चन ॥

अन्वयः शब्दार्थ
ज्ञानात् = ज्ञानसे
गलित = { नष्ट हुआ है
कर्मा = { कर्म जिस
का ऐसा

यः = जो ज्ञानी
लोकदृष्ट्या = लोकदृष्टि
करके

अन्वयः शब्दार्थ
कर्मकृत् = कर्मका क-
रनेवाला

अपि = भी
अस्ति = है

परन्तु = परन्तु
सः = वह
न = न

किञ्चन = कुछ

कर्तुम् = करने को

अवसरम् = अवसर

आप्नोति = पाता है

च = और

न = न

किञ्चन = कुछ

वक्तुमर्णव = कहनेको

भावार्थ ॥

जिस विद्वान् का अध्यास कर्मों में आत्मज्ञान से नष्ट होगया है वह लोकदृष्टि से कर्म करताहुआ मालूम देता है परन्तु मैं कर्म को करताहूँ ऐसा वह कभी-भी नहीं कहता है क्योंकि उसको आत्मज्ञान के प्रताप से कर्मफल की इच्छाही नहीं होती है ७७॥

मूलम् ॥

कृतमः कप्रकाशो वा हानं कचन किञ्चन ॥ निर्विकारस्य धीरस्य निरातंकस्य सर्वदा ॥ ७८ ॥

पदच्छेदः ॥

कृतमः क प्रकाशः वा हानम् कचन किञ्चन निर्विकारस्य धीरस्य निरातंकस्य सर्वदा ॥

अन्वयः शब्दार्थ
निर्विकारस्य=निर्विकार
च = और
सर्वदा = सर्वदा
निरातंकस्य = निर्भय
धीरस्य=ज्ञानी को
क = कहां
तमः = अन्धका-
रहे

अन्वयः शब्दार्थ
वा = अथवा
क = कहां
प्रकाशः = प्रकाश है
च = और
क = कहां
हानम् = त्याग है
न किंचन = कुछ नहीं है

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! जिस विद्वान् के मोहादिरूप विकार सब दूर होगये हैं उसकी दृष्टि में तम कहां है और तम के अभाव होने से प्रकाश कहां है ये दोनों सापेक्षिक हैं एकके न होने से दूसरे की भी स्थिति नहीं है क्योंकि लौकिकदृष्टिकरके ही तम और प्रकाश हैं तो लौकिकदृष्टि उसकी आत्मदृष्टि करके नष्ट होजाती है इसलिये उसकी दृष्टि में प्रकाश और तम दोनों नहीं रहते हैं ऐसे विद्वान्को कालादिकोंका भी भय नहीं रहता है उसको न कहीं हानि है न लाभ है न किसी में राग है न द्वेष है न ग्रहण है न त्याग है ॥ ७८ ॥

मूलम् ॥

क धैर्यम् क विवेकित्वं क निरातंकतापि
वा ॥ अनिर्वाच्यस्वभावस्य निःस्वभा
वस्य योगिनः ॥ ७६ ॥

पदच्छेदः ॥

क धैर्यम् क विवेकित्वम् क निरा-
तंकता अपि वा अनिर्वाच्यस्वभावस्य
निःस्वभावस्य योगिनः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अन्वयः शब्दार्थ

अनिर्वाच्यस्वभावस्य = अनिर्वचनीय स्वभाववाले

क = कहाँ है
विवेकित्वम् = विवेकिता

च = और

क = कहाँ

वा = अथवा

निरातंकता = निर्भयता

निःस्वभावस्य = स्वभाव रहित

योगिनः = योगी को

अपि = भी

क = कहाँ है

धैर्यम् = धैर्यता

भावार्थ ॥

अनिर्वाच्यस्वभाववाले योगी को धैर्यता कहाँ

और विवेकता कहाँ स्वभावरहित योगी को भय और निर्भयता कहाँ वह सदा आनन्दरूप एकसह ॥७९॥

मूलम् ॥

नस्वर्गेननरको जीवन्मुक्तिर्नचे
यहि ॥ बहुनात्रकिमुक्तेन योगदृष्ट्यान
किंचन ॥ ८० ॥

पदञ्चेदः ॥

न स्वर्गः न एव नरकः जीवन्मुक्तिः
न च एव हि बहुना अत्र किम् उक्तेन
योगदृष्ट्या न किंचन ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
ज्ञानितम् = ज्ञानीको	जीवन्मुक्तिः = जीवन्मु-		
न = न	एव = किंही		
स्वर्गः = स्वर्ग है	हि = निश्चय		
न = न	करके		
नरकः एव = नरकही है	अत्र = इसविषे		
च = और	बहुना = बहुत		
न = न	उक्तेन = करने से		

किम् = क्याप्र- | योगदृष्ट्या = योगदृ-
 योजन है | दृष्टि
 योगिनम् = योगीको | किंचनन = कुछभी नहीं है
 भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त आत्मज्ञानी की दृष्टि में न स्वर्ग है
 और न नरक है॥प्रश्न॥नाग्निक भी स्वर्ग नरकको नहीं
 मानता है अर्थात् नास्तिक की दृष्टि में भी न स्वर्ग है
 न नरक है तब नास्तिकमें और जीवन्मुक्त में कुछभी
 भेद न रहा॥उत्तर॥नाग्निक की दृष्टि में यह लोक तो
 है परन्तु परलोक नहीं है और न उसकी दृष्टि में आ-
 त्माही है वह तो केवल शून्यकोही मानता है और
 ज्ञानी जीवन्मुक्तकी दृष्टि में लोक परलोक दोनों नहीं
 हैं किंतु सर्वत्र एक आत्माही परिपूर्ण व्यापक है
 आत्मा से अतिरिक्त और कुछ भी विद्वान् की दृष्टि
 में नहीं है ॥ ८९ ॥

मूलम् ॥

नैवप्रार्थयतेलाभं नालाभेनानुशो-
 चति ॥ धीरस्यशीतलंचित्तममृतेनैव
 पूरितम् ॥ ९० ॥

पदच्छेदः ॥

न एव प्रार्थयते लाभम् न अलाभेन
अनुशोचति धीरस्य शीतलम् चित्तम्
अमृतेन एव पूरितम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

धीरस्य = ज्ञानी का

चित्तम् = चित्त

अमृतेन = अमृतसे

पूरितम् = पूरित हुआ

शीतलम् = शीतल है

अतः एव = इसीलिये

न = न

सः = वह

लाभम् = लाभके

लिये

अन्वयः शब्दार्थ

प्रार्थयते = प्रार्थना कर

ता है

च = और

न = न

अलाभेन = हानिसे

नेसे

एव = कभी

अनुशोचति = शोचकर

ता है

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त ज्ञानी न लाभ प्रति प्रार्थना करता है
और न अलाभ पर शोक करता है उसका चित्त पर

मानन्दरूपी अमृत करकेही तृप्त याने आनन्दित
रहता है ॥ ८१ ॥

मूलम् ॥

न शान्तं स्तौति निष्कामो न दुष्टम् अपि
निन्दति ॥ समदुःखसुखस्तृप्तः किञ्चित्
तत्कृत्यं न पश्यति ॥ ८२ ॥

पदच्छेदः ॥

न शान्तम् स्तौति निष्कामः न दुष्टम्
अपि निन्दति समदुःखसुखः तृप्तः
किञ्चित् कृत्यम् न पश्यति ॥

अन्वयः शब्दार्थ

निष्कामः = { कामनार-
तपुरुषया-
ने ज्ञानी

शान्तम् = शान्त पुरुषको

न = न

स्तौति = स्तुति कर-
ता है

अन्वयः शब्दार्थ

अपि = और

दुष्टम् = दुष्टपुरुषको

न = न

निन्दति = निन्दाक-
स्ता है

सम { सुख और दुःख
दुःख = { हैं तुल्य जिस
सुख : { को ऐसा
योगी = योगी
वृषः = आनन्दित
होता हुआ

कृत्यम् = किये हुये
कर्मको
किञ्चित् = कुछभी
न = नहीं
पश्यति = देखता है

भावार्थ ॥

विद्या और कामुक कर्मों से रहित जो ज्ञानी है वह शांतिआदिक शुद्धगुणों करके युक्त हुये पुरुष की स्तुति नहीं करता है॥ निःस्तुतिर्निर्नमस्कारो निःस्वधाकारण्यचाचलाचलानिकेतदचयतिर्निष्कामको भवेत् ॥ १ ॥ ज्ञानवान् यति किसी की न स्तुति करता है न किसीको नमस्कार करता है अग्निमें न हवनादि करता है न एक जगह वास करता है और न वह किसी की निंदा करता है सुख दुःख में सम रहता है निष्काम होने से किसी कृत्यको नहीं देखता है ॥ ८२ ॥

मूलम् ॥

धीरो न द्वेष्टि संसारमात्मानं न दिदृक्षति ॥ हर्षा मर्षा विनिर्मुक्तो न मृतो न च जीवति ॥ ८३ ॥

पदच्छेदः ॥

धीरः न द्वेष्टि संसारम् आत्मानम्
न दिदृक्षति हर्षामर्षविनिर्मुक्तः न मृतं
न च जीवति ॥

अन्वयः शब्दार्थ
हर्षामर्ष = { हर्ष रोष
विनिर्मुक्तः = { रहित
धीरः = ज्ञानी
संसारम् = संसार के
प्रति
न = न
द्वेष्टि = द्वेष कर-
ता है
च = और

अन्वयः शब्दार्थ
न = न
दिदृक्षति = देखने की इ-
च्छा करता है
सः = वह
न = न
मृतः = मरा हुआ
च = और
न = न
जीवति = जीवता है

भावार्थ ॥

जो धीर विद्वान् जीवन्मुक्त है वह संसार के साथ
द्वेष नहीं करता है क्योंकि वह संसार को देखता ही
नहीं है अपने आत्मा को ही देखता है और यदि सं-

को देखता है तो बाधितानुवृत्ति करके देखता है
इसीलिये वह संसार के साथ द्वेष नहीं करता है
यह अवस्था में वह आत्माको भी नहीं देखता है
कि वह स्वयम् आत्मरूप है और इसी कारण वह
दिकों से और जन्म मरण से रहित है ॥ ८३ ॥

मूलम् ॥

निःस्नेहः पुत्रदारादौ निष्कामो विप-
रुचः ॥ निश्चिन्तः स्वशरीरेऽपि निराशः
शोभते बुधः ॥ ८४ ॥

पदच्छेदः ॥

निःस्नेहः पुत्रदारादौ निष्कामः वि-
रुचः च निश्चिन्तः स्वशरीरेऽपि
निराशः शोभते बुधः ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
पुत्रदारादौ = पुत्र और स्त्री		विषयेषु = विषयों	
आदिकों विषे		विषे	
स्नेहः = स्नेह सहित		निष्कामः = कामना	
च = और		रहित	

अपि = और । बुधः = ज्ञानी

स्वशरीरे = अपने शरीर-विषे । शोभते = शोभायमान होता है

निश्चिन्तः = चिन्ता रहित

भावार्थ ॥

विद्वान् जीवन्मुक्त निराशङ्क आ २ ही शोभा को पाता है क्योंकि स्त्री पुत्रादिके स्नेहसे वह रहित है और इसी कारण विषयों में और भोगों में वह निष्काम है अर्थात् अपने शरीर की चिन्ता नहीं लिये भी भोजन आदिकों की चिन्ता नहीं ॥ ८४ ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
यत्र	= जहां	देशान्	= देशोंमें
अस्त	{ सूर्य अस्त	चरतः	= फिरनेवाले
मितशा-	{ होता है यहां	धीरस्य	= धानीको
यिनः	{ ही शयन	यथापति =	{ पतितवर्ची
	{ करनेवाले	तवर्चिनः =	{ के समान
च	= और	सर्वत्र	= सर्वत्र
स्वच्छंदम्	= इच्छानु-	तुष्टिः	= आनन्द
सार		+ भवति	= होता है

भावार्थ ॥

धीर विद्वान् को जैसे २ प्रारम्भवश से पदार्थ की प्राप्ति होती है वैसेही वह संतुष्ट रहता है और प्रारम्भ के वशसे नानाप्रकार के देशोंमें वनोंमें नगरों में विचरता हुआ सर्वत्रही तुष्ट रहता है ॥ ८५ ॥

मूलम् ॥

पततूदेतुवादेहो नास्यचित्तामहात्म
नः ॥ स्वभावभूमिविश्रान्तिविस्मृताशो
पसंसृतेः ॥ ८६ ॥

पदच्छेदः ॥

पततु उदेतु वा देहः न अस्मिन्
चिन्ता महात्मनः स्वभावभूमिविश्रान्ति
विस्मृताशेषसंसृतेः ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
स्वभाव	निजस्वभा-	अस्य = इसका	
भूमि	व रूपी भूमि	चिन्ता = चिन्तने	
विश्रा	विषे विश्राम	न = नहीं है	
न्तिवि =	करता है जो	वा = चाहें	
स्मृता	विस्मरण है	देहः = देह	
शेषसं	संपूर्ण सं-	उदेतु = स्थिर रहें	
सृतेः	सार जि-	वा = चाहें	
	सको ऐसे	पततु = नाश होवे	
महात्मनः = महात्माको			

भावार्थ ॥

जिस विद्वान् को अपना स्वरूपही भूमि है याने विश्राम का स्थान है अपने स्वरूप में विश्राम करके जिसको किसी प्रकार की भी चिन्ता नहीं होनी है देह चाहें रहे व न रहे वही जीवन्मुक्त है वही संसार से निवृत्त है ॥ ८६ ॥

मूलम् ॥

अकिञ्चनःकामचारो निर्द्वन्द्वश्चिद्वन्न
संशयः ॥ असक्तःसर्वभावेपु केवलो रम
न्निबुधः ॥ ८७ ॥

१५

पदच्छेदः ॥

अकिञ्चनः कामचारः निर्द्वन्द्वः चि-
द्वन्न संशयः असक्तः सर्वभावेपु केवलः
रमन्ते बुधः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
किञ्चनः=गृहस्थधर्म
रहित
कामचारः=विधिनिषेध
रहित
असक्तः=आसक्ति
रहित

अन्वयः शब्दार्थ
केवलः=विकाररहित
बुधः=ज्ञानी
सर्वभावेपु=सर्व भावों
विषे
रमन्ते=रमण क-
रताहैं

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त निर्विकार होकर संस्कारमें रमण करना
है अपने पास कुठनी नहीं रखताहै वह विधिनिषेध

का किङ्कर नहीं होता है स्वच्छन्दचारी है अपने इच्छासे विचरता है सुख दुःखादि द्वन्द्वोंसे वह रहित है संशयों से भी रहित है वह किसी पदार्थ में सं-
आसक्त नहीं है ॥ ८७ ॥

मूलम् ॥

निर्ममः शोभते धीरः समलोष्टाश्म-
कांचनः ॥ सुभिन्नहृदयग्रन्थिर्विनिर्धूतर-
जस्तमः ॥ ८८ ॥

पदच्छेदः ॥

निर्ममः शोभते धीरः समलोष्टाश्म-
कांचनः सुभिन्नहृदयग्रन्थिः विनिर्धूत-
रजस्तमः ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
निर्ममः = ममता रहित है जो		समलो	समान है
		श्म =	देला प-
		कांचनः	त्थर और
			स्वर्ण
			जिसको

सुभिन्न हृदय = ग्रन्थिः	{ टूट गई है हृदय की ग्रन्थि जि- सकी	निर्धूत रज = स्तमः	{ धुल गया है रज और तमस्वभा- व जिसका ऐसा ज्ञानी
		शोभते =	शोभायमान होता है

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त ज्ञानी ममता से रहित ही शोभा को पाता है क्योंकि उसकी दृष्टि में पत्थर मट्टी और सोना बराबर हैं आत्मज्ञान के बल से उसके हृदय की ग्रन्थि टूट गई है रज तमरूप मल उसके दूर हो गये हैं ॥ ८८ ॥

मूलम् ॥

सर्वत्रानवधानस्य न किञ्चिद्वासना
हृदि ॥ मुक्तात्मनो वितृप्तस्य तुलनाके
न जायते ॥ ८९ ॥

पदञ्चेदः ॥

सर्वत्र अनवधानस्य . न . किञ्चित्

इयति ॥ ब्रुवन्नपिनचब्रूतेकोऽन्यो निर्वासनादृते ॥ ९० ॥

पदच्छेदः ॥

जानन् अपि न जानाति पश्यन्
अपि न पश्यति ब्रुवन् अपि न च
ब्रूते कः अन्यः निर्वासनात् ऋते ॥

अन्वयः शब्दार्थ
निर्वासनात्=वासना-
हितपुरुषसे

अन्वयः शब्दार्थ
पश्यन् = देखता
हुआ

ऋते = इतर

अपि = भी

अन्यः = दूसरा

नपश्यति = नहीं देख-

कः = कौन है

ताहै

यः = जो

च = और

जानन् = जानता

ब्रुवन् = बोलता

हुआ

हुआ

अपि = भी

अपि = भी

न = नहीं

न ब्रूते = नहीं बो-

जानाति = जानता है ।

लताहै

भिना = { श्रेष्ठ	सः = सो
भिना = { अश्रेष्ठ	शोभते = शोभा- मान होता है
मतिः = बुद्धि	वा = चाहै
यस्य = जिसकी	भिक्षुः = भिक्षु हो
तस्मात् = इसी लिये	अपि = और
निष्कामः = कामना- रहित है	वा = चाहै
यः = जो	भूपतिः = राजा हो

भावार्थ ॥

जिस विद्वान्की उत्तम पदार्थों में इच्छाबुद्धि नहीं है और अनुत्तम पदार्थों में दोषबुद्धि नहीं है ऐसा जो निष्काम है वह चाहै भिक्षुक हो अथवा राजा हो संसार में वही शोभा को प्राप्त होता है राजों में निष्काम जनक और श्रीरामचन्द्रजी हुये हैं जिनके यश को आज तक संसार में लोक गान करते हैं और विरक्तों में जड़भरत दत्तात्रेय और याज्ञवल्क्य आदि हुये हैं जिनके शुद्ध चरित्र हस्तामलकवत् सब के दृष्टि में दिखाई दे रहे हैं ॥ ११ ॥

अठारहवां अध्याय ।

५०७

आत्मनिष्ठावाला है पूर्णार्थी है स्वेष्टापूर्वक आचार-
वाला है उसको संकोच कहा है और वृत्त्यादि संच-
रण कहा है उसको कर्तृत्व कहा है कहीं नहीं है
क्योंकि पदार्थों में उसका अभ्यास नहीं है ॥ १२ ॥

मूलम् ॥

आत्मविश्रान्तिवृत्तेन निराशेन गता-
तिना ॥ श्रंतयदनुभूयेत तत्कथं कस्य
कथ्यते ॥ ६३ ॥

पदच्छेदः ॥

आत्मविश्रान्तिवृत्तेन निराशेन गता-
तिना श्रंतः यत् अनुभूयेत तत् क-
थम् कस्य कथ्यते ॥

अन्यः शब्दार्थः । अन्यः शब्दार्थः
आत्म / आत्माश्चि निराशेन = आधारवृत्ति
विधान्ति = विधायक
वृत्तेन / वृत्तिवृत्ते
च = और
गतातिना = ज्ञानी के
अन्तः = आन्तर

मूलम् ॥

कस्वाच्छ्रृद्यं कसंकोचः कवातत्त्ववि-
निश्चयः ॥ निर्व्याजार्जवभूतस्य चरि-
तार्थस्य योगिनः ॥ ६२ ॥

पदच्छेदः ॥

क स्वाच्छ्रृद्यम् क संकोचः क वा त-
त्त्वविनिश्चयः निर्व्याजार्जवभूतस्य चरि-
तार्थस्य योगिनः ॥

अन्वयः शब्दार्थ
निर्व्याज = निष्कपट
जार्जव = और सरल
भूतस्य रूप

च = और

चरितार्थस्य = यथोचित

योगिनः = योगी को

क = कहां

अन्वयः शब्दार्थ
स्वाच्छ्रृद्यम् = स्वतन्त्र-
ता है

क = कहां

संकोचः = संकोच है

वा = अथवा

क = कहां

तत्त्ववि = तत्त्वका

निश्चयः = निश्चय है

भावार्थ ॥

जो निष्कपट योगी है कोमलस्वभाववाला है

आत्मनिष्ठावाला है पूर्णार्थी है स्वेच्छापूर्वक आचार-
वाला है उसको संकोच कहा है और वृत्त्यादि संच-
रण कहा है उसको कर्तृत्व कहा है कहीं नहीं है
क्योंकि पदार्थों में उसका अभ्यास नहीं है ॥ ९२ ॥

मूलम् ॥

आत्मविश्रान्तितृप्तेन निराशेन गता-
तिना ॥ अंतर्त्यदनुभूयेत तत्कथंकस्य
कथ्यते ॥ ९३ ॥

पदच्छेदः ॥

आत्मविश्रान्तितृप्तेन निराशेन गता-
तिना अंतः यत् अनुभूयेत तत् क-
थम् कस्य कथ्यते ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
आत्म	आत्माविषे	निराशेन=आधाररहित	
विश्रान्ति=	विश्रामकर	द्वये	
तृप्तेन	तृप्त द्वये	गतार्तिना=ज्ञानी के	
च = और		अन्तः = आभ्यन्तर	

77. "

५५ - क्रिमियानेक्रिम

अनन्तर १९५० ई.

अधिकारिप्रति

१३५ - हिम

कदा जयि

१३५५

मगर न निगल देता जानन्द । वह उम आनन्द ही । यका के
रण में अनुभव करता है वह उम आनन्द ही । यका के
प्रति कह नहीं मन्ता है क्योंकि निमके तुल्य दुमरा कोई
आनन्द ठमका नहीं मिलता है ॥ दृष्टान्त ॥ एक कु-
मारी कन्याने विवाहिता कन्याम पूछा कि पतिके साथ
संभोग में कैसा आनन्द है उमन कहा वह आनन्द में
कह नहीं मन्ती हू उम आनन्द ही उपमा कोई नहीं
है जब तू विवाही जायगी तब आपही तू जानलेगी
क्योंकि वह स्वसंवेद है तम ज्ञानवान का आनन्द भी
स्वसंवेद है वह वाणीकरके कहा नहीं जासकता ॥ १३ ॥

मूलम् ॥

सुप्तोऽपिनसुपुप्तौच स्वप्नेऽपिशयितो
नच ॥ जागरेऽपिनजागर्ति धाम्न्तृप्तः
पदेपदे ॥ ६४ ॥

पदव्येदः ॥

सुप्तः अपि न सुपुप्तो च स्वप्ने
अपि शयितः न च जागरे अपि न
जागर्ति धीरः तृप्तः पदे पदे ॥

अन्वयः शब्दार्थ

धीरः = ज्ञानी

सुपुप्तो = सुपुष्टि में

अपि = भी

न = नहीं

सुप्तः = सुषवान् रहे

च = और

स्वप्ने = स्वप्न में

अपि = भी

न = नहीं

शयितः = सोया

हुआ है

अन्वयः शब्दार्थ

च = और

जागरे = जाग्रत में

अपि = भी

न = नहीं

जागर्ति = जागता है

अतएव = इसलिये

सः = वह

पदेपदे = क्षण क्षण

विषे

तृप्तः = तृप्त है

भावार्थ ॥

विद्वान् जीवन्मुक्त सुपुष्टिके होने पर भी सुपुष्टि-

वाला नहीं होता है और स्वप्न अवस्था के प्राप्त होने पर भी वह स्वप्न अवस्था वाला नहीं होता है जाग्रत अवस्था में जागता हुआ भी वह जागता नहीं है क्योंकि तीनों अवस्थावाली जो बुद्धि है उसका वह साक्षी होकर उससे पृथक् है ॥ ९४ ॥

मूलम् ॥

ज्ञः सचिन्तोऽपि निश्चिन्तः सेन्द्रियो
ऽपि निरिन्द्रियः ॥ मबुद्धिरपि निर्वुद्धिः
साहंकारोऽनहंकृतिः ॥ ६५ ॥

पदच्छेदः ॥

ज्ञः सचिन्तः अपि निश्चिन्तः सेन्द्रियः अपि निरिन्द्रियः मबुद्धिः अपि निर्वुद्धिः साहंकारः अनहंकृतिः ॥

अन्वयः शब्दार्थ

ज्ञः = ज्ञानी

सचिन्तः = चिन्तास-
हित

अपि = भी

अन्वयः शब्दार्थ

निश्चिन्तः = चिन्ता-
हित

सेन्द्रियः = इन्द्रियां स-
हित

अपि = भी	साहंकारः = अहंकार
निरिन्द्रियः = इन्द्रियरहि-	सहित
तहें	अपि = भी
सबुद्धिः = बुद्धिसहित	अनहंकृतिः = अहंकार
अपि = भी	रहित हैं
निर्बुद्धिः = बुद्धिरहितहें	

भावार्थ ॥

ज्ञानवान् जीवन्मुक्त लोकों की दृष्टि में चिंतायुक्त प्रतीत होता है परंतु वास्तव से वह चिंतारहित है लोकदृष्टि से वह इन्द्रियों के सहित है वास्तवसे वह निरिन्द्रिय है लोकों की दृष्टि से वह बुद्धियुक्त प्रतीत होता है वास्तव से बुद्धिरहित है लोकों की दृष्टि में अहंकार के सहित है वास्तव से वह अहंकार रहित है क्योंकि सर्वत्र ही उसकी आत्मदृष्टि है जो अपने आप में आनन्द है वह और किसी में देखता नहीं है ॥ ९५ ॥ मूलम् ॥

नमुखीनचवाहुःखी नविरक्तोनसंग
वान् । नमुमुक्षुर्नवामुक्तोनकिंचिन्नचकिं
चन ॥ ९६ ॥

पदञ्चेदः ॥

न सुखी न च वा दुःखी न विरक्तः
न संगवान् न मुमुक्षुः न वा मुक्तः न
किञ्चित् न च किञ्चन ॥

अन्वयः शब्दार्थ

ज्ञानी = ज्ञानी

न = न

सुखी = सुखी है

च वा = और

न = न

दुःखी = दुःखी है

न = न

विरक्तः = विरक्त है

अन्वयः शब्दार्थ

न = न

संगवान् = संगवान् है

न = न

मुमुक्षुः = मुमुक्षु है

न वा = अथवा न

मुक्तः = मुक्त है

न किञ्चित् = न कुछ है

न च = और न

किञ्चन = किञ्चन है

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त ज्ञानी लोकदृष्टि से तो वह विषय भोगों करके बड़ा सुखी प्रतीत होता है परन्तु वास्तव से वह विषयजन्यमुख्यसे रहित है और फिर लोकदृष्टि से शारीरिकादिकगोग करके दुःखी भी प्रतीत होता

धिमान् । जाड्येऽपिनजडोधन्यः प
डित्येऽपिनपंडितः ॥ ६७ ॥

पदच्छेदः ॥

विशेषे अपि न विशिष्टः समाधौ
न समाधिमान् जाड्ये अपि न जडः
धन्यः पांडित्ये अपि न पंडितः ॥

अन्यः शब्दार्थ अन्य गच्छति

धन्यः = ज्ञानी

॥ ६७ - गच्छति

विशेषे = विशेषणं

अपि = भी

अपि = भी

न = नहीं

न = नहीं

जडः = गूढ़

विशेषः = विशेषणं

पांडित्ये = पंडितार्थे

नृदे

धे

समाधौ = समाधि धे

अपि = भी

न = नहीं

न = नहीं

समाधिमान् = समाधिमान्

मान्

=

॥

दृष्टि करके उसको विक्षेप होने पर भी वह विक्षिप्त नहीं होता है क्योंकि तिसको स्वप्रकाश आत्मा का अनुभव होरहा है और लोकदृष्टि करके वह समाधि में भी स्थित है परन्तु वास्तव से वह समाधि में स्थित भी नहीं है क्योंकि तिसको कर्तृत्वाभ्यास नहीं है फिर वह लोकदृष्टि करके जड़ प्रतीत होता है क्योंकि जड़ की तरह वह विचरता है परन्तु वास्तव से वह जड़ नहीं है आत्मदृष्टि होनेमें ॥ फिर वह लोकदृष्टि करके पंडित प्रतीत होता भी है परन्तु वह पंडित भी नहीं है क्योंकि तिसको अभिमान नहीं है इन्हीं हेतुओंसे वह जीवन्मुक्त भव्य है ॥१७॥

मूलम् ॥

मुक्तो यथास्थितिस्वस्थः कृतकत्तन्व्य
निर्वृतः ॥ समः सर्वत्र वैतृष्णान्न स्मरत्य
कृतंकृतम् ॥ ६८ ॥

पदभेदः ॥

मुक्तः यथास्थितिस्वस्थः कृतंकृत-
व्यनिर्वृतः समः सर्वत्र वैतृष्णान्न न
स्मरति अकृतम् कृतम् ॥

अन्वयः शब्दार्थ

मुक्तः = ज्ञानी

यथास्थि
तिस्व-
स्थः

कर्मानुसार
यथाप्राप्ति
वस्तुविषे
स्वस्थचि-
त्तबाला
हे

कृतकृतं
व्यनि-
कृतः

क्रियेष्टुये
और करने
योग्य कर्म
विषे संतोष
वान्
हे

अन्वयः शब्दार्थ

सर्वत्र = सर्वत्र

समः = समहे

न = और

वैदृग्णात् = दृग्णाके
अभाज सेअकृतम् = नदीक्रिये
ष्टुये

न = और

कृतम् = क्रियेष्टुये

कर्म = कर्म को

नस्मरति = नदीस्मर-
ण करना हे

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्त को प्रास्थ के वश में जैसी स्थिति
प्राप्त होती है उनीमें स्वस्थचिन्ताकाशी बह रक्त
हे उठग को कदापि बह प्राप्त नहीं होता है और
पूर्व क्रियेष्टुये तथा आगे करनेवाले लोगों कर्मों में

संतुष्टचिच्छही रहता है क्योंकि उसमें हठ याने
आग्रह किसी प्रकारका भी नहीं है इसीवास्ते वह
करेहुये और न करेहुये कर्मों का स्मरण भी नहीं
करता है ॥ १८ ॥

मूलम् ॥

न प्रीयते वन्द्यमानो निन्द्यमानो न कु
प्यति ॥ नैवोद्विजति मरणे जीवने ना
भिनन्दति ॥ ६६ ॥

पदञ्छेदः ॥

न प्रीयते वन्द्यमानः निन्द्यमानः न
कुप्यति न एव उद्विजति मरणे जीवने
न अभिनन्दति ॥

अन्वयः शब्दार्थ
ज्ञानी = ज्ञानी
न्यमानः = स्तुतिकि-
याहुआ
न = नहीं
प्रीयते = प्रसन्न होता है

अन्वयः शब्दार्थ
च = और
निन्द्यमानः = निन्दा कि
या हुआ
न = नहीं
कुप्यति = क्रोध करता है

अंगारहवां अध्याय ।

५

पदच्छेदः ॥

न धावन्ति जनाकीर्णम् न अरण्यम्
उपशान्तधीः यथा तथा यत्र तत्र
समः एव भवतिष्ठने ॥

अन्वयः शब्दार्थ

उपशान्त = शान्तबु-
धी = द्वियान्ता
(पुरुष

न = न

जनाकीर्णम् = { मनुष्यों
से व्याप्त
देश के
सन्मुख

व = और

न = न

अन्वयः शब्दार्थ

अरण्यम् = वनके

सन्मुख

धावन्ति = दौड़ताहै

परन्तु = परन्तु

यत्रतत्र = जहाँहै

वहीं

समःएव = समभाव

सेही

भवतिष्ठते = स्थित-
हताहै

हताहै

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! शांताचित्त जो जयिन्मुक्त है वह जनों
के भरोपुरे देश को भी नहीं दौड़ता है क्योंकि

च = और	जीवने = जीवने
मरणे = मरण विषे	विषे
न एव = कभी नहीं	न = नहीं
उद्विजति = उद्वेग करता है	अभिनन्दति = हर्ष करता है
च = और	

भावार्थ ॥

जीवन्मुक्तज्ञानी इतर पुरुषों करके स्तुति को प्राप्त हुआ भी हर्ष को नहीं प्राप्त होता है और इतर पुरुषों करके निन्दा किया हुआ भी क्रोध को नहीं प्राप्त होता है और मृत्यु के आने पर भी वह भय को भी नहीं प्राप्त होता है क्योंकि उसकी दृष्टि में आत्मा नित्य है जन्म मरण कोई वस्तु नहीं है उसको अधिक जीने से न इच्छा है न मरने का शोक है एकरतादे

॥४॥

जीवन्मुक्त को प्रारब्ध के बन्ध में जैसी स्थिति होती है उन्हींमें स्वस्थानिचवालाही वह रह उद्वेग को कदापि वह प्राप्त नहीं होता है कोरुये तथा आगे करनेवाले

अंगरहवां अध्याय ।

५

पदच्छेदः ॥

न धावति जनाकीर्णम् न अरण्यम्
उपशान्तधीः यथा तथा यत्र तत्र
समः एव भवतिष्ठने ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अन्वयः शब्दार्थ

उपशान्त = शान्तबु-
धी = द्विजाना
(पुरुष)

अरण्यम् = वनके

मन्मथ

धावति = दौड़नाहै

परन्तु = परन्तु

यत्रतत्र = जहाँहै

वहीं

समःएव = समभार

सेही

भवतिष्ठने = स्थित-

हनाहै

न = न

जनाकीर्णम् = मनुष्यों
से व्याप्त
देश के
सन्मुख

व = और

न = न

भावार्थ ॥

हे शिष्य ! शांतचित्त जो जीवन्मुक्त है वह जनों
के भरोपुरे देश को भी नहीं दौड़ता है क्योंकि

उसके साथ उसका राग नहीं और वनके तर्क भी नहीं दौड़ता है क्योंकि मनुष्यों के साथ उसका द्वेष नहीं है जहां तहां वनमें अथवा नगर में वह स्वस्थचित्त होकर एकरस ज्योंका त्योंही रहता है ॥ १०० ॥

इति श्रीअष्टावक्रगीताभाषाटीकायांशान्तिशतकं
नामाष्टादशप्रकरणंसमाप्तम् ॥ १८ ॥

उन्नीसवां अध्याय ॥

मूलम् ॥

तत्त्वविज्ञानसंदंशमादाय हृदयोद-
रात् ॥ नानाविधपरामर्शशल्योद्धारः
कृतो मया ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

तत्त्वविज्ञानसंदंशम् आदाय हृदयो-
दरात् नानाविधपरामर्शशल्योद्धारः कृतः
मया ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
भवतः = आपसे		नानाविधपरामर्श	नानाप्रकारके विचार रूप वाणका उद्धार
तत्त्वे विज्ञानसं- दंशम् = { तत्त्वज्ञान रूपसं- सीको		शल्योद्धारः	
आदाय = लेकरके		मया = मुझकरके	
हृदयोदरात् = हृदय और उदर से		कृतः = कियाग- याहै	

भावार्थ ॥

अब एकोनविंशति प्रकरण का प्रारम्भ करते हैं ॥

शिष्य गुरु के मुख से तत्त्वज्ञानी की स्वभाव-भूत शान्तिको श्रवणकरके अपनेको कृतार्थ मानकर अब गुरु के तोष के लिये अपनी शान्तिको आठ श्लोकों करके कहता है हे गुरो ! मैंने आपके सकाश से तत्त्वज्ञानके उपदेश की संसीरूपी शान्ति करके अपने हृदय से नानाप्रकारके संकल्पों विकल्पों को निकाल दिया है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

क धर्मः क च वा कामः क चार्थः क विवे
कता ॥ क द्वैतं क च वा ऽद्वैतं स्वमहिम्नि
स्थितस्य मे ॥ २ ॥

पद-भेदः ॥

क धर्मः क च वा कामः क च अर्थः
क विवेकता क द्वैतम् क च वा अद्वैतम्
स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥

अन्ययः शब्दार्थ
स्वमहिम्नि = अपनीम-
हिमाविषे

स्थितस्य = स्थितवृत्ते

मे = मुझ को

क = कहाँ

धर्मः = धर्मदे

च = और

क = कहाँ

कामः = कामदे

अन्ययः शब्दार्थ

च = और

क = कहाँ

अर्थः = अर्थदे

वा = अथवा

क = कहाँ

द्वैतम् = द्वैतदे

वा = अथवा

क = कहाँ

अद्वैतम् = अद्वैतदे

भावार्थ ॥

शिष्य कहता है मेरेको धर्म कहां है और काम कहां है मैंने धर्म अर्थ कामको अपने हृदय से निकाल दिया है क्योंकि ये सब नाशी हैं और अपनी महिमामें स्थित जो मैं हूं मेरेको विवेक कहां विवेक से भी मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है और चेतन आत्मा में जो विश्राम्यता को प्राप्त हुआ है उसको द्वैत और अद्वैत से भी कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ दृष्टान्त ॥ उत्तीर्णेतु गतेपारेनौकायाः किंप्रयोजनम् ॥ जब कि पुरुष नदी के परलेपार उतरजाता है तब नौका का भी कुछ प्रयोजन नहीं रहता है ॥ इसी तरह द्वैत का जब आत्मज्ञान करके याधा होजाता है तब फिर द्वैत के साथ अद्वैतका भी कुछ प्रयोजन नहीं रहता है क्योंकि अद्वैत भी द्वैतकी अपेक्षा करके कहा जाता है जब द्वैत न रहा तब अद्वैत कहना भी व्यर्थ ही है ॥ इस वास्ते द्वैत अद्वैत दोनों मेरेमें नहीं हैं ॥ २ ॥

मूलम् ॥

कृभूतंकभविष्यद्वावर्तमानमपिक्
वा ॥ कदेशःकचवानित्यंस्वमहिम्नि
स्थितस्यमे ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

क भूतम् क भविष्यत् वा वर्तमान-
म् अपि क वा क देशः क च वा नित्य-
म् स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥

अन्वयः शब्दार्थ
नित्यम् = नित्य
स्वमहिम्नि = अपनीम-
हिमाविषे
स्थितस्य = स्थित
हुये
मे = मुझको
क = कदा
भूतम् = भूतह
क = कदा

अन्वयः शब्दार्थ
भविष्यत् = भविष्यत्
हे
वा = अथवा
क = कदा
वर्तमानम् अपि = वर्तमा-
नह
वा = अथवा
क = कदा
देशः = देशह

भावार्थ ॥

चिन्त कदा है हे गुणे ! कालका भी मेरे दो-
स्तान नहीं होता है मेरी दृष्टि में भूत भविष्यत वर्त-
मान कोई नहीं है और न कोई देश है क्योंकि मैं

नित्य अपनी महिमा में ही स्थित हूं और सबमें मेरी
एक आत्मदृष्टि है ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

क्वचात्माक्वचवानात्माक्वशुभंका
शुभंतथा ॥ क्वचिन्ताक्वचवाचिन्ता
स्वमहिम्निस्थितस्यमे ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

क्व च आत्मा क्व च वा अनात्मा क्व
शुभम् क्व अशुभम् तथा क्व चिन्ता क्व च
वा अचिन्ता स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥

अन्वयः शब्दार्थ
स्वमहिम्नि = अपनी म-
हिमा में
स्थितस्य = स्थितहुये
मे = मुझको
क्व = कहां
आत्मा = आत्मा है

अन्वयः शब्दार्थ
च = और
वा = अथवा
क्व = कहां
अनात्मा = अनात्मा
है
क्व = कहां

मूलम् ॥

कदूरंकसमीपंवावाहंकाभ्यन्तरंक
वा ॥ क्वस्थूलंक्वचवासूक्ष्मंस्वमहिम्नि
स्थितस्यमे ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ॥

क दूरम् क समीपम् वा बाह्यम् क
आभ्यन्तरम् क वा क स्थूलम् क च
वा सूक्ष्मम् स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥

अन्वयः शब्दार्थ
स्वमहिम्नि = अपनीम-
हिमामें
स्थितस्य = स्थितहुये
मे = मुझको
क = कहाँ
दूरम् = दूरहै
च = और
क = कहाँ

अन्वयः शब्दार्थ
बाह्यम् = बाह्यहै
च = और
क = कहाँ
समीपम् = समीपहै
च = और
क = कहाँ
आभ्यन्तरम् = आभ्य-
न्तरहै

च = और	च = और
क = कहाँ	क = कहाँ
स्थूलम् = स्थूल है	सूक्ष्मम् = सूक्ष्म है

भावार्थ ॥

मेरे में दूर कहाँ है समीप कहाँ है बाह्य कहाँ है
अंतर कहाँ है स्थूल कहाँ है सूक्ष्म कहाँ है जो सर्वत्र
परिपूर्ण है उसमें कुछभी नहीं बनता है ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

क्वमृत्युर्जीवितं वा क्व लोकाः क्वास्य
क्वलौकिकम् ॥ कलयः कसमाधिर्वास्वम
हिमि स्थितस्य मे ॥ ७ ॥

पदब्धेदः ॥

क्व मृत्युः जीवितम् वा क्व लोकाः क्वास्य
क्वलौकिकम् क्व लयः क्व समाधिः
वा स्वमहिमि स्थितस्य मे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
स्वमहिमि	= अपनी म-	स्थितस्य	= स्थित हुये
हिमामें		मे	= मुझको

क = कहां
 मृत्युः = मृत्युहै
 वा = अथवा
 क = कहां
 जीवितम् = जीवितहै
 क = कहां
 लोकाः = भूआदि
 लोकहैं

अस्य = इसमुक्त
 ज्ञानीको
 क = कहां
 लौकिकम् = लौकिक
 व्यवहारहै
 क = कहां
 लयः = लयहै
 वा = अथवा
 क = कहां
 समाधिः = समाधिहै

भावार्थ ॥

मृत्यु कहां है और जीवन कहां है आत्मा तीनों कालों में एकरस ज्योंका त्यों अपनी महिमा में स्थित है उसमें जन्म कहां मरण कहां लोक कहां लोकोंमें होनेवाले पदार्थ कहां हैं लय कहां है और समाधि कहां अपनी महिमा में जो स्थित है उसमें लयादिक भी तीनों काल में नहीं हैं ॥ ७ ॥

मूलम् ॥

अलं त्रिवर्गकथया योगस्य कथया

अलम्॥ अलं विज्ञानकथया विश्रान्तस्य
ममात्मनि॥ ८॥ पदञ्चेदः ॥

अलम् त्रिवर्गकथया योगस्य कथया
अपि अलम् अलम् विज्ञानकथया विश्रा-
न्तस्य मम आत्मनि ॥

अन्वयः शब्दार्थ
आत्मनि=आत्माविषे
विश्रान्तस्य=विश्रान्त
हुये

मम = मुझको
त्रिवर्ग } = धर्म अर्थ काम
कथया } = की कथा से
अलम् = पूर्णता है

अन्वयः शब्दार्थ
योगस्य = योगकी
कथया = कथा से
अलम् = पूर्णता है
च = और

विज्ञान } = विज्ञानकी
कथया } = कथासे भी
अलम् = पूर्णता है

भावार्थ ॥

धर्म अर्थ काम मोक्ष इनकी कथों से योगकी क-
थोंसे विज्ञानकी कथों से भी कुछ प्रयोजन नहीं है
क्योंकि मैं आत्मा मैं विश्रान्ति को प्राप्त हुवा हूँ॥ ८ ॥

इति श्रीअष्टावक्रगोताभाषाटीकायाश्वात्मविश्रा-
न्त्यष्टकं नामैकोनविंशतिकं प्रकरणम् ॥ १९ ॥

वीसवां अध्यायः ॥

मूलम् ॥

कभूतानिकदेहोवाकेन्द्रियाणिकवा
मनः ॥ कशून्यंकचनैराश्यंमत्स्वरूपे
निरंजने ॥ १ ॥

पदच्छेदः ॥

क भूतानि क देहः वा क इन्द्रियाणि
क वा मनः क शून्यम् क च नैराश्यम्
मत्स्वरूपे निरंजने ॥

अन्वयः शब्दार्थः
निरंजने = निरंजन
मत्स्वरूपे = मेरेस्वरूप
विषे
क = कहाँ
भूतानि = आकाशा-
दिभूतहैं

अन्वयः शब्दार्थः
क = कहाँ
देहः = देहहै
वा = अथवा
क = कहाँ
इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँहैं
वा = अथवा

क = कहां	शून्यम् = शून्य है
मनः = मन है	क = कहां
क = कहां	नेराशयम् = आकाशका अभाव है

भावार्थ ॥

अब बीसवें प्रकरण का आरंभ करते हैं विद्वानों की स्वभावभूत जो जीवन्मुक्तिवशा है उसको अब चौदह श्लोकों करके इस प्रकरण में निरूपण करते हैं ॥ शिष्य कहता है संपूर्ण उपाधियोंसे शून्य जो मेरा स्वरूप है उस निरंजन मेरे स्वरूप बिषे पांच भूत कहां हैं और सूक्ष्मभूतों का कार्य इन्द्रिय कहां हैं और मन कहाँ है ॥ प्रश्न ॥ क्या तुम शून्य हो ॥ उत्तर ॥ शून्य भी मेरे में नहीं है क्योंकि सद्रूप आत्मा बिषे शून्य भी तीनों काल में नहीं रहसक्ता है शून्य कल्पित है बिना अधिष्ठानके शून्य की कल्पना भी नहीं होसक्ती है इन संपूर्ण भूत इन्द्रियादिक कल्पित पदार्थों का मैं साक्षी हूँ ॥ १ ॥

मूलम् ॥

क्वशास्त्रं क्वात्मविज्ञानं क्ववानिर्विष

यंमनः ॥ क्वतृप्तिःक्ववितृष्णत्वंगतद्व
न्द्वस्यमेसदा ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥ १

भावार्थ ॥

हे गुरो ! मेरा शास्त्रसे और शास्त्रजन्य ज्ञान से क्या प्रयोजन है और आत्मविश्रान्तिसे भी मेरा क्या प्रयोजन है सबके गलित होनेसे मेरेको न विषयवासना है न निर्वासना है न तृप्ति है न तृष्णा है न द्वन्द्व है न अद्वन्द्व है मैं शान्त एकरस हूँ ॥ २ ॥

मूलम् ॥

कवविद्याकवचवाऽविद्याकवाहंकेदंमम
कववा ॥ कवबन्धःकवचवामोक्षःस्वरूप
स्यकवरूपिता ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

क विद्या क च वा अविद्या क अहम्
क इदम् मम क वा क बन्धः क च वा
मोक्षः स्वरूपस्य क रूपिता ॥

अन्वयः	शब्दार्थः	अन्वयः	शब्दार्थः
स्वरूपस्य = मेरेरूपको		क = कहां	
क = कहां		विद्या = विद्याहे	
रूपिता = रूपिभाहे		च = और	

५३४ अष्टावक्र सटीक ।

यं मनः ॥ क्व तृप्तिः क्व वितृष्णत्वं गतद्वन्द्वस्य मे सदा ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

क शास्त्रम् क आत्मविज्ञानम् क वा
निर्विषयम् मनः क तृप्तिः क वितृष्णत्वं-
म् गतद्वन्द्वस्य मे सदा ॥

अन्यः शब्दार्थः अन्यः शब्दार्थः

सदा = सदा निर्विषयम् = निर्विषय-

गतद्वन्द्वस्य = द्वन्द्व- दित .

दित

मे = मुक्तो

मनः = मनः

क = कदा

क = कदा

शास्त्रम् = शास्त्रदे

तृप्तिः = तृप्तिदे

क = कदा

वा = वा

आत्मविज्ञानम्

क = कदा

मनः = मनः

वितृष्णत्वं = वितृष्णात्

क = कदा

अन्यदे

भावार्थ ॥

हे गुरो ! मेरा शास्त्रसे और शास्त्रजन्य ज्ञान से क्या प्रयोजन है और आत्मविश्रान्तिसे भी मेरा क्या प्रयोजन है सबके गलित होनेसे मेरेको न विषयवास्तवा है न निर्वासना है न तृप्ति है न तृष्णा है न द्वन्द्व है न अद्वन्द्व है मैं शान्त एकरस हूं ॥ २ ॥

मूलम् ॥

कवविद्याकवचवाऽविद्याकवाहंकेदंमम
कवा ॥ कवबन्धःकवचवामोक्षःस्वरूप
स्यकवरूपिता ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ॥

क विद्या क च वा अविद्या क अहम्
क इदम् मम क वा क बन्धः क च वा
मोक्षः स्वरूपस्य क रूपिता ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
स्वरूपस्य = मेरेरूपको		क = कहां	
क = कहां		विद्या = विद्या है	
रूपिता = रूपि भा है		च = और	

यं मनः ॥ क्व तृप्तिः क्व वितृष्णत्वं गतद्वन्द्वस्य मे सदा ॥ २ ॥

पदच्छेदः ॥

क शास्त्रम् क आत्मविज्ञानम् क वा निर्विषयम् मनः क तृप्तिः क वितृष्णत्वम् गतद्वन्द्वस्य मे सदा ॥

अन्वयः शब्दार्थ

सदा = सदा

गतद्वन्द्वस्य = द्वन्द्वर-

हित

मे = मुझको

क = कहाँ

शास्त्रम् = शास्त्रहे

क = कहाँ

आत्मविज्ञानम् } आत्मज्ञान
= हे

क = कहाँ

अन्वयः शब्दार्थ

निर्विषयम् = विषय-

हित

मनः = मन हे

क = कहाँ

तृप्तिः = तृप्तिहे

वा = और

क = कहाँ

वितृष्णत्वम् = तृष्णाका

अभावहे

भाषार्थ ॥

हे गुरो ! मेरा शास्त्रसे और शास्त्रजन्य ज्ञान से क्या प्रयोजन है और आत्मविश्रान्तिसे भी मेरा क्या प्रयोजन है सबके गलित होनेसे मेरेको न विषयवासना है न निर्वासना है न तृप्ति है न मृणा है न द्वन्द्व है न अद्वन्द्व है मैं शान्त एकरस हूँ ॥ २ ॥

मूलम् ॥

क्वविद्याक्वचवाऽविद्याक्वाहंकेदंमम
क्ववा ॥ क्वबन्धःक्वचवामोक्षःस्वरूप
स्यक्वरूपिता ॥ ३ ॥

पदन्तेदः ॥

क्व विद्या क्व च वा अविद्या क्व अहम्
क्व इदम् मम क्व वा क्व बन्धः क्व च वा
मोक्षः स्वरूपस्य क्व रूपिता ॥

अन्वयः शब्दार्थ
स्वरूपस्य = मेरुरूपको
क्व = कहाँ
रूपिता = रूपिताहै

अन्वयः शब्दार्थ
क्व = कहाँ
विद्या = विद्याहै
च = और

क = कहा	वा = अथवा
अविद्या = अविद्याहै	क = कहाँ
क = कहाँ	मम = मेरा है
अहम् = अहंकारहै	वा = अथवा
वा = अथवा	क = कहाँ
क = कहाँ	बन्धः = बन्धहै
इदम् = यहवाह्य	च = और
वस्तुहै	क = कहाँ
	मोक्षः = मोक्षहै

भावार्थ ॥

और मेरेमें अविद्या आदिक धर्म कहाँहै अहंकार कहाँ है बाह्यवस्तु कहाँ है ज्ञान कहाँहै मेरा किसके साथ सम्बन्ध है सम्बन्ध दूसरे के साथ होता है दूसरा न होनेसे मैं सम्बन्धरहित हूँ बन्ध मोक्ष धर्म भी मेरे में नहीं हैं निर्विशेष मेरे स्वरूप में धर्म की वार्ता भी कोई नहीं है और निर्धर्मक मेरे स्वरूप में विद्या आदिक कोई भी धर्म नहींहै ॥ ३ ॥

मूलम् ॥

क्वप्रारब्धानिकर्माणिजीवन्मुक्तिरपि

क्ववा ॥ क्वतद्विदेहकैवल्यंनिर्विशेष
स्यसर्वदा ॥ ४ ॥

पदञ्चेदः ॥

क प्रारब्धानि कर्माणि जीवन्मुक्तिः
अपि क वा क तत् विदेहकैवल्यम्
निर्विशेषस्य सर्वदा ॥

अन्वयः शब्दार्थः । अन्वयः शब्दार्थः

सर्वदा = सर्वदा

वा = अथवा

निर्विशेषस्य = { निर्विशेषया-
ने धर्माधर्म
रहित

क = कहां
जीवन्मुक्तिः = जीवन्मुक्ति
है

मे = मुझको

च = और

क = कहां

क = कहां

प्रारब्धानि = प्रारब्ध

तद्विदेह
कैवल्य } वह विदेह
= मुक्तिभी
है

कर्माणि = कर्म हैं

म् अपि

भावार्थः ॥

शिष्य कहता है हे गुरु ! मुझ निर्विशेष निराकार

निरवयव आत्माका प्रारब्धकर्म कहां है जीवन्मुक्ति
ओर विदेहमुक्ति कहां है किन्तु कोई भी वास्त
से नहीं है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

क कर्ता क च वा भोक्ता निष्क्रियं स्फु
णं क वा ॥ कापरोक्षं फलं वा क निःस्वभ
वस्य मे सदा ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

क कर्ता क च वा भोक्ता निष्क्रियम्
स्फुरणम् क वा क अपरोक्षम् फलम् वा
क निःस्वभावस्य मे सदा ॥

अन्वयः शब्दार्थ

सदा = सदा

निःस्वभावस्य = स्वभाव

रहित

मे = मुझको

क = कहां

कर्ता = कर्तापनादे

अन्वयः शब्दार्थ

च = ओर

क = कहां

भोक्ता = भोक्ताप-

नादे

वा = अपरा

क = कहां

निरवयव आत्माका प्रारब्धकर्म कहां है जीवन्मुक्ति
 ओर विदेहमुक्ति कहां है किन्तु कोई भी वास्तव
 से नहीं है ॥ ४ ॥

मूलम् ॥

क कर्ता क च वा भोक्ता निष्क्रियं स्फुर
 णं क वा ॥ क अपरोक्षं फलं वा क निःस्वभा
 वस्य मे सदा ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ॥

क कर्ता क च वा भोक्ता निष्क्रियम्
 स्फुरणम् क वा क अपरोक्षम् फलम् वा
 क निःस्वभावस्य मे सदा ॥

अन्वयः शब्दार्थ

सदा = सदा

निःस्वभावस्य = स्वभाव
 रहित

मे = मुझको

क = कहां

कर्ता = कर्तापनाहै

अन्वयः शब्दार्थ

च = और

क = कहां

भोक्ता = भोक्ताप-

नाहै

वा = अथवा

क = कहां

निष्क्रियम् = क्रियार-	अपरोक्षम् = प्रत्यक्षज्ञा-
हितहे	नहै
वा = अथवा	वा = अथवा
क = कहां	क = कहां
स्फुरणम् = स्फुरणहै	फलम् = { विषयाकार-
वा = अथवा	{ वृत्त्यवच्छि-
	{ नचेतनहै

भावार्थ ॥

स्वभाव से रहित जो मैं हूँ तिस मेरे में कर्तृत्व कर्म कहां है और भोक्तृत्व कर्म कहां है अर्थात् कर्तापना और भोक्तापना दोनों मेरेमें नहीं हैं क्योंकि क्रिया से रहित मुझ आत्माऽऽनन्द में कर्तृत्व और भोक्तृत्व दोनों नहीं बनतेहैं इसीवास्ते वृत्तिरूप ज्ञान भी मेरेमें नहीं है क्योंकि चित्तके स्फुरण से वृत्तिरूप ज्ञान उत्पन्नहोताहै सो चित्तका स्फुरणभी मेरे में नहीं है ॥ ५ ॥

मूलम् ॥

क लोकः क मुमुक्षुर्वा क योगीज्ञान
वान् क वा ॥ कबद्धः कचवामुक्तः स्वस्व
रूपेऽहमद्वये ॥ ६ ॥

भी नहीं हैं मुमुक्षु के अभाव होनेसे ज्ञानवान् योगी भी नहीं हैं ऐसा होने से न कोई बन्द है और न कोई मुक्त है केवल अद्वैत आत्मा ही है ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

क सृष्टिः क च संहारः क साध्यं क च साधनम् ॥ क साधकः क्व सिद्धिर्वा स्वस्वरूपेऽहम् अद्वये ॥ ७ ॥

पदञ्चेदः ॥

क सृष्टिः क च संहारः क साध्यम् क च साधनम् क साधकः क सिद्धिः वा स्वस्वरूपे अहम् अद्वये ॥

अन्वयः शब्दार्थ

अहम् = आत्मास्वरूप

अद्वये = अद्वैत

स्वस्वरूपं = अपने स्वरूपविषे

क = कहां

अन्वयः शब्दार्थ

सृष्टिः = सृष्टि है

च = और

क = कहां

संहारः = संहार है

क = कहां

साध्यम् = साध्य है

अन्वयः शब्दार्थ

सर्वदा=सर्वदा

विमलस्य=निर्मलरूप

मे=मुझको

• क=कहाँ

प्रमाता=प्रमाताहै

वा=और

क=कहाँ

प्रमाणम्=प्रमाणहै

च=और

क=कहाँ

अन्वयः शब्दार्थ

प्रमेयम्=प्रमेयहै

च=और

क=कहाँ

प्रमा=प्रमाहै

क=कहाँ

किञ्चित्=किञ्चित्है

वा=और

क=कहाँ

न किञ्चित्=अकिञ्चित्है

भावार्थ ॥

सर्वदा काल जो उपाधिरूपी मल से रहित है
अर्थात् जिसमें उपाधि शरीरादिक वास्तव से नहीं हैं
उसमें प्रमातापना प्रमाणपना और प्रमेयपना कहा
होसकता है अर्थात् प्रमाता प्रमाण प्रमेय ये तीनों अज्ञान
के कार्य हैं जब स्वप्रकाश चेतनमें अज्ञान की संभा-
वनामात्र भी नहीं है तब उसके कार्यों की संभाव-
ना कैसे होसकती है किन्तु कदापि नहीं होसकती है
और प्रमा जो वृत्तिज्ञान है वह भी नहीं है क्योंकि

क = कहां	वा = और
मूढ़ता = मूढ़ता है	क = कहां
क = कहां	विपादः = शोक है
हर्षः = हर्ष है	

भावार्थ ॥

शिष्य कहता है हे गुरो ! सर्वदा काल क्रिया से रहित जो मेरा स्वरूप है तिसमें एकाग्रता कहा है जहां पर प्रथम विक्षेप होता है वहां पर विक्षेपकी निवृत्ति के लिये एकाग्रता की जाती है सो मेरे में विक्षेप तो तीनों काल में है नहीं तब एकाग्रता कौन कर और नियंथता याने मूढ़ता भी मेरे में नहीं है क्योंकि ज्ञानस्वरूप आत्मा में मूढ़ता तीनों काल में नहीं है और हर्ष भी मेरे में नहीं है और न विपाद है क्योंकि हर्ष और विपाद दोनों अन्तःकरण के धर्म हैं वह अन्तःकरण क्रियाशाला है आत्मा क्रियारहित है उस में हर्ष विपाद कहा है ॥ ९ ॥

मूलम् ॥

क्वचैपव्यवहारोवाक्वचसापरमार्थ

हारिक पदार्थों का ज्ञान कहाँ है और पारमार्थिक ज्ञान कहाँ है ये भी दोनों अन्तःकरणके धर्म हैं और सुख तथा दुःख भी मेरे में नहीं हैं क्योंकि ये भी दोनों अन्तःकरण के धर्म हैं ॥ १० ॥

मूलम् ॥

कमायाकचसंसारःकप्रीतिर्विरतिः
कवा ॥ क्वजीवः क्वचतद्ब्रह्मसर्वदावि
मलस्यमे ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ॥

क माया क च संसारः क प्रीतिः
विरतिः क वा क जीवः क च तत् ब्रह्म
सर्वदा विमलस्य मे ॥

अन्वयः	शब्दार्थ	अन्वयः	शब्दार्थ
सर्वदा = सर्वदा		च = और	
विमलस्य = निर्मल		क = कहाँ	
मे = मुझको		संसारः = संसारहे	
क = कहाँ		क = कहाँ	
माया = मायाहे		प्रीतिः = प्रीति हे	

या = ओर
 क = कहा
 विरतिः = विरति है
 क = कहां

जीवः = जीव है
 च = और
 क = कहां
 तद्ब्रह्म = वह ब्रह्म है

भावार्थ ॥

हे गुरु! सर्वदाकाल त्रिमल उपाधि से शून्य जो मैं हूँ तिस मेरेमें माया कहां है और माया के अभाव होने से माया का कार्य जगत् मेरे में कहां है वह भी तीनों कालमें मेरेमें नहीं है और प्रीति तथा विरति भी मेरेमें नहीं है और जीव तथा ब्रह्मभाव भी मेरेमें नहीं हैं क्योंकि दोनों माया अविद्यारूपी उपाधियों करके ही कहेजाते हैं जब कि कोई भी उपाधि वास्तव से नहीं है तब जीवभाव और ईश्वरभाव भी कहना नहीं बनता है ॥ ११ ॥

मूलम् ॥

क्वप्रवृत्तिर्निवृत्तिर्वाक्वमुक्तिःक्वच
 वन्धनम् ॥ कूटस्थनिर्विभागस्यस्वस्थ
 स्थममसर्वदा ॥ १२ ॥

पदञ्चेदः ॥

क प्रवृत्तिः निवृत्तिः वा क मुक्तिः क
व बन्धनम् कूटस्थनिर्विभागस्य स्व-
स्थस्य मम सर्वदा ॥

अन्वयः शब्दार्थ	अन्वयः शब्दार्थ
सर्वदा = सर्वदा	क = कहां
स्थस्य = स्थिर	निवृत्तिः = निवृत्तिहे
कूटस्थनि	व = और
विभागस्य =	क = कहां
कूटस्थ	मुक्तिः = मुक्तिहे
और वि-	व = और
भागरहित	क = कहां
मम = मुझको	बन्धनम् = बन्धहे
क = कहां	
प्रवृत्तिः = प्रवृत्तिहे	
वा = अथवा	

भावार्थ ॥

कूटस्थ विभाग से रहित किया से रहित जो मैं हूं
मैं मेरेमें प्रवृत्ति कहां है और निवृत्ति कहां है मुक्ति
कहां है और बन्ध कहां है अर्थात् ये सब निर्विकार
आत्मामें कभी भी नहीं बनसकते हैं ॥ १२ ॥

मूलम् ॥

कोपदेशः क्ववाशास्त्रं क्वशिष्यः क्व
चवागुरुः ॥ क्वचास्तिपुरुषार्थोवानिरु-
पाधेः शिवस्य मे ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ॥

क उपदेशः क वा शास्त्रम् क शिष्यः
क च वा गुरुः क च अस्ति पुरुषार्थः वा
निरुपाधेः शिवस्य मे ॥

अन्वयः शब्दार्थ
निरुपाधेः = उपाधिर-
हित
शिवस्य = कल्याणरू-
प

मे = मुझको
क = कहां
उपदेशः = उपदेशहै
वा = अथवा

अन्वयः शब्दार्थ
क = कहां
शास्त्रम् = शास्त्रहै
क = कहां
शिष्यः = शिष्यहै
च = और
वा = अथवा
क = कहां
गुरुः = गुरुहै

च = और

क = कहाँ

पुरुषार्थः = मोक्ष

अस्ति = है

भावार्थ ॥

शिवरूप याने कल्याणरूप उपाधि से रहित जो मैं हूँ तिस मेरे लिये उपदेश कहाँ है क्योंकि उपदेश जो होता है अपने से भिन्न को होता है सो अपने से भिन्न तो कोई भी नहीं है इसगस्ते शास्त्रगुरुरूपी उपदेश कभी नहीं है और शिष्यभाव तथा गुरुभाव भी नहीं है क्योंकि ये सब भी भेद को लेकरके ही होते हैं ॥ १३ ॥ मूलम् ॥

क्वचास्तिक्वचवानास्तिक्वास्तिचे
कक्वचद्वयम् ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनकिंचि
न्नोत्तिष्ठतेमम ॥ १४ ॥

पदव्येदः ॥

क च अस्ति क च वा न अस्ति क
अस्ति च एकम् क च द्वयम् बहुना अत्र
किम् उक्तेन किंचित् न उत्तिष्ठते मम ॥

अन्वयः शब्दार्थ

क = कहाँ

अन्वयः शब्दार्थ

अस्ति = अस्ति है

च = और
 क = कहां
 नास्ति = नास्ति है
 च = और
 क = कहां
 एकम् = एक
 अस्ति = है
 च = और
 क = कहां
 दयम् = दोहें

अत्र = इस विषे
 बहुता = बहुत
 उक्तेन = कहने से
 किम् = क्या प्रयो-
 जन है
 मम = मुझको
 किंचित् = कोई वस्तु
 न = नहीं
 उत्तिष्ठते = प्रकाश
 करता है

भावार्थ ॥

और मेरेमें अस्ति याने है और नास्ति याने नहीं है यह भी स्फुरण नहीं होता है क्योंकि असत्य व अपेक्षा से अस्तिव्यवहार होता है और सत्यकी अपेक्षा से नास्तिव्यवहार होता है मां मेरे में व्यवहार के अभाव से दोनों नहीं हैं न एकपना है न द्वैपना है बहुत कथन करने से क्या प्रयोजन है तत्त्वस्वरूप में कुछ भी नहीं बनता है ॥ १४ ॥

इति श्रीवावूजालिमहिहकृताष्टावक्रगीताभाषा
 टीकायां जीवन्मुक्तिचतुर्दशकं नाम विंश
 तिकं प्रकरणं समाप्तम् ॥ २० ॥

सन्द भी सूटने नहीं पाया और झोके के जानने के लिये अफ भी लगा दिये हैं कि भ्रम न पड़े अथुर टेपु के बहुत पुष्ट हैं अथ की बार बड़ी होशियारी से उापी गई है ॥

तथा पद्यानुमा क्री० १५)

विदित हो कि यह पद्यानुमा बाल्मीकीयरामायण जो कि अथ की बार मादिकमतवा ने छपाकर मुद्रितकी है वह बहुतही अनुपम होकर सदृशनाय है कि जिसका भाषानुवाद धनावलीमामनिवासि रामचरणोपासि पण्डित महेरादच ने किया व जिसका सशोधन भी सस्कृतप्रतिसे उच्चाय प्रदेशान्तर्गत गुण्डामामनिकासि पण्डित सूर्यदान जी ने किया है इसमें प्रत्येक श्लोको का अर्थ अन्वयरीति से कहा गया व प्रत्येक पदो व अक्षरोंका जैसा अर्थ होना चाहिये था वैसाही हुआ है यद्यपि मुम्बई आदि नगरोंमें इसके बहुत से अनुवाद हुए हैं तो भी वह इसके समान नहीं होसकते हैं क्योंकि उक्तनगरोंके उपेहुर अनुवादों में कहींर अन्वय रीतिसे अर्थ मिलता व कहीं २ मनमाना देख पड़ता है इस भेदको विज्ञानूजोगही समझसकते हैं इस हमारे अनुवाद में शुद्धता, छपाई, रोशनाई, कापड आदि बड़ी सफाई के साथ में है इसकी सरळ हिन्दी भाषा सर्वदेशवासियों के समझ में आसकती है जिसकी भूमिका सकलजनतोषिका बनी है व जिसके प्रत्येक सर्गों का सूचीपत्र भी बहुतही उत्तम रचाया है केवल इसी सेही सर्वसाधारण जन रामायणकी पारयण बाच सकते हैं—इसकी उत्तमता देखनी से बाहर है अहो ग्राहकगणो ! इसके खरीदने में विलम्ब मत करो क्योंकि विलम्ब होने में सिवाय पछिताने के और कुछ हाथ नहीं लगता है आशा है कि सर्व महाशयजन अवश्यही इसको देखेंगे और इसकी एकर प्रति खरीदकर अपने घरको सुशो-
भित करेंगे अग्रे किमधिक बहुश्रेष्ठित्यलम् ॥

च = और
 क = कहां
 नास्ति = नास्तिहे
 च = और
 क = कहां
 एकम् = एक
 अस्ति = है
 च = और
 क = कहां
 द्वयम् = दो हैं

अत्र = इस विषे
 बहुना = बहुत
 उक्तेन = कहने से
 किम् = क्या प्रयो-
 जन है
 मम = मुझको
 किञ्चित् = कोई वस्तु
 न = नहीं
 उत्तिष्ठते = प्रकाश
 करता है

भावार्थ ॥

और मेरेमें अस्ति याने है और नास्ति याने नहीं
 है यह भी स्फुरण नहीं होता है क्योंकि असत्य व
 अपेक्षा से अस्तिव्यवहार होता है और सत्यकी अं
 क्षा से नास्तिव्यवहार होता है सो मेरे में व्यवह
 के अभाव से दोनों नहीं हैं न एकपना है न द्वे
 पना है बहुत कथन करने से क्या प्रयोजन है
 तत्त्वस्वरूप में कुछ भी नहीं बनता है ॥ १४ ॥

इति

शब्द भी छूटने नहीं पाया और श्लोकके जानने के लिये अब भी लगा दिये हैं कि भ्रम न पड़े अक्षर टैप के बहुत पुष्ट हैं अब कौ बार बड़ी होशियारी से छापी गई है ॥

तथा पद्यानुमा क्री० १५)

विदित हो कि यह पद्यानुमा बाल्मीकीयरामायण जो कि अब की बार माणिकमतबा ने उपाकर मुद्रितकी है वह बहुतही अनुपम होकर सदृशनीय है कि जिसका भागानुवाद धनावलीप्रामनियासि रामचरणोपासि पण्डित महेशदत्त ने किया व जिसका सरोधन भी सस्कृतप्रतिसे उन्नाम प्रदेशान्तर्गत गुण्डाप्रामनियासि पण्डित सूर्यदान जी ने किया है इसमें प्रत्येक श्लोकों का अर्थ अन्वयरीतिसे कहा गया व प्रत्येक पदों व अक्षरोंका जैसा अर्थ होना चाहिये था वैसाही हुआ है यद्यपि मुम्बई आदि नगरोंमें इसके बहुत से अनुवाद हुए हैं तो भी वह इसके समान नहीं होसकते हैं क्योंकि उक्तनगरोंके छपे हुए अनुवादों में कहीं २ अन्वय रीतिमें अर्थ मिलता व कहीं २ मनमाना देख पड़ता है इस भेदको विद्वान् लोगही समझसकते हैं इस हमारे अनुवाद में शुद्धता, छपई, रोशनाई, कापड आदि बड़ी सच्चाई के साथ में है इसकी सरल हिन्दी भाषा सर्वदेसवासियों के समझ में आसकती है जिसकी भूमिका सकलजनतोषिका बनी है व जिसके प्रत्येक सर्गों पर सूचीपर भी बहुतही उत्तम रचारा है केवल इसी से ही सर्वसाधारण जन रामायणकी पारायण बाच सकते हैं—इसकी उत्तमता देखनी से बाहर है अहो प्राहकभागो ! इनके खरीदने में निडम्ब मत करो क्योंकि निडम्ब होने में सिक्का पड़िताने के और कुछ हाथ नहीं लगता है आशा है कि सर्व महाशयजन अवश्यही इसके देखेंगे और इसकी एक २ प्रति खरीदकर अपने घरको मुद्रो-धित करेंगे अथे किमधिक बड़ोईविदलन् ॥

